श्री आदिनाथ दिगंबर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ़
शुक्रवार, 19 जनवरी 2024 से शुक्रवार, 26 जनवरी 2024 तक

सोनगढ़ प्रतिष्ठा

महोत्सव प्रवचन

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुंबई

सोनगढ़ प्रतिष्ठा महोत्सव प्रवचन

तीर्थधाम सुवर्णपुरी सोनगढ़ में आयोजित
पंच कल्याणक महामहोत्सव (जनवरी 2024) के
पावन प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन सागर में से
चयनित एवं प्रसारित प्रवचनों का संग्रह

हिन्दी अनुवाद

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

सह-प्रकाशक

कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी.एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुंबई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2080	2550	2024

—: प्रकाशन :—

तीर्थधाम स्वर्णपुरी-सोनगढ़ में आयोजित

श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

के अवसर पर दिनांक **19 जनवरी से 25 जनवरी 2024**

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र साधनाभूमि तीर्थधाम स्वर्णपुरी में आयोजित जम्बूद्वीप, बाहुबली भगवान की स्थापना के निमित्त श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर प्रतिदिन प्रसारित होनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री के मंगलमय प्रवचन '**सोनगढ़ प्रतिष्ठा महोत्सव प्रवचन**' का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष एवं गौरव का अनुभव हो रहा है।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव दिगम्बर जैन समाज का महामांगलिक उत्सव है। यह प्रतिष्ठा महोत्सव पामर से परमात्मा, पशु से परमेश्वर, नर से नारायण होने का प्रायोगिक उपाय दर्शानेवाला लोकोत्तर महोत्सव है। तीर्थंकर भगवन्तों की गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्ति की महिमामय पाँच घटनाओं का स्थापना निक्षेपरूप से प्रस्तुतिकरण का नाम ही पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव को सम्यग्दर्शन का निमित्त कहा है। पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में 33 पंच कल्याणक और 33 वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव उनके हृदय में विद्यमान वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति बहुमान का अमर स्मारक है। पूज्य गुरुदेवश्री की अनुपस्थिति में भी यह धारा निरन्तर गतिशील है। इसी क्रम में दिनांक 19 जनवरी से 25 जनवरी 2024 तक आयोजित इस जिनबिम्ब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में जम्बूद्वीप की रचना में विराजित अकृत्रिम जिनबिम्ब, बाहुबली मुनिन्द्र, पंच बालयति भगवन्त एवं त्रिकालवर्ती तीर्थंकर परमात्माओं का भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव देश-विदेश के हजारों साधर्मियों की उपस्थिति में तीर्थधाम स्वर्णपुरी में आयोजित किया जा रहा है।

इस भव्य प्रसंग की विशिष्टता यह है कि इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रासंगिक विविध प्रवचनों को संकलित कर प्रसारित किया जा रहा है। जिसमें ईस्वी सन् 1953 से लेकर ईस्वी सन् 1980 तक के विशिष्ट प्रवचनों को समायोजित किया गया है। जिसका प्रस्तुत पुस्तकाकार संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रवचन संकलन में हमें श्री जीतुभाई नागरदास मोदी का विशिष्ट सहयोग रहा है। सभी प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमलों में परोक्षरूप से समर्पित करते हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com और vitragvani App पर उपलब्ध है।

सभी धर्मी जन प्रस्तुत प्रवचनों को हृदयंगम करते हुए निज हित साधें, इसी पवित्र भावना के साथ...

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है—

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं—**जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म

वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस

समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त

नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

क्रं.	दिन	दिनांक	पृष्ठ
1	प्री-पंच कल्याणक	18-01-2024	001
2	धर्म-ध्वजारोहण	19-01-2024	014
3	गर्भ कल्याणक पूर्व क्रिया	20-01-2024	032
4	गर्भ कल्याणक	21-01-2024	050
5	जन्म कल्याणक	22-01-2024	067
6	दीक्षा कल्याणक	23-01-2024	088
7	दीक्षा कल्याणक (सायं)	23-01-2024	099
8	ज्ञान कल्याणक	24-01-2024	120
9	मोक्ष कल्याणक	25-01-2024	141
10	महामस्तकाभिषेक	26-01-2024	163

ॐ

श्री परमात्मने नमः

सोनगढ़ प्रतिष्ठा महोत्सव प्रवचन

**तीर्थधाम सुवर्णपुरी सोनगढ़ में आयोजित
पंच कल्याणक महामहोत्सव (जनवरी 2024) के
पावन प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन सागर में से
चयनित एवं प्रसारित प्रवचनों का संग्रह**

प्री-पंच कल्याणक

(दिनांक 18-01-2024)

प्रवचन-१२३, गाथा-११० रविवार, माघ कृष्ण २, दिनांक ०३-०२-१९८०

नियमसार, ११० गाथा। यहाँ तक आया है। **नित्यनिगोद के जीवों को भी....**क्या कहते हैं ? यह आत्मा का जो पंचम परमभाव वस्तुरूप से-सत्तारूप से-अस्तित्वरूप से जो सत् है, वह **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** अर्थात् उनका परिणाम न परिणम सके—शुद्धस्वभाव को न परिणम सके—ऐसा उसे नहीं है। अभव्य जीव को वस्तु है, परन्तु उसे आश्रय नहीं; इसलिए वह उसके योग्य नहीं। ऐसे यहाँ निगोद के जीव को योग्य नहीं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। निगोद के जीव में भी... आहाहा! यह लहसुन और प्याज का एक राई जितना टुकड़ा लो तो (उसमें) असंख्य तो शरीर है और एक-एक जीव को तैजस, कार्मण शरीर है। ऐसे एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त आत्मायें (रहते हैं), परन्तु उस आत्मा का जो सत्व-दल है, वह तो नित्य निगोद के जीव को भी शुद्ध ही है। आहाहा!

नित्यनिगोद के जीवों को भी... ऐसा। प्रगट हुआ है, उसे तो ठीक परन्तु **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** शुद्ध है। आहाहा! यह आनन्द और परमात्मस्वरूप से शुद्ध ही है और उस परमात्मस्वरूप से परिणमन सकता है, ऐसा है। नित्य निगोद के जीव में भी ऐसी शक्ति है। वह अभव्य परिणम नहीं सकता, वैसा यह नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वस्तु है न? अन्तर में चैतन्य सत् का सत्त्व, ऐसा तत्त्व जो है, वह तो ज्ञायकपने का अनन्त गुण का पूर्ण रूप है। वह स्वयं स्वतःपने स्वयं अन्तर में स्वभावरूप से परिणम सकने को नित्य निगोद के जीव में भी ताकत है। आहाहा! भले इस समय न कर सके, परन्तु उसमें ताकत है। नित्य निगोद का जीव (वहाँ से) निकलकर भी मनुष्य होकर परम पारिणामिकस्वभाव का अनुभव करके अन्तर्मुहूर्त में मुक्ति को पाये। आहाहा!

'अभव्यत्वपारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है... आहाहा! इससे ऐसा कहा, अभव्य जीव का तो जीव शुद्धरूप वस्तु है, परन्तु वह परिणमने के योग्य नहीं है; पूर्ण जैसा स्वरूप है, वैसा होने के योग्य वह नहीं है, ऐसा नित्य निगोद में नहीं है। आहाहा! भले नित्य निगोद में (से) अभी तक त्रस हुआ नहीं, परन्तु उस जीव में ऐसी ताकत है कि परिणम सके-ऐसी ताकत है। वस्तु तो है, परन्तु वह शुद्ध परिणम सके-ऐसी योग्यतावाले निगोद के-नित्य निगोद के जीव भी हैं। आहाहा! है?

शुद्धरूप से ही है। आहाहा! जिसका सत्त्व चैतन्य, वह शुद्ध ही है। भले नित्य निगोद में हो, त्रसपना पाया भी न हो, परन्तु उसकी वस्तु तो शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द और परिणमने के योग्य है। आहाहा! वहाँ से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में मनुष्य हो, निगोद से (निकल कर) भले एकाध भव करे; फिर मनुष्य हो। वह आठ वर्ष में शुद्धस्वरूप का परिणमन करके मुक्ति भी पाये। आहाहा! ऐसी उसमें ताकत है। नित्य निगोद, जिसमें त्रसपना अभी पाया नहीं-ऐसे जीवों में भी ऐसी ताकत है कि वह मनुष्य,... एकाधभव बीच में करे और मनुष्य होवे तो आठ वर्ष में... आहाहा! निगोद का अनादि-सान्त भाव करके और सिद्ध का सादि-अनन्त भाव प्रगट कर सकता है। आहाहा!

वहाँ भाषा काम नहीं करे, वहाँ भाव को सामर्थ्य की बलिहारी है। यह बात

अन्दर बैठनी (चाहिए)। आहाहा! ज्ञान में यह बात आये बिना बैठती नहीं। यहाँ तो निगोद के जीव की ताकत ऐसी है, इतनी बात करते हैं, परन्तु यह (बात) बैठे किसे? जिसे यह चैतन्यमूर्ति भगवान परमेश्वरस्वरूप से बिराजमान है, उसकी अन्दर की दृष्टि हुई, सत् के सत्त्व का अनुभव किया, अनुभव में आया कि यह तो पूर्ण आनन्द का घन है, उस जीव को परिणमने की जैसे ताकत है; वैसे निगोद के जीव को भी उस प्रकार से परिणमने की ताकत है। आहाहा!

जैसे... (कहकर) दृष्टान्त देते हैं। ये पंचम काल के मुनि, पंचम काल के जीव को सम्बोधन करते हैं। आहाहा! इतनी बड़ी बात पंचम काल में की जा सके या नहीं? की जा सके क्या, कर सकता है। पंचम काल का जीव भी निगोद से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में आठ वर्ष में अन्तर्मुहूर्त में आत्मज्ञान पाकर सर्वज्ञ हो सकता है। भरोसा चाहिए न! विश्वास से जहाज चलते हैं न?

विश्वास, रुचि-दृष्टि परिणमन में इसे बैठना चाहिए कि यह तो प्रभु पूरा शुद्ध सत्व है, पूर्ण आनन्द है। उसमें अशुद्धता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता नहीं! अशुद्धता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता भी नहीं! ऐसे निगोद के-नित्य निगोद के जीव हैं। आहाहा! तो फिर तू वहाँ से निकलकर यहाँ आया है न! ऐसा कहते हैं। आहा...! तू यहाँ तक आया। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहा है कि 'सब अवसर आ गया है।' आया है न? मनुष्यपना पाया, जैनवाणी पंचम परमभाव की तुझे कान में पड़ी और क्रमबद्ध (अर्थात्) द्रव्य का पर्यायस्वभाव क्रमबद्ध है, उसका निर्णय होने का-ज्ञायकभाव की ओर का आश्रय होने की योग्यता तुझमें है। यह पंचम काल इसे कहीं रोकता नहीं है। आहाहा!

जिस प्रकार मेरु के अधोभाग में स्थित सुवर्णराशि को भी... मेरुपर्वत के नीचे अकेला सोना भरा हुआ है। आहाहा! लाख योजन का मेरुपर्वत है, उसके नीचे अनादि से अकेला सोना भरा है। मेरुपर्वत का जो अन्दर निचला भाग (है वह) अकेला सोने से भरा है। अनादि से, हों! आहा! उस मेरुपर्वत के अधोभाग में रही हुई सुवर्णराशि (अर्थात्) शुद्ध सुवर्ण के ढेर को **भी सुवर्णपना है,...** उसे भी **सुवर्णपना है, उसी प्रकार अभव्यों को भी परमस्वभावपना है;...** अभव्य को परमस्वभावपना तो है। **वह वस्तुनिष्ठ है,...** उस वस्तु में रही हुई ही उसकी योग्यता है। मेरुपर्वत का सोना बाहर लाकर

व्यापार में काम आवे या उपयोग में काम आवे—ऐसा नहीं है। नीचे सोने का ढेर पड़ा है। मेरुपर्वत लाख योजन का ऊँचा है, उसके प्रमाण उसकी चौड़ाई कितनी? वहाँ तो नीचे अकेला सोना भरा है। आहाहा!

श्रोता को ऐसा कहते हैं कि तू परिणम सकता है। अभव्य जीव जैसा तू नहीं है। आहाहा! वे तो ऐसे कोई अल्प जीव ही होते हैं। तू यहाँ आया, यहाँ सुनता है, सुनने आया। यह कोई एकेन्द्रिय को नहीं कहते। हैं? आहाहा! भले अप्रतिबुद्ध हो, परन्तु है तो भगवान! और भगवान होने के-परिणमन के योग्य ही है! भगवानपना परिणमन के योग्य ही है! आहाहा! (अभव्य को भी) भगवानपना है, परन्तु भगवानपना परिणमने के योग्य नहीं। अन्तर डालकर बात करते हैं।

मैं तुझे सुनाता हूँ, वह तुझे मैं ऐसा कहता हूँ कि नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहाहा! तो प्रभु! तू तो यहाँ आया, यहाँ तक आया, सुना, वीतरागस्वरूप की बात तुझे कान में पड़ी—वाणी तुझे कान में पड़ी तो कहते हैं कि तेरा आत्मा शुद्धरूप परिणमने के योग्य है! आहाहा! परमात्मा होने के योग्य है! आहा! परमात्मपना है, ऐसा परमात्मपना प्रतीति में आवे-ऐसा तू है। आहाहा!

मुमुक्षु : मंगल आशीर्वाद दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात ही की है, अन्य बात ही नहीं। ये पंचम काल के साधु हैं और पंचम काल के रोता को सुनाते हैं। आहा! तू निरुत्साहित न हो। अभव्य जैसे परिणम नहीं सकता, वैसे तू नहीं परिणम सकता-ऐसा है नहीं। तू यहाँ तक आया, वह सुन! आहाहा! ऐसा कहते हैं। मुनिराज ऐसा कहते हैं। भगवान को अनुसरणकर मुनिराज कहते हैं, भगवान की वाणी भी ऐसा कहती हैं। उसे अनुसरण कर वे स्वयं कहते हैं। अनुसरकर परिणमे हैं, अनुसरकर तू परिणमेगा-ऐसा तू है। आहाहा! पंचम काल और ऐसा हल्का / कम पुण्य और हलकी जगह अवतार हो गया.... (ऐसा लेना) नहीं। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द अतीन्द्रिय आनन्दरूप से परिणम सके—ऐसा तू है। (समयसार की) ३८ वीं गाथा में तो यह कहा है न?

(अप्रतिबुद्ध जीव को) गुरु ने बारम्बार कहा, वहाँ तो ऐसा लिखा है कि 'निरन्तर समझाने पर।' निरनतर समझाने को तो गुरु कहाँ निवृत थे? (इसका अर्थ) निरन्तर घोलन करने पर। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को (प्राप्त हुआ) और वह भी प्राप्त हुआ कैसा?- न गिरे ऐसा। अप्रतिबुद्ध था, वह भी प्रतिबुद्ध पाया और (मोह का अंकुर अब उत्पन्न होनेवाला) है ही नहीं। आहाहा! (यह) पंचम काल के प्राणी की पुकार है। कहनेवाले की तो है, परन्तु श्रोता है, जिसने सुना है, उसकी यह पुकार है। आहाहा! समझ में आया? कहनेवाले तो कहते हैं, परन्तु तू वैसा हो सके ऐसा है। काल की राह और बाट देखनी नहीं है। आहाहा! ऐसा तुझे भगवान पूर्णाननद का नाथ कान में पड़ा प्रभु! वह परमात्मा होने के योग्य ही है। अभव्य के जैसा तू नहीं है। आहाहा! इतना अधिक कह दिया-अभव्य जैसा तू नहीं है। वे नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहाहा!

'तारी नजर के आलसे रे नयणे न निरख्या हरि...' हरि—ऐसा जो अज्ञान और राग-द्वेष हरनेवाला प्रभु। तेरी नजर के आलस से निधान रह गया। निधान पड़ा ही है और वह परिणमने के योग्य तू है। आहाहा! गजब बात करते हैं! दिगम्बर सन्तों की बात! श्रीमद् कहते हैं—'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया।' उनके रस की ऐसी पुकार है—दिगम्बर सन्तों की पुकार है। आहाहा! तू परिणमने के योग्य है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुम सर्वा नहीं न? हम अभव्य हैं या नहीं—यह तुम्हें खबर नहीं (और) तुम एकदम ऐसी पुकार करते हो? आहाहा! योग्य हो! परिणमने के योग्य हो! परिणम सकते हो! आहाहा! है?

अभव्य जीव परमस्वभाव का आश्रय करने के लिये अयोग्य अयोग्य हैं। सुदृष्टियों को... आहाहा! जिसने दृश्टि में गुलांट खायी है, पर्यायदृष्टि छूटी और क्रमबद्ध में निर्णय करने पर ज्ञायक का निर्णय का अनुभव हुआ है। क्रमबद्ध का निर्णय करन इस ज्ञायकभाव का अनुभव हुआ है। आहाहा! ऐसे **सुदृष्टियों को—अति आसन्नभव्य जीवों को...** लाईन करके सुदृष्टि की व्याख्या की है। सुदृष्टि अर्थात् अति आसन्न भव्य

जीव। उसे अल्पकाल में मुक्ति है। आहाहा! मोक्ष तो उसे अब (निकट में ही) दिखता है—ऐसा कहते हैं। उसे मोक्ष तो दिखता है, अल्प काल में मोक्ष होगा -ऐसी पुकार है।

श्रीमद् ने कहा है न? वे तो गृहस्थाश्रम में थे, लाखों का व्यापार था। अन्तर्दृष्टि में से आया है। 'अशेष कर्मनो भोग छे, भोगवओ अवशेष रे।' अभी एक राग बाकी लगता है। 'पण तेथी देह एक धारिने जाशुं स्वरूप स्वदेश।' हम एकाध देह धारण करके हमारे देश में चले जायेंगे। राग के परदेश में अब हम नहीं रहेंगे। आहाहा! राग के परदेश में (अब नहीं रहेंगे) यह वाणी आयी न? बहिन में (बहिनश्री चम्पाबेन के वचनामृत में) भी आया और यह (आया)। 'जाशुं स्वरूप स्वदेश' इसका अर्थ आया कि पुण्य-पाप है वह परदेश है, विभाव है, स्वभाव नहीं; इसका-आत्मा का वह परिवार नहीं। आहाहा! आत्मा का परिवार तो आनन्द, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता और पूर्णता, वह प्रभु की सामग्री अथवा परिवार है। एकाध देह धारण करके उस स्वदेश में (जाकर) हम पूर्ण होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ को मिले नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य को सर्वज्ञ को मिले हैं।

इस आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। सर्वज्ञस्वरूप ही आत्मा है। जिसे आत्मज्ञ कहा, आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, वह आत्मज्ञ है। सर्व को जानना, वह तो अपेक्षित बात हुई। आहाहा! आत्मा की पर्याय में पूर्णरूप से जानना, वह आत्मज्ञपना वही सर्वज्ञपना है- ऐसा अल्पकाल में सर्वज्ञपना होगा, वह हमारा स्वदेश है, उसमें हम जायेंगे; परदेश में से हटकर जायेंगे, हमारा वह वतन है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, वह हमारा वतन है, वह हमारा स्वदेश है। वह हमें रहने का स्थान है। आहाहा! 'जाशुं स्वरूप स्वदेश।'

मुनिराज ऐसा कहते हैं, तू अल्प काल में मुक्त होगा, (स्वदेश में) जायेगा - ऐसा तू है। आहाहा! अभव्य (जीवराशि) जैसा नहीं—ऐसा कहा न? निगोद के जीव को भी, ऐसा कहा परन्तु सुनानेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहाहा! सुननेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहाहा! हीनता का आश्रय न कर, हीन रहूँगा—ऐसा न मान; पूर्ण हो जाऊँगा—ऐसा मान। आहाहा! (तू) पूर्ण है और पूर्ण (होने के योग्य है); अभव्य पूर्ण

है, परन्तु पूर्ण हो सकने के योग्य नहीं है परन्तु तुझे कहते हैं कि तू पूर्ण है और पूर्ण हो सकने के योग्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुनि के हृदयों में यह पुकार है। स्वयं प्राप्त हुए हैं, इसलिए कहते हैं—तू प्राप्त करेगा ही और तू प्राप्त करने के योग्य ही है! आहाहा! अभव्य जीव की तरह नहीं! नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जीव की तरह नहीं, प्रभु! तब फिर तू तो यहाँ पंचेन्द्रियरूप से जैनवाणी सुनने के लिये आया। आहाहा! (अब) अल्प काल में परिणमित होगा। यह जैसी जितनी प्रभुता पड़ी है जो सत्व में प्रभुता है, वैसी ही पर्याय में सत्व प्रभुता प्रगट हो जायेगी—ऐसा लायक तू है। आहाहा! विश्वास कहाँ से लाना? कहते हैं। इसका विश्वास (आना चाहिए)। विश्वास से जहाज चलते हैं, वैसे चैतन्य के ऐसे विश्वास से उसकी परिणति पूर्ण हो जाती है। आहाहा!

भाषा देखी? नित्य निगोद के जीव भी अभव्य की तरह नहीं हैं। यह प्रभु क्या कहते हैं? आहा! नित्यनिगोद के जीव ऐसे नहीं हैं। आहाहा! तो प्रभु! तू तो मनुष्य हुआ और यह परमात्मा की वाणी सुनने के लिये आया, सुनता है, परिणमित होने के योग्य ही है। सन्देह न कर। आहाहा!

मुमुक्षु : आज का (आपका) सम्बोधन बहुत मीठा लगता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात मुनि स्वयं कहते हैं। नित्य निगोद के जीव में भी अभव्य तो पड़े हैं परन्तु फिर भी अभव्य के योग्य वह परिणमन नहीं है, ऐसा तो हम इनकार करते हैं। आहाहा! उसमें भी ऐसे जीव हैं कि केवलज्ञानरूप से परिणम जायेंगे। भले वहाँ से निकलकर (परिणमेंगे)। और तू तो निकलकर बाहर आया है, आहाहा! और कान में परमात्मा की वाणी पड़ती है। यह तीन लोक के नाथ की वाणी है। आहा! आहाहा!

यह अन्तर क्या किया कि नित्यनिगोद के जीव भी परिणम सकते हैं। अभव्य जीव ऐसे नहीं हैं। गजब बात की है! प्रभु! तुम तो छद्मस्थ मनुष्य हो! पंचम काल-फाल के हम मुनि नहीं। आहाहा! हम तो जो हैं वह हैं। हैं वह हैं, त्रिकाल हैं, वही हम हैं। आहाहा! और तू भी वह हो सकेगा। विश्वास ला, सन्देह छोड़, निःसन्देह कर! हम

तुझसे कहते हैं कि तू परिणमित हो सकेगा, फिर तुझे निःसन्देह क्यों नहीं होता!! आहाहा! लालचन्दभाई! आहाहा! क्या सन्तों की वाणी! यह दिगम्बर (के) तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। आहाहा! फाट... फाट... प्याला अन्दर है। दिगम्बर सन्तों की वाणी, तीर्थंकर की जिनवाणी दिव्यध्वनि है, वह वाणी है। आहाहा!

प्रभु! तू पामररूप से मानता हो तो छोड़ देना। हम भव्य होंगे या नहीं? अरे रे! प्रभु! यह क्या करता है तू? एक ज्ञानमति आर्यिका है न? बहुत प्रसिद्ध है। पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप (बनाया है) बहुत प्रसिद्ध हो गयी है। वह ऐसा कहती है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी, वह तो सर्वज्ञ जाने। अर र र..! यह समाचार पत्र में आया है। ज्ञानमति है न? बहुत बोलनेवाली है, लोग बहुत इकट्ठे होते हैं। वस्तु की प्रतीति का ठिकाना नहीं होता। आहा! ऐसा वहाँ तक लिखा है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी, वह तो सर्वज्ञ जाने। अररर!

यहाँ कहते हैं कि तुझे (काललब्धि और भव्यता) पकी है—ऐसा हम कहते हैं! आहाहा! और दुनिया फिर प्रशंसा करे, चारों अनुयोगों के जानकारी के बोल बोले 'स्याद्वाद अवलोकन' पुस्तक का नाम दिया है। 'स्याद्वाद सूर्य से अलोकित' चार अनयोग का ज्ञान है। ऐसा कहे और ऐसा फिर लिखे कि हम भव्य हैं या अभव्य? यह भगवान जाने। अरे प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा!

यहाँ मुनिराज तो पुकारते हैं कि नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं, हम ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभव्य जीव प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे नहीं हैं। नित्य निगोद में ऐसे जीव हैं। ऐसा कहा न इसमें? भाई! आहाहा! गजब काम किया है! आहाहा! रहने दे, आड़ की आड़ छोड़ दे। आड़ रहने दे। पूर्ण प्रभु है, प्रभु! आहाहा! भले कोई रागादि हो परन्तु वह तुझे अवरोधक नहीं है, वह तो ज्ञान के ज्ञेयरूप से विषय हैं। आहाहा!

सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकार में) नहीं आता? दीपक, घट-पट को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं; दीपक, दीपक के प्रकाश को-द्विरूपता को प्रकाशित करता है।

दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और दीपक घट-पट का ज्ञान (प्रकाश) जो है, उसे (प्रकाशित करता है), ज्ञान अर्थात् प्रकाश, उसे प्रकाशित करता है। इसी प्रकार आत्मा पर को प्रकाशित नहीं करता। उसकी स्व को और पर को जानने का जो प्रकाश अपना है, उस द्विरूपता को प्रकाशित करता है, पर को नहीं। आहाहा! वाणी तो देखो! दीपक घट-पट को प्रकाशित नहीं करता, दीपक की प्रकाश की द्विरूपता को प्रकाशित करता है। दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और उसका जो स्वरूप है, उसे दीपक प्रकाशित करता है, इसे (घट-पट को नहीं)।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, पर को जानने में पर को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं है। स्व और पर को प्रकाशित करती द्विरूपता को प्रकाशित करता है। ज्ञान की द्विरूपता को प्रकाशित करता है, पर को नहीं, लोकालोक को नहीं। आहाहा! है न पीछे। आहाहा! प्याला फाट अन्दर से, कहते हैं। भगवान भरा है। उस भगवान भरे हुए को देख! भरा हुआ है, पूर्ण है और पूर्ण हो सकने योग्य है—ऐसा तुझे कहते हैं। सन्देह न कर! आहाहा! वह यही पुकार करते हैं। बैठना तो इसे स्वयं को है न? मुनिराज तो बैठाते हैं, मुनिराज तो कहते हैं। नित्य निगोद में भी, अभव्य जैसे परिणम नहीं सकते, वैसी बात है नहीं। आहाहा! वह तो कोई अल्प (जीव) है। ढेर तो यह पड़े हैं बड़े, जीव के-आत्मा के। परिणमित होने के योग्य हैं, उनके ढेर पड़े हैं। आहाहा! नहीं परिणमने के योग्य ऐसे जीव तो कोई अल्प और अल्प अनन्तवें भाग हैं, उनकी बात रहने दे, उस बात को भूल जा, वे हैं नहीं, तू वह है नहीं, आहाहा! टीका करके गजब किया है! गजब टीका है!!

मुमुक्षु : टीका की भी टीका कैसी है!

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब टीका है। **सुदृष्टियों को-अतिआसन्न भव्य जीवों को...** तैयारी है मुक्ति की, तैयारी है मुक्ति की। आहाहा! जिसमें अजंपा जाप नहीं परन्तु जंपा जाप हो गया है। मुक्ति का जाप हो गया है। आहाहा! ऐसे आसन्न भव्य जीव को... आसन्न अर्थात् नजदीक, मुक्ति जिसको नजदीक है, जिसके संसार का अन्त आ गया है। आहाहा! उस बात को लक्ष्य में ले! संसार का अन्त आ गया है, अन्त आया है और मुक्ति की निकटता है—ऐसे **अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव...** यह परमभाव-

त्रिकाली परमस्वभाव सत्व **सदा निरंजनपने के कारण...** आहाहा! सदा निरंजनपने के कारण। अंजन-फंजन-मेल उसे है ही नहीं। वह तो निरंजन है। आहाहा!

(यह परम) आलोचना का अधिकार है। आज ऐसी आलोचना कर, ऐसे अन्दर आलोचना कर (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! वह है, ऐसा इस प्रकार से आलोचना और देखने के योग्य ही तू है। सन्देह रहने दे। 'भगवान ने हमें अभव्य देखा होगा तो?' अरे! सुन न! भगवान की प्रतीति हुई उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं। यह (संवत्) १९७२ के साल में कहा था। प्रश्न उठा था, बड़ा प्रश्न उठा था। भगवान ने देखे उतने भव होंगे। इसलिए अपन क्या करें? भगवान एक समय का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानें ऐसी एक ही पर्याय। अनन्त दूसरी पर्याय अलग रही। एक समय की एक पर्याय, एक गुण की एक पर्याय। आहाहा! लोकालोक को जानें अपने पूर्ण द्रव्य, गुण को जानें ऐसी पर्याय की सत्ता का स्वीकार जिसे है उसे भगवान ने देखा इसका सच्चा निर्णय है, उसे इस सत्ता का स्वीकार हुआ, उसे सर्वज्ञ सत्ता मेरी है, उसका स्वीकार हुआ उसे भव नहीं हो सकते, भगवान ने उसके भव नहीं देखे। (संवत्) १९७२ में कहा था। भगवान ने भव नहीं देखे। जिसे भगवान जँचे, भगवान इस जगत में है, एक समय की स्थिति की सत्तावाले और एक समय तीन काल-तीन लोक को जानें ऐसा सत्व इस जगत में है। आहाहा! उसका जिसे स्वीकार है, भगवान ने उसके भव नहीं देखे और एकाध-दो भव हों तो ज्ञेयरूप से हैं, छूटकर ही रहेगा, भगवान ने देखा है ऐसा करके (बात नहीं कर)। वैसे तो ऐसा भी कहा न? 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसि वीरा' परन्तु किसे? जिसे भगवान की प्रतीति हुई है उसे। जो जो वीतराग ने देखी... 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसि वीरा' परन्तु वीतराग जगत में हैं, उन्होंने देखा (यह) प्रश्न बाद में। वीतराग का अस्तित्व जगत में है। एक समय का, वीतराग का अस्तित्व! आहाहा! पूर्ण वीतरागता जगत में है, एक समय की पर्याय पूर्ण है ऐसी सत्ता का जिसे स्वीकार है उसे भगवान ने भव देखे नहीं, भगवान को उसका भगवान होना दिखा है, वह तो अल्प काल में भगवान होनेवाला ही है। आहाहा! ऐसी बात है, आहाहा!

आसन्न भव्य जीव को... आहाहा! आसन्न, अतिआसन्न भव्य... भव्य आसन्न

और अतिआसन्न। आहाहा! **अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण...** आहाहा! यह परमभाव निरंजन है, जिसमें अंजन की गन्ध, राग की गन्ध नहीं, उदय को स्पर्शती नहीं ऐसा जो परम स्वभावभाव परमात्मा पड़ा है, आहाहा! वह परमात्मा होने के योग्य है, परमात्मा होने के योग्य नहीं - यह बात यहाँ सुनने जैसी नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। इससे श्रीमद् ने कहा न! दिगम्बर के तीव्र वचन, उनके तीव्र वचन... सन्तों के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है कि ये क्या कहना चाहते हैं अन्दर। ऐसा शब्द है न? श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण, विपरीतता के कारण (रस) शिथिल होता गया। यह तो तीव्र वचन का पुकार है।

अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण... सदा निरंजनपने, निरंजनपने के कारण **अर्थात् सदा निरंजनपने प्रतिभासित होने के कारण...** निरंजनपना है परन्तु 'है' ऐसा भासित हुए बिना 'है' ऐसा कहाँ से आया? ज्ञान में ज्ञेय भासित हुए बिना 'यह है' यह कहाँ से आया? आहाहा! गजब टीका करते हैं!

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, आचार्य नहीं हैं। मुनि तो तीर्थंकर होनेवाले हैं-ऐसा आया है। ऐसी ध्वनि लगती है। तीर्थंकर होनेवाले हैं, तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेंगे। आहाहा! एक बार यह बताया था। नहीं? सर्वज्ञ की बात आयी, वहाँ सर्वज्ञपना नहीं रखा, तीर्थंकरपना रखा, यह बताया था भाई को। हिम्मतभाई! जहाँ सर्वज्ञ की व्याख्या आयी है, वहाँ सर्वज्ञपना न रखकर तीर्थंकर को रखा है। तीर्थंकर ऐसे सर्व भाववाले हैं, उनकी ध्वनि में, मस्तिष्क में ऐसा आता था कि ये तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह है न कहीं?

देखो, २१२ कलश। देखो, यह आया। देखा? दृष्टि की बात करते हैं-**जो शुद्धदृष्टिवन्त (सम्यग्दृष्टि) जीव ऐसा समझता है कि परम मुनि को तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है (अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है) तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि) राग के नाश के कारण अभिराम ऐसे उस भवभयहर...** सर्वज्ञ नहीं लिया परन्तु **भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** है? नहीं तो यहाँ सर्वज्ञ लेना चाहिए। भावि सर्वज्ञ (नहीं कहा) परन्तु तीर्थाधिनाथ सर्वज्ञ लिया है। यह स्वयं की अन्दर की ध्वनि है। है? चन्दुभाई! **अभिराम ऐसे उस**

भवभयहर... यहाँ सर्वज्ञ शब्द चाहिए। आहाहा! **भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता अवश्य है।** सर्वज्ञ शब्द प्रयोग न करके भावि तीर्थंकरनाथ शब्द प्रयोग किया है। यह स्वयं की अन्तर की ध्वनि है। आहाहा! दिगम्बर मुनियों की तो बलिहारी है! आहाहा! साक्षात् तीर्थंकर का काम करते हैं। उनकी वाणी और उनके भाव, तीर्थंकर की उपस्थिति बताते हैं। आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि अतिआसन्न भव्य (जीव) **निरंजनपने के कारण (अर्थात् सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण)...** वह भले निरंजन है परन्तु है—ऐसा प्रतिभास (आये) बिना निरंजन है, ऐसा कहाँ से आया? क्या कहा यह? भगवान आत्मा निरंजन है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति, परन्तु वह भासित हुए बिना, ज्ञान में वह भासित हुए बिना 'यह परम निरंजन है'—ऐसा कहाँ से आया? भासित हुआ, तब लगा कि यह परम निरंजन है। आहाहा! उसमें भी परम निरंजन नाथ भासित हुआ है। है इतना, ऐसा नहीं। वह परम स्वभाव निरंजन है, ऐसा नहीं; वह है—ऐसा भासित हुआ है, इसलिए है। भासित हुए बिना 'है'—ऐसा इसे कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया?

(सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण)... प्रतिभासित हुआ अर्थात् ज्ञान की पर्याय में भासित होने के कारण। आहाहा! **सफल हुआ है...** कि निरंजन है परन्तु प्रतिभासित हुआ है तो वह सफल हुआ है। प्रतिभासित हो नहीं, वहाँ है वह सफल कहाँ हुआ? क्या कहा? भगवान सदा निरंजन है परन्तु भासित हुए बिना-ज्ञान में भासित हुए बिना प्रतिभास (हुए बिना) सदा निरंजन है, वह जाने कौन? जाना किसने? वह प्रतिभासित हुआ है, उसने जाना है, वह कहता है कि आहा! उसे सदा निरंजन जो भाव प्रतिभासित हुआ है; इसलिए वह निरंजन भाव सफल हुआ है। निरंजन भाव है तो सही, परन्तु आसन्न भव्य जीव को सफल हुआ है। आहाहा! पर्याय में-दृष्टि में भासित हुआ है। इससे वह है, वह भासित हुआ है; इसलिए उसे वह सफल हुआ है। है, वैसा भान हो गया है; है, वैसी प्रतीति और ज्ञान में ज्ञेय आ गया है। पूरा परमात्मा ज्ञान की पर्याय में ख्याल में आया है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं, परन्तु प्रतिभास है। है न? प्रतिभासित हुआ है। पर्याय में पूरा निरंजन निराकार भगवान प्रतिभासित हुआ है;

इसलिए वह **सफल हुआ है...** निरंजन सदा है परन्तु प्रतिभासित हुआ, इसलिए सफल हुआ है। प्रतिभासित हुए बिना 'वह है' (ऐसा कहे) तो क्या? आहाहा! यह ऐसी बात है। आहा!

सदा निरंजनपने के कारण सफल हुआ है। सफल हुआ है, इसलिए उसने अर्थ निकाला 'सदा निरंजनपना है' ऐसा भासित हुआ है, इसलिए सफल हुआ है। समझ में आया? आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञस्वभावी प्रभु निरंजन निराकार होने पर भी प्रतिभासित हुआ, तब उसे होना है—ऐसा जँचा; इसलिए उसे सफल हुआ है। प्रतिभासित हुआ है; इसलिए उसे सफल हुआ है। प्रतिभासित नहीं होता, उसे सफल कहाँ से होगा? आहाहा! जिसके ज्ञान में, पूर्ण स्वरूप है—ऐसा भास हुआ और भान हुआ है, उसे वह सदा निरंजनपना सफल है, उसका फल उसे आया कि सफल है। जिसे वह मानने में आया नहीं, अनुभव में आया नहीं, दृष्टि में आया नहीं, ज्ञेयरूप से ज्ञान में ज्ञात हुआ नहीं, उसे तो सफल नहीं। आहाहा! परन्तु जितना वह ज्ञेय है, उतना ज्ञान में आया है; इसलिए वह सदा निरंजनपना सफल हो गया है। आहाहा! गजब बात की है न!

जिससे, इस परम पंचमभाव द्वारा अति-आसन्नभव्य जीव को निश्चय-परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,... प्रतिभासित हुआ है, इसलिए आलुंछन सिद्ध होता है। आहाहा! ज्ञान में त्रिकाली निरंजन सदा प्रतिभासित हुआ अर्थात् ज्ञान में भासित हुआ है, पर्याय में प्रतिभासित हुआ; है, ऐसा भासित हुआ, प्रतिभास हुआ है; इसलिए वह उसका सफलपना हुआ है। सफलपना हुआ है, इसलिए **परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,...** यह सफलपना हुआ, यही आलुंछन है, यह आलुंछन है। आहाहा! **कारण कि वह परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** अर्थात् उसमें है नहीं। **परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** अर्थात् कि उसमें है ही नहीं। सफल हुआ है और उसमें वे हैं ही नहीं; इसलिए उखाड़ डाला है—ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धर्म-ध्वजारोहण

(दिनांक 19-01-2024)

प्रवचन नं. ६७ गाथा-१४ दिनाङ्क २४-०८-१९७८ गुरुवार
श्रावण कृष्ण ६, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्रीसमयसार गाथा १४। पहले पाँच बोल लिये हैं। विस्तार अभी आयेगा कि यह आत्मा बद्धस्पृष्ट — एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध दिखता है और पर्याय में अनेकता — षट्गुण हानि-वृद्धि आदि पर्याय में दिखती है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद भी पर्यायदृष्टि से दिखता है परन्तु यह सर्व अभूतार्थ है, यह कायम रहने की चीज नहीं है। समझ में आया? शिष्य ने प्रश्न किया है कि जैसा ऊपर कहा... आपने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट अनन्य, सामान्यस्वरूप कहा, जिसमें गुण-भेद की विशेषता भी नहीं, जिसमें पर्याय नहीं और अकेला चैतन्यद्रव्य जो ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसे आपने आत्मा कहा तो यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव है न? पर्याय में राग आदि का और पर्याय का भेद है न? तो जैसा ऊपर कहा वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है। आहाहा! ऐसी चीज है और पर्याय में राग आदि है, भेद है, एक समय की बात है, हों! तो ऐसा होने पर आत्मा की अनुभूति कैसे होती है? आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव, आनन्द का वेदन.... आहाहा! सम्यग्दर्शन में अनुभूति होती है। सम्यग्दर्शन में त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप को अनुसरण करके अनुभूति होती है, उसमें सम्यग्दर्शन की प्रतीति भी उसी में होती है और उसमें — अनुभूति में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर पूर्णानन्दस्वरूप सन्मुख के झुकाव से पर्याय में अनुभव-सम्यग्दर्शन और आनन्द का स्वाद आता है, वह कैसे? बद्ध आदि है न? एक समय की रागादि पर्याय के सम्बन्ध में है न? और गुणभेद है न? सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

तो आचार्य कहते हैं कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ है....** आहाहा! एक समय की अवस्था में राग और राग का सम्बन्ध तथा भेद — एक समय की अवस्था, वह तो अभूतार्थ है, कायम रहनेवाली चीज नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह कायम रहने की चीज नहीं है, वह अभूतार्थ है; अत: उससे रहित आत्मा का अनुभव हो सकता है। सूक्ष्म बात है भाई! प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने की बात है। यह १४ वीं गाथा सम्यग्दर्शन की है। १५ वीं गाथा सम्यग्ज्ञान की है। आहाहा! और १६ वीं (गाथा) दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की है। यहाँ दर्शन की — सम्यग्दर्शन की बात है, तो शिष्य ने प्रश्न किया कि आपने कहा, वह मेरे लक्ष्य में आया। ऊपर कहा हुआ, ऐसा शब्द आया न? कि आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, अनन्य है, अभेद है, पर्याय की अनेकता से भिन्न है... आहाहा! ऐसा आप कहते हैं, वह ख्याल में आया, परन्तु वे बद्धस्पृष्ट आदि भाव तो है; अत: वैसे आत्मा का अनुभव — सम्यग्दर्शन-अनुभूति कैसे होती है? आहाहा! तो कहते हैं कि यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव अभूतार्थ हैं। कायम रहने की चीज नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय का-राग का सम्बन्ध है, वह कायम रहने की चीज नहीं है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जो भेद करते हैं, वह भी पर्यायदृष्टि से भेद करते हैं, वह कायम रहने की चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए वह अनुभूति हो सकती है।** है न, है?

इसलिए वह अनुभूति हो सकती है। आहाहा! तो क्या कहा? कि पर्याय में जो दया, दान, व्रत आदि का विकल्प-व्यवहार है, उसका सम्बन्ध एक समय का सम्बन्ध है; वह कोई कायम रहने की चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इस कारण अभूतार्थ अर्थात् कायम रहने की चीज नहीं है; इस कारण उससे दृष्टि छोड़कर त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव-सम्यग्दर्शन हो सकता है। आहाहा! ऐसी बात है। यह लोग कहते हैं न कि व्यवहार, व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति होती है... सब मिथ्यादृष्टि हैं। सूक्ष्म बात है प्रभु!

व्यवहार तो राग है, राग अभूतार्थ है; इस भूतार्थ की प्राप्ति में वह अभूतार्थ कारण कैसे होता है? पण्डितजी! तुम्हें तो पता है न तुम्हें तो... उसने तो टीका की है।

आहाहा! जैनतत्त्व मीमांसा बहुत बढ़िया बनाया है। आहाहा! यह कोई पण्डिताई की चीज नहीं है। पण्डिताई — क्षयोपशम बहुत है। ग्यारह अंग का ऐसा और वैसा.... यह कोई पण्डिताई की चीज नहीं है। यह तो अन्तर पण्डिताई की चीज है। सम्यग्दृष्टि को पण्डित कहते हैं। क्या?

मुमुक्षु : अन्दर की पण्डिताई या बाहर की पण्डिताई.... रही तो पण्डिताई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर की पण्डिताई भी पण्डित में रह गयी, आत्मा में नहीं आयी। ठीक पूछते हैं, पूछते तो हैं न। वैसे तो प्रभु ग्यारह अंग अनन्त बार (पढ़ा है) समझ में आया?

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग ल्यौ,
वनवास ल्यौ मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लाग्य दियौ।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ जोग प्रयोग सुतार भयो,
(जप भेद जपे तप त्यौं ही तपे, उर से ही उदासी लहि सब पे)
सब शास्त्रन के नय धारिये मत मण्डन खण्डन भेद लिये
यह साधन बार अनन्त कियौ, तदपि कछु हाथ हजू न पर्‌यो।

श्रीमद् राजचन्द्र थे तो गुजराती, सम्यग्दृष्टि थे, आत्मज्ञानी हुए थे। बाद में यह उन्होंने हिन्दी में बनाया। थे तो गुजराती वणिक। समझ में आया? प्रभु! यम-नियम — यम अर्थात् पंच महाव्रत, नियम अर्थात् अनेक प्रकार के अभिग्रह। यम, नियम, संयम, इन्द्रिय का दमन किया। आजीवन बाल ब्रह्मचारी रहा। आहाहा! ऐसी क्रिया, प्रभु! अनन्त बार की है। यम, नियम, संयम आप कियौ, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लियौ.... जिसे एक टुकड़ा भी वस्त्र का न रहे ऐसा त्याग किया.... त्याग, वैराग्य उदास हो गया पर से परन्तु वह चीज-अपनी चीज क्या है, उस ओर की दृष्टि नहीं की। आहाहा! यह त्याग वैराग्य अथाग लिया, मन पौन निरोध — श्वाच्छोस्वास का निरोध करके, मानो मैं आत्मध्यान करता हूँ — ऐसा भी अनन्त बार किया। वह कोई चीज नहीं है। वह साधन बार अनन्त कियो, अब (क्यों न) विचारत है। (मन से कछु और रहा उन साधन से) मन से, कि उन साधन से भिन्न कोई बात है, वह साधन-फाधन है नहीं। आहाहा। यह

यहाँ कहते हैं कि पर्याय में जो पाँच भाव दिखते हैं, वे कायम टिकने की चीज नहीं है। इसलिए उनसे दृष्टि उठाकर, पर्यायदृष्टि छोड़कर, व्यवहारदृष्टि उठाकर, त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल सामान्य जो ध्रुव है, उस पर दृष्टि लगा दे, आहाहा! तो तुझे अनुभूति होगी, आनन्द का स्वाद आयेगा। आहाहा!

सम्यग्दर्शन होते ही, जितनी संख्या में आत्मा में गुण हैं... तीन काल के समय से ही अनन्त गुने आकाश के प्रदेश हैं... आकाश के प्रदेश अपार... अपार... अपार... अपार... अपार... हैं। उनसे अनन्तगुने एक आत्मा में गुण हैं, आकाश के प्रदेश की संख्या की अपेक्षा जिसका कहीं पार नहीं है, अन्त नहीं, अन्त नहीं, अन्त नहीं, अन्त नहीं... इसका — आकाश का जो प्रदेश है, उससे अनन्तगुने तो एक जीव में गुण हैं। आहाहा! ऐसे गुण होने पर भी, गुण और गुणी का भेद भी नाशवान है, आहाहा! अभूतार्थ है। सूक्ष्म बात है प्रभु! अभी तो बात बहुत गड़बड़ चढ़ गयी है। अभी तो पण्डित लोग और सब ऐसा व्यवहार करते — (करते) निश्चय प्राप्त होता है (ऐसा मानते हैं परन्तु) भाई! ऐसा नहीं है प्रभु! अन्तर में शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, अनन्त गुण का पिण्ड (है), उसका अनुभव करने में पर की कोई अपेक्षा नहीं है, व्यवहार और राग की अपेक्षा नहीं है — ऐसा सम्यग्दर्शन पर की अपेक्षा बिना स्व के आश्रय से उत्पन्न होता है। समझ में आया? यह बात है भगवान! क्या कहें? आहाहा!

यह कहते हैं **अनुभूति हो सकती है...** आहाहा! एक समय की पर्याय है, अभूतार्थ है, कायम टिकने की चीज नहीं। व्यवहाररत्नत्रय है, वह भी एक समय की विकृत चीज है, वह कायम टिकने की-रहने की चीज नहीं है। आहाहा! तो कायम टिकने की चीज है भूतार्थ! उस अभूतार्थ से दृष्टि उठाकर भूतार्थ त्रिकाली ज्ञायक में दृष्टि लगा दे, तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा, तुझे सम्यग्दर्शन होगा और जितनी संख्या में गुण है, उन सब गुणों की आंशिक व्यक्तता वेदन में आयेगी। जितनी संख्या में गुण हैं — अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त.... अनन्त.... (हैं) जिसमें अनन्त के गुण की संख्या में यह अन्तिम-आखिर का है — ऐसा कोई अन्त नहीं है। आहाहा! ये सब गुण की तरफ दृष्टि देने से-पर्यायदृष्टि को छोड़कर.... आहाहा! अन्तर्मुख दृष्टि

करने से उसमें कोई पर की अपेक्षा है ही नहीं। व्यवहार से भिन्न पड़ना है तो पर-व्यवहार की अपेक्षा रखकर अन्दर जा सके — ऐसी चीज है नहीं, वस्तु ऐसी है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

अनुभूति हो सकती है.... (बद्धस्पृष्ट आदि) वह चीज अभूतार्थ है। एक समय की पर्याय, भेद है। आहा...हा...! अरे! राग आदि भी एक समय की विकृत अवस्था है, वह कायम टिकने की चीज नहीं है; इसलिए उससे दृष्टि उठा दे। आहाहा! और भूतार्थ, एक समय में त्रिकाली ज्ञायकभाव अनन्त गुण का एकरूप (है), उसकी दृष्टि करने से ज्ञान की-आनन्द की-स्वभाव की अनुभूति होगी। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह सत्य दर्शन है। सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन — सत्य अर्थात् पूर्णानन्द सत्यार्थ, भूतार्थ, भूतार्थ भगवान, सत्यार्थ साहेब प्रभु स्वयं अनन्त गुण का साहेब, उसकी दृष्टि-अनुभव करने से... आहाहा! जितनी संख्या में गुण है, उन सबका पर्याय में एक अंश व्यक्त का अनुभव हुआ। आहाहा! ऐसी बात है!

यह तो निवृत्ति लेकर यह काम करे तब हो, बाकी तो प्रवृत्ति कर-करके अनन्त काल से मर गया है।

मुमुक्षु : मर कहाँ गया है, जीवित तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, क्या? अरे! जीवित तो उसे कहते हैं प्रभु! ज्ञायक-जीवत्वशक्ति है न उसमें? जीवत्वशक्ति में जीवन है। वह समयसार की दूसरी गाथा में लिया है कि **जीवो चरित्तंदंसणणाणट्ठिदो** तो इन 'जीवो' में से जीवत्वशक्ति निकाली है। अमृतचन्द्राचार्य ने सैंतालीस शक्तियाँ / गुण निकाले हैं। हैं तो अनन्त परन्तु कितने कह सकते हैं? अतः सैंतालीस लिये हैं। उनमें जीवत्वशक्ति में अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द और सत्ता, इन भावप्राण से आत्मा त्रिकाल में जीता है। ऐसे जीवत्व से जीनेवाला प्रभु (है)। उसे मैं राग से जीता हूँ और पुण्य से मुझे लाभ होगा, यह उसने चैतन्य के जीवन का नाश कर दिया है। उसने चैतन्य के-पूर्णानन्द के नाथ का अनादर करके हिंसा की है। युगलजी! सूक्ष्म बात है। आहाहा!

हिंसा का अर्थ? जैसा अस्तित्व है, इतना अस्तित्व न मानना और दूसरे प्रकार से

मानना, वह स्वभाव नहीं है — ऐसा (मानना), वह हिंसा है। आहाहा! यह क्या कहा? भगवान पूर्णानन्द अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्ध चैतन्यघन से जो टिक रहा है, जीवित है, टिक रहा है, उसे राग से लाभ होगा, पुण्य से लाभ होगा, व्यवहार से होगा (— ऐसा माननेवाले ने) उस वस्तु की हिंसा कर दी है। जो स्वतन्त्र वस्तु है, उसे पर से लाभ होगा, यह वस्तु का जीवत्व का जीवन टिकता है, टिक रहा है, उसको नहीं है — ऐसा कह दिया। दूसरी भाषा में कहें तो जो रागादि-विकल्प आता है, उसका जिसे प्रेम है, उसे त्रिकाली ज्ञायक के प्रति द्वेष है, क्रोध है। समझ में आया? जिसे व्यवहार, पर्याय के प्रति प्रेम है (उसे आत्मा के प्रति द्वेष है)। आहाहा! गजब बात है बापू! यह प्रभु का मार्ग अलौकिक है। आहाहा!

एक समय की पर्याय और दया, दान, व्रत आदि के विकल्प का जिसे प्रेम है, उसे भगवान आत्मा के प्रति क्रोध है और द्वेष है, क्योंकि द्वेष के दो भाग — क्रोध और मान; राग के दो भाग — माया और लोभ; अतः जिसे आत्मा के प्रति अभाव है और राग के प्रति का भाव है, उसका स्वभाव के प्रति द्वेष और क्रोध है। आहाहा!

जिसने राग के प्रति मित्रता बाँधी है, उसने स्वभाव के प्रति की मैत्री को छोड़ दिया है। आहाहा! यह छोटी उम्र के लड़के हम खेलते थे तब कहते थे, कट्टी — ऐसा कहते कुछ ऐसा, पता है न? सब मित्र हों और मित्रों के साथ मनमुटाव करना हो (तो कहते हैं) कट्टी, तेरे साथ कट्टी जा! ऐसा करते थे, छोटी उम्र की बात है। तुम्हारे कुछ होगा अवश्य हिन्दी में। कट्टी करते थे न कट्टी और यह तो हमारे ऐसे-ऐसे कट्टी करते थे। इसी प्रकार जिसने पर्याय में राग के प्रति प्रेम किया, उसने स्वभाव के प्रति क्या किया है तुम्हारा? (कट्टी कर दी है)। आहाहा! और जिसने स्वभाव के प्रति प्रेम किया, उसका प्रेम पर्याय और राग के प्रति कट्टी कर दिया कि जाओ तुम नहीं। समझ में आया? यह तो बालपने में हम करते थे न, उसका समाधान यह आया।

इसी बात को दृष्टान्त से प्रगट करते हैं। जैसे.... पहले दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कमलिनी पत्र....** कमलिनी की बेल होती है न, उसमें पत्र होता है। रूखा-रूखा पत्र.... **कमलिनी पत्र जल में डूबा हुआ हो....** पानी में अन्दर डूबा हुआ हो, **उसका जल से**

स्पर्शित होनेरूप.... स्पर्शित का अर्थ तो ऐसा है (कि) इतना निमित्त-निमित्त सम्बन्ध हो गया है, बाकी तो जल... जो वह कमल फूल है, एक पर्याय दूसरी पर्याय को कभी भी स्पर्श नहीं करती। आत्मा अपने गुण और पर्याय को स्पर्श करता है (समयसार की) तीसरी गाथा में है। (प्रत्येक वस्तु) अपना धर्म जो गुण और पर्याय (है), उसे स्पर्श करते हैं परन्तु परद्रव्य की पर्याय को कभी स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता, छूता नहीं — तीसरी गाथा। **एयत्तणिच्छयगदो समझो सव्वत्थ सुन्दरो लोए।** समझ में आया? परन्तु यहाँ तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहकर... समझ में आया? **उसका जल से स्पर्शित होनेरूप....** अर्थात् अन्दर डूबा है न, इस अपेक्षा से, अन्दर ऐसा पानी में दिखता है न, बीच में ऐसे पानी में अन्दर है — ऐसा दिखता है; पानी में है नहीं वह है तो अपने में परन्तु पानी के संयोग में कमल दिखता है तो स्पर्शित होनेरूप **अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना....** निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से वह **भूतार्थ है...** वह डूबा हुआ है, यह वर्तमान पर्यायदृष्टि से देखने में आता है, इतनी बात। है?

तथापि.... तो भी ऐसा होने पर भी, उसी समय में.... आहाहा! यह तो मन्त्र हैं। सन्तों की वाणी-दिगम्बर सन्तों की वाणी अर्थात् गजब बात है भाई! यह कोई पढ़ जाये और पढ़ जाये, इसलिए समझ में आ जाये यह बात नहीं है, अलौकिक बात है। आहाहा! कहते हैं जल में कमल डूबा हुआ देखने पर भी, उसका — कमल का स्वभाव देखने से... आहाहा! है? **जल से किंचितमात्र भी न स्पर्शित होने योग्य....** उसके रोम ऐसे होते हैं, रोम समझे? पत्र रूखे-रूखे, बारीक-बारीक रूखे, उसे पानी स्पर्श ही नहीं करता, ऊँचा करने से पानी का बिन्दु उसको स्पर्श ही नहीं किया है। उसके रोम, समझ में आते हैं? रोम कहते हैं, बारीक-बारीक बहुत कोरी, बहुत रूखी होती है। पानी से ऊँचा ऐसा करो तो पानी का एक अंश भी अन्दर नहीं आता। आहाहा! यह तो अभी दृष्टान्त है, हाँ! **तथापि जल से किंचित्मात्र भी न स्पर्शित कमलिनी पत्र के स्वभाव....** देखा? कमलिनी पत्र का स्वभाव, बेल के पत्र का स्वभाव, रूखा-रूखा, अत्यन्त कोरा — ऐसा। **स्वभाव के समीप जाने पर....** स्वभाव पर दृष्टि देने से, आहाहा। **अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना (अभूतार्थ है....)** झूठा है, जल से स्पर्शित हुआ, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध वह झूठा है। आहाहा!

इसी प्रकार.... यह तो दृष्टान्त हुआ। अब सिद्धान्त.... **अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का....** राग का और कर्म का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से देखो तो... पर्याय में अनादि काल से बँधा हुआ, आहाहा! **आत्मा का पुद्गल कर्मों से बँधने स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर....** पर्याय के निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से देखने पर, मानो निमित्त है वह नैमित्तिक के साथ जुड़ा हुआ है — ऐसा दिखाई देता है। समझ में आया? अथवा वह निमित्त है, वह यहाँ नैमित्तिक पर्याय के साथ जुड़ा हुआ है — ऐसा व्यवहारनय से दिखाई देता है, निश्चय से है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अभी तो सम्यग्दर्शन के काल में कैसी चीज होती है, वह बात कहते हैं। आहाहा!

अनादिकाल से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्ट है तो भी पुद्गल से.... **तथापि....** ऐसा होने पर भी **पुद्गल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होनेयोग्य....** राग के साथ द्रव्यस्वभाव किंचित् स्पर्शित नहीं है। आहाहा! जो द्रव्य का स्वभाव है, वह तो त्रिकाल निरावरण है और अशुद्धतारहित है और उसमें कमी नहीं है, हीनता नहीं है, कमी-हीनता (नहीं)। वह तो परिपूर्ण ज्ञायक आनन्दकन्द ध्रुव पूर्ण पड़ा है। आहाहा! यह तो थोड़ा अभ्यास चाहिए। यह तो कॉलेज है, थोड़ा अभ्यास हो तो बाद में यह समझ में आता है — ऐसी चीज है। आहाहा! पुद्गल के साथ किंचित् भी स्पर्श न होने योग्य.... राग के साथ जरा भी उसका द्रव्यस्वभाव स्पर्शित नहीं है। आहाहा! भगवान द्रव्यस्वभाव को राग के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है। है?

मुमुक्षु : यह तो त्रिकाली स्वभाव की बात है, पर्याय में तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, पर्याय में था परन्तु पर्याय में है, यह दृष्टि छोड़ दे क्योंकि वह अभूतार्थ है, कायम रहने की चीज नहीं है। उसकी दृष्टि से द्रव्यस्वभाव का अनुभव नहीं होता, पर्यायदृष्टि से आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है भाई! क्या हो? अभी तो गड़बड़-गड़बड़ चलती है। वे पण्डित और बड़े-बड़े साधु कहते हैं — बस, व्यवहार करो, व्यवहार से निश्चय हो जायेगा; राग की क्रिया करो, निश्चय हो जायेगा.... बिल्कुल झूठ मिथ्यात्व है। उसी प्रकार यह सब कृषि पण्डित, यह संसार के सेठ, वहीं के वहीं घुस गये हैं, निवृत्ति नहीं लेते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप इनको द्रव्य का पण्डित बना दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कृषि पण्डित हैं न? आहाहा! यहाँ तो अन्दर खेती करे, कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये। जो राग का नाश कर दे और अपनी चीज को-खेत को सम्यग्दर्शन को खलिहान करके **खेड़े** उसे कृष्ण और उसको कृषि कहते हैं। आहाहा! राग के पुण्य के विकल्प की कृषि छोड़कर... ऋषभकुमारजी! अन्दर ज्ञायक चिदानन्द परमात्मा आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड.... जैसे पचास मण की बर्फ की शिला होती है, पचास मण की बर्फ की शिला मुम्बई में बहुत होती है। वैसे भगवान आनन्द और शीतलता की पूर्ण शिला अन्दर है। उसका अनुभव करने पर यह सब व्यवहार आदि पर्याय सब अभूतार्थ है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! इसने कभी किया नहीं। अनन्त काल से नौवें ग्रैवेयक में द्रव्यलिंग धारण (करके गया)—

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥

यह पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण दुःख है, राग है, आस्रव है, दुःख है, जहर है।

मुमुक्षु : पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह यहाँ-यहाँ वह बात तो यहाँ चलती है। ऐसा जहर का प्याला तो अनन्त बार पिया। आहाहा! महाव्रत लिये, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, नग्न दिगम्बर, जंगल में बसे। आहाहा! उससे क्या हुआ?

अभी तो ठीक, अभी तो बेचारे! व्यक्तिगत की कोई बात नहीं। यहाँ तो तत्त्व की बात है। यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! भगवान आत्मा अपने पर का किंचित् सम्बन्ध नहीं है, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी नहीं। वह तो पर्याय के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। राग का-कर्म का निमित्त का सम्बन्ध एक समय की पर्याय के साथ वह निमित्त और नैमित्तिक सम्बन्ध है। वस्तु में कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह किंचितमात्र भी स्पर्शित न होते हुए... ओहो! भगवान द्रव्यस्वभाव! अनावरण स्वभाव! आहाहा! आवरणरहित, अशुद्धतारहित, पर्यायरहित... आहाहा! ऐसा आत्मा का स्वभाव, वह अपने, पर से न होने योग्य **आत्मस्वभाव के समीप जाकर....** यह क्या कहते हैं? राग के प्रेम में आत्मस्वभाव से दूर होता है। चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का — देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का वह भी राग और उस राग में जब प्रेम है, तब आत्मा से दूर वर्तता है। अब उस राग का प्रेम छोड़कर स्वभाव के समीप जाकर... जा अन्दर, आहाहा! ऐसी बात है भाई! है?

बँधनेयोग्य पुद्गल **किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य....** किंचित् भी स्पर्शित न होने योग्य। आहाहा! राग आदि का — दया, दान, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, देव-गुरु का ज्ञान अथवा ग्यारह अंग का ज्ञान और पंच महाव्रत का परिणाम, इन सब भेद को किंचित् नहीं स्पर्श करता हुआ, द्रव्य... आहाहा! ऐसा मार्ग वीतरागमय, तीन लोक के नाथ, जिन्हें इन्द्र सुनने आवें — एक भवावतारी इन्द्र, शक्रेन्द्र एक भवावतारी है। बत्तीस लाख विमान का स्वामी है। शास्त्र में पाठ है एक भवावतारी। एक भवावतारी, मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है, उसकी इन्द्राणी, करोड़ों में एक इन्द्राणी ऐसी है कि वह भी एक भव करके मोक्ष जानेवाली है, वे एक भवावतारी इन्द्र-इन्द्राणियाँ और मति-श्रुत - अवधिज्ञानवाले (भी) भगवान (तीर्थंकरदेव) के समीप सुनने जाते हैं, वह बात कैसी होगी?

मुमुक्षु : भगवान के पास जाने की महिमा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आया है, ऐसा आता है न सुनने को, सुनने को आता है या नहीं। भगवान के पास जाते हैं, अभी इन्द्र-इन्द्राणी। भगवान महाविदेह में विराजते हैं, मनुष्यक्षेत्र में, पाँच सौ धनुष की देह दो हजार हाथ ऊँची, करोड़ पूर्व की आयु, विराजते हैं (सीमन्धर भगवान) विराजते हैं वहाँ जाते हैं। आहाहा! भाई! तो वह धर्म कथा कैसी होगी? आहाहा! वे अवधिज्ञानी इन्द्र उसे सुनते हैं, चार ज्ञान के धारक गणधर, उस वाणी को सुनते हैं। आहाहा! भाई! यह कोई अलौकिक बात है। आहाहा! क्या?

मुमुक्षु : भगवान यही बात कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भगवान यह कहते हैं। ये सन्त आडतिया होकर सर्वज्ञ का माल जगत को बतलाते हैं। आहाहा!

बद्धस्पृष्टता असत्यार्थ है.... है? आहा! आत्मस्वभाव के... आत्मस्वभाव, आहाहा! आत्म स्व-भाव, वे बद्धस्पृष्ट आदि पर्याय आत्मस्वभाव नहीं है। आत्म स्व-भाव... आहाहा! जो ज्ञायक आत्मा उसका ज्ञायकस्वभाव, आहाहा! आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव, अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव, निर्विकल्पस्वभाव, सामान्यस्वभाव, सदृशस्वभाव एकरूप रहनेवाला स्वभाव... आहाहा! ऐसे आत्मस्वभाव के... जो आत्मा जैसा नित्य है — ऐसा उसका स्वभाव भी नित्य कायम है। आहाहा! जैसे, द्रव्य नित्य है तो उसका स्वभाव भी नित्य है। आहाहा!

आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर.... आहाहा! पूर्ण आनन्द प्रभु के समीप जाकर, राग से हटकर, पर्यायबुद्धि छोड़कर, द्रव्यबुद्धि में समीप जाकर... आहाहा! भगवान को साक्षात् करने को साथ — समीप जाकर अनुभव करने पर वह बन्ध और राग आदि सम्बन्ध वह सब झूठा है, अभूतार्थ है। है अवश्य, हाँ! यह तो अपेक्षा से झूठा कहा। पर्याय नहीं — ऐसा नहीं परन्तु पर्याय त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से अभूतार्थ कही गयी है। पर्याय नहीं है — ऐसा माने तब तो वेदान्त हो जाता है। समझ में आया?

परन्तु यहाँ पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली को (लक्ष्य में) लेकर पर्याय को अभूतार्थ कहा गया है। है तो पर्याय है और राग का सम्बन्ध भी पर्यायदृष्टि से है परन्तु अनुभव — स्वभाव के समीप जाना है, तब उसको छोड़कर.... आहाहा! ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द का दल, शुद्धचैतन्यघन द्रव्यस्वभाव (है)। पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि में समीप जाकर... आहाहा! देखो, यह सम्यग्दर्शन! आहाहा! उस आत्मस्वभाव के समीप जाकर... राग के प्रेम में और पर्याय के प्रेम में तो पर्यायमूढ़ जीव, आत्मस्वभाव से दूर था। आहाहा! और उस पर्याय का अंश है, वह भी बुद्धि छोड़कर... 'पर्यायमूढा परसमया' कहा है। प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार ९३ गाथा पहली — 'पर्यायमूढा परसमया'

— तो एक समय की पर्याय में भी जिसको रुचि है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह बुद्धि छोड़कर सम्यग्दर्शन पाना हो तो... सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन, तो सत्य जो पूर्णानन्द प्रभु सत्य है, उसकी प्रतीति और अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! काम बहुत कठिन है, बापू! भाई! जन्म-मरणरहित होने की चीज कोई अलौकिक है। आहाहा! गोदिकाजी!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन की क्या रीति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विधि है। पैसा-वैसा इकट्ठा करके अमुक के लिये दान में देना (उससे) कुछ धर्म होता है — ऐसा कुछ नहीं है। महीने में पाँच लाख कमाये और कहे दो लाख दो। इतने अधिक तो न दे परन्तु लाख-दो लाख दे तो यह तो ऐरण की चोरी और सुई का दान (जैसी बात है)।

मुमुक्षु : नहीं देने की अपेक्षा तो ठीक है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह, नहीं, ठीक-बिक बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : चोरी कहाँ है, कमाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कमाया? यह राग चोरी है। राग को अपना मानना, वह चोर है। मोक्ष अधिकार में आता है — चोर है, गुनहगार है। राग-शुभराग वह मेरा, वह तो चोर है। अपनी चीज नहीं, उसे अपनी मानना वह चोर है। आहाहा! मोक्ष अधिकार में लिया है... अपराधी है। आहाहा! शुभराग वह जहर है, विषकुम्भ है — ऐसा लिया है। मोक्ष अधिकार.... शुभराग — देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, पंच महाव्रत का राग विषकुम्भ है, जहर का घड़ा है। क्यों? यह भगवान अमृत के सागर से विरुद्धभाव है। आहाहा!

अरे! परम सत्य बात सुनने को मिले नहीं, वह कहाँ सत्य की ओर जायेगा? समझ में आया? देह का नाश तो एक समय में होगा। आहाहा! लो, वे शोभालाल है न, उनकी तबियत बहुत नरम है, अब वे तो कितने करोड़ाधिपति हैं। शोभालाल भगवानदास! सीरियस हैं — ऐसा कल कहते थे भाई! हमारे ऋषभकुमारजी (कहते

थे)। ऐसी स्थिति तो देह की है। बापू! वह राग जहाँ नाशवान है तो फिर शरीर की बात तो क्या करना? आहाहा! अरे! परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है, क्योंकि एक समय रहती है। आहाहा! केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञानी को (नय) नहीं, नीचे साधक जीव को... अंश है न? वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो व्यवहार है, वह अभूतार्थ है। आहाहा! मार्ग बहुत (अलौकिक) बापू! परन्तु अभूतार्थ का अर्थ ऐसा नहीं कि वह पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है। परन्तु त्रिकाल का आश्रय लेने की अपेक्षा से एक समय की चीज को अभूतार्थ नाशवान कहा है परन्तु नाशवान कहा है, इसलिए वह पर्याय है ही नहीं — ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यह कहते हैं, देखो! **आत्मस्वभाव के समीप....** समीप, समीप... आहाहा! जो पर्याय का प्रेम है, राग का प्रेम है, वह अभूतार्थ है। उसे लक्ष्य में से छोड़ दे और भगवान त्रिकाली स्वभाव पड़ा है, उसके समीप जा; जो दूर था उसके समीप जा। आहाहा!

मुमुक्षु : कितना मील चलना पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में गति बदलना पड़ेगी। कितना मील ऐसा कि चलना पड़े? एक समय में गति बदलना पड़ेगा, कहा। वह आता है न? प्रज्ञाछैनी 'रभसात्' प्रज्ञाछैनी में ऐसा कि... एक समय में आता है। प्रज्ञाछैनी! १८१ कलश, है? यह है ही न? समयसार है। यह तो १८१ है, देखो! कितने कलश में है? १८१ कलश है।

यह तो हिन्दी, हिन्दी है, हाँ! ४१४ पृष्ठ आया, यहाँ आया ४१४ देखो, क्या कहते हैं? '**रभसात्**' है, देखो '**रभसात्**' शीघ्र — कलश टीका में एक समय लिया है, '**रभसात्**', है? **आत्म-कर्म-उभयस्य सूक्ष्मे अन्तःसन्धिबन्धे** 'रभसात्' पड़ती है, एक समय में पड़ती है, एक समय! यहाँ तो अभी शीघ्र लिया, कलश टीका में एक समय लिया है। समझ में आया? यह कलश टीका है न? यह 'रभसात्' देखो।

'**रभसात्**' अति सूक्ष्मकाल में — एक समय में पड़ती है। क्या कहा यह? कि राग और पर्यायबुद्धि छोड़कर स्वभाव सन्मुख में जाना, उसमें एक समय लगता है।

आहाहा! फिर ख्याल में भले असंख्य समय में आता है इसे, परन्तु भेद पड़ जाता है और स्वभाव की दृष्टि होती है तो एक समय में समयान्तर हो जाता है। आहाहा। 'रभसात्' लिया है, एक समय, बस! आहाहा! जैसे एक समय में भेद आदि और पर्याय आदि है तो उसे छोड़कर द्रव्य के समीप जाना, एक समय में जाना है। आहाहा! क्या कहा? एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर, एक समय में द्रव्य के समीप जाना पड़ता है। आहाहा! सूक्ष्म है भाई! सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय कोई अलौकिक चीज है।

अभी तो सारी बात (ऐसी चलती है कि) दया करो और यह करो, प्रतिमा ले लो... धूल में है नहीं तेरी प्रतिमा, ग्यारह ले लो... अब रामजीभाई तो कहते हैं उन्नीस प्रतिमा हैं तो उन्नीस ले लेना, उसमें क्या वस्तु है।

मुमुक्षु : जितनी सत्य लगे उतनी ले ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह ले ली न, दो ले ली न... धूल भी नहीं! अभी एक व्यक्ति कहता था। वह नहीं वह कहता था? गुणधरलाल, गुणधरलाल कहता है कि मुझको प्रतिमा तो दी परन्तु मेरे पास तो आयी नहीं, कहते हैं। लो, प्रतिमा कहे — ऐसा चला था। व्रत, सबको व्रत देने लगे, सभा में आवे इसलिए तो (व्रत देने लगे) ओहोहो! सो, वह तो यहाँ आनेवाला था और गुजर गया। वह कहता है प्रतिमा मुझे दी थी परन्तु मेरे पास आयी नहीं, क्योंकि प्रतिमा तो किसे कहते हैं प्रभु? आहाहा! इस राग से भिन्न होकर आत्मा का एक समय में अनुभव हो और बाद में स्वरूप की स्थिरता का अंश बढ़ जाये — स्वरूप के आश्रय की स्थिरता का अंश बढ़ जाये, उसे प्रतिमा का विकल्प आता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

और जिसे स्थिरता इससे भी बढ़ जाये उसे महाव्रत का विकल्प आता है, वह भी दु:खरूप और राग है। आहाहा! अरे! यहाँ तो अभी एकदम प्रतिमा ली है। ऐसा लिया और ऐसा लिया और ऐसे पाँच में से सात ली और सात में से ग्यारह ली.... कहता था न? यहाँ कहता था एक व्यक्ति यहाँ, यहाँ कहता था एक व्यक्ति के आठ प्रतिमा तो है मेरे पास भी कोई भाव नहीं पूछते तो ग्यारह प्रतिमा लेना पड़ेगा कि लोग पूछे तो सही

कि महाराज पधारो! पधारो! पधारो! आहार लो। यहाँ आया था एक व्यक्ति आठ प्रतिमावाला, परन्तु आठ प्रतिमा... हम क्षुल्लक नहीं, लंगोटी नहीं — ऐसा नहीं देखे न तो आहार लेने-देने को नहीं आते। अतः प्रतिमा लेते हैं तो आते हैं (कि) पधारो, पधारो गुरुजी पधारो! इसलिए ग्यारह प्रतिमा लेनी पड़ेगी (— ऐसा) कहता था। अर...र! अरे...रे! प्रभु! क्या करता है भाई! बापू! प्रतिमा कहीं ऐसे आती है, वह तो जब स्वरूप की स्थिरता जमती है... सम्यग्दर्शन होने के बाद शान्ति की स्थिरता आंशिक बढ़ती है, उसको प्रतिमा का विकल्प आता है। आहाहा! ऐसा का ऐसा ले ले... ?

यहाँ तो जवाब यह आया (कि) राग को और पर्याय को भी स्पर्श नहीं करता — ऐसा आत्मस्वभाव, आहाहा! भगवान, अमृतसागर से भरा प्रभु, ध्रुव आत्मस्वभाव अणीन्द्रिय ज्ञान, अणीन्द्रिय आनन्द, अणीन्द्रिय प्रभुता, अणीन्द्रिय स्वच्छता — ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाने पर, पर्याय की बुद्धि छोड़कर त्रिकाल भगवान के स्वभाव के समीप जाकर... आहाहा! **अनुभव करने पर....** उस आत्मा का अनुभव करने पर बद्धस्पृष्ट झूठा है, पर्याय, पर्याय वह त्रिकाली में नहीं है। समझ में आया?

अनुभव है वह पर्याय है; सम्यग्दर्शन है वह पर्याय है परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! परन्तु उस द्रव्य के समीप जाकर अनुभव करने पर (वैसी) पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय भी है परन्तु वह राग का सम्बन्ध आदि है, इसलिए उसको अभूतार्थ कह दिया और यहाँ तो अपने पहले आ गया है। चौदह के अर्थ में कि आत्मा वस्तु जो शुद्धचैतन्यघन.... भाई! यह बात नहीं बापू! यह शब्द सरल है। आहाहा! यह पूर्णानन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप विराजमान आत्मा है, उस पर दृष्टि लगाना। आहाहा! वह दृष्टि है तो पर्याय, सम्यग्दर्शन भी है तो पर्याय, परन्तु पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर लगाने से सम्यग्दर्शन होता है — ऐसा बोध है, भाई! आहाहा! है?

मुमुक्षु : ध्रुव पर (दृष्टि) किस प्रकार लगाना?

समाधान : लगाना, कहते हैं मुँह फिराना ऐसा। वह किस प्रकार? मुँह फिराना, ऐसा मुँह और कर दे ऐसा। कैसे बदलना? परन्तु बदल दे। चन्दूभाई! इस पर्याय का लक्ष्य राग और पर्याय पर है तो पर्याय का आश्रय ऐसा बना दे। उस समय की पर्याय तो

परसन्मुख है परन्तु द्रव्य में से लक्ष्य होकर नयी पर्याय सम्यग्दर्शन की हुई, यह पर्याय उस तरफ, (द्रव्यसन्मुख) झुकने से हुई — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! उस समय द्रव्य में से सम्यग्दर्शन होता है, द्रव्य के आश्रय से (सम्यग्दर्शन होता है), तब वही पर्याय द्रव्यसन्मुख हुई — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! बहुत कठिन बात भाई! यह सम्यग्दर्शन का अधिकार है, यह १४ वीं गाथा!

वह सम्यग्ज्ञान का बाद में आयेगा, चारित्र का तो पीछे कहीं.... सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं; सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र वह सब बालव्रत और बालतप है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरुदेव, पर्याय को बदलना, परसन्मुख है, उसे स्वसन्मुख करना, पर्याय को, वह किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को स्वसन्मुख करने का अर्थ? स्वसन्मुख, वह तो कहा न? जो पर्याय परसन्मुख है, वह तो हो गयी वहाँ....

मुमुक्षु : लक्ष्य को स्वसन्मुख करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, वह नयी पर्याय उत्पन्न करके स्वसन्मुख करना — ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : करना वह तो मरना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। राग को करना वह मरना है; स्वसन्मुख करना, वह तो जीना (जीवन) है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन की पर्याय को करना अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, इस करना का अर्थ वह होता है। त्रिकाल (द्रव्य के) समीप जाने पर सम्यग्दर्शन की पर्याय होती है, तथापि उसका लक्ष्य पर्याय के ऊपर नहीं है — ऐसा है प्रभु! क्या हो? अरे! मार्ग की विधि का ही पता न हो, वह मार्ग में किस प्रकार जा सकेगा? आहाहा!

यहाँ वह कहा — बद्धस्पृष्ट की तरफ देखो तो व्यवहार पर्याय है, राग है,

निमित्त -निमित्त सम्बन्ध है, परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो तो वह बात अभूतार्थ — झूठ है। झूठ अर्थात्? पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है, परन्तु उसे गौण करके झूठ कहा है। आहाहा! और मुख्य करके भूतार्थ को सत्य कहा है। आहाहा! यह तो ग्यारहवीं गाथा में आया न? त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहा और पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा।

इसमें कितनी बातें पहुँचना? नहीं तो पर्याय तो इसकी है, वह निश्चय है; गुण इसका है, वह निश्चय है; द्रव्य इसका है, वह निश्चय है; स्व, वह निश्चय; पर व्यवहार परन्तु यहाँ त्रिकाली ज्ञायक को भूतार्थ कहकर, मुख्य कहकर निश्चय कहा और पर्याय उसमें है, तथापि उसे गौण करके, व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा। आहाहा! अब ऐसा ज्ञान मिलता नहीं न! ऐसी बात है बापू!

मुमुक्षु : हमने तो प्रवचन में यह सुना था महाराज! कि पर्याय का करना भी नहीं है, पर्याय का होना भी नहीं है — ऐसा सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना-बरना नहीं है, यहाँ तो पर्याय होती है — ऐसा कहा न? द्रव्य के लक्ष्य से होती है — ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : करना नहीं, होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव सन्मुख होते हैं तो पर्याय / सम्यग्दर्शन होता है, बस! सम्यग्दर्शन की पर्याय के प्रति सम्यग्दर्शन का लक्ष्य नहीं है। क्या कहा? सम्यग्दर्शन की पर्याय के ऊपर सम्यग्दर्शन का लक्ष्य नहीं है; सम्यग्दर्शन की पर्याय का लक्ष्य ध्रुव के ऊपर है। अरे...रे! ऐसी बात है मूल... अभी बहुत गड़बड़ हो गयी है।

मुमुक्षु : बहुत गड़बड़ निकल गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह कहा लो, एक बोल हुआ यह। पाँच में से... पाँच बोल हैं न, अबद्धस्पृष्ट.... अबद्धस्पृष्ट की एक की व्याख्या की, समझ में आया? **दूसरा,**

जैसे मिट्टी का ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व

(भूतार्थ है-सत्यार्थ है।....) पर्याय में अन्य-अन्यपना सत्य है... मिट्टी में से जो घड़ा होता है, झारी होती है, अन्य-अन्य, अन्य है। **तथापि सर्वथा अस्खलित....** मिट्टी स्खलित होकर पर्याय में नहीं आती। आहाहा! सामानय मिट्टी है वह **सर्व पर्याय भेदों से किंचित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले....** सामान्य मिट्टी है, वह पर्याय में स्खलित होकर आती है? आती ही नहीं कभी। आहाहा! यह झारी और घड़ा आदि होता है, उसमें मिट्टी नहीं आती, वह तो पर्याय है, पर्याय में सामान्य नहीं आता। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! परन्तु **एक मिट्टी के स्वभाव के किंचित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाला....** सर्व पर्याय भेदों से भिन्न और एक मिट्टी के स्वभाव, देखो! मिट्टी का स्वभाव एकरूप-सामान्यरूप रहना है, (उसके) समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व झूठा है। अन्य-अन्य मिट्टी की अवस्थाएँ वे झूठी हैं।

इसी प्रकार आत्मा में उतारेंगे....! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गर्भ कल्याणक पूर्व क्रिया

(दिनांक 20-01-2024)

प्रवचन नं. ६८ गाथा-१४ दिनाङ्क २५-०८-१९७८ शुक्रवार
श्रावण कृष्ण ७, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, १४ वीं गाथा। पहले यह कहा है कि जो आत्मा है, अबद्ध है, राग के साथ जो बंध दिखता है, वह पर्यायनय का — व्यवहारनय का विषय है परन्तु यह अन्दर स्वरूप है, वह तो अबद्ध है। निरावरण, अखण्ड, एक, अविनाशी, परम पारिणामिक परमभाव लक्षण, निज परमात्मद्रव्य, वह एकरूप वस्तु है, वह अबद्ध है। आहाहा! उस पर दृष्टि लगाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! पाँच बोल तो क्रम से समझायेंगे। वहाँ पाँच बोल क्रम नहीं पड़ता। क्या कहा? पाँच बोल — अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियतं, अविशेषं, असंयुक्तम् — ये पाँच बोल तो क्रम से समझाते हैं, परन्तु जब अन्दर सम्यग्दर्शन होता है, तब एक साथ ही पाँच का अभाव अन्दर बद्ध आदि का अभाव होता है।

कर्म का सम्बन्ध बन्ध; अन्य-अन्य गति जो नारकी आदि दिखती है, वह भी अन्तर में अबद्ध दृष्टि, दृष्टि होने पर सब अनेकपने का अभूतार्थ होता है और एक स्वरूप पर दृष्टि देने से वह निश्चय भूतार्थ है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इससे पहले अबद्ध का दृष्टान्त दिया — कमलिनी का (दृष्टान्त दिया)।

दूसरा मिट्टी का दृष्टान्त — मिट्टी में जो घड़ा, झारी आदि पर्याय होती हैं, वह है, परन्तु मिट्टी का स्वभाव एकरूप देखने से वह सब पर्याय अभूतार्थ है। यह तो दृष्टान्त हुआ। सिद्धान्त, है? **इसी प्रकार आत्मा का....** भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप ध्रुव का, **नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर....** गति नरक है, मनुष्य है, देव है, तिर्यंच है — ऐसी गति की पर्याय से देखो तो अनेकपना दिखता है, यह पर्यायनय का विषय है, परन्तु उसे देखने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! नारक आदि पर्यायों से

'अनुभव' शब्द से ज्ञान करने से, अनुभव अर्थात् ज्ञान / जानना; ज्ञान करने पर **पर्यायों से अन्य-अन्य रूप से....** नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति, अन्य-अन्य है। इस अपेक्षा से सत्य है।

तथापि.... तो भी आहाहा! सर्वतः **अस्खलित....** भगवान ज्ञायकदेव स्वरूप अपने स्वभाव से गति में स्खलित नहीं हुआ है। आहाहा! त्रिकाल सदा निरावरण भगवान आत्मा अपने स्वभाव से कभी स्खलित (नहीं हुआ है), गति आदि में नहीं आया है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है भाई! यह बात करना.... बोलना वह कोई दूसरी चीज है। आहा!

नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, पर्यायनय से देखो तो यह अनेकपना है परन्तु वह तो वर्तमान एक अंश की दृष्टि से देखने से व्यवहार है। वह भी व्यवहारनय, परन्तु वह बात त्रिकाल सत्य नहीं है, वह चीज आत्मा में त्रिकाल टिक सके — ऐसी चीज नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा अपना सर्वतः अस्खलित चिद्घन ध्रुव ज्ञायकभाव, वह अपने स्वभाव से कहीं स्खलित (होकर) किसी गति में नहीं आया। आहाहा! समझ में आया?

सर्व पर्यायभेदों से किंचित्मात्र भेदरूप न होनेवाले.... वस्तु जो द्रव्यस्वभाव है, वह नरकगति आदि में किंचित् भी अन्यत्व नहीं हुआ है। अर..र...! यह तो पर्याय में अन्यत्व है। आहाहा! सूक्ष्म विषय है! सम्यग्दर्शन और उसका विषय (बहुत सूक्ष्म है)। सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प दृष्टि है और उसका विषय सर्वतः अस्खलित चिद्घन ध्रुवस्वभाव जो कभी अपने स्वभाव में से गति की पर्याय में नहीं आया, जो ऐसी चीज है। आहाहा!

सर्व पर्यायभेदों से किंचित्मात्र भेदरूप न होनेवाले.... आहाहा! नरकगति या मनुष्यगति आदि हुई, परन्तु अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव से किंचित् भी गति में भेदरूप नहीं हुआ। आहाहा! अब यह चीज अभी समझना कठिन पड़े, उसकी प्राप्ति करना... (वह तो) अपूर्व पुरुषार्थ है, भाई! आहाहा! और प्रथम कर्तव्य तो वही है। आहाहा!

सर्वतः अस्खलित.... सर्व पर्यायों में,... अस्खलित का अर्थ किया किंचित्मात्र भी अन्यरूप से नहीं हुआ। आहाहा! है? **अन्यत्व अभूतार्थ है...** किंचित्मात्र भेदरूप

नहीं होना। आहाहा! गति अर्थात् यह मनुष्य शरीर नहीं, अन्दर मनुष्य की गति का उदय जो गतिपना है, नामकर्म का निमित्त है और जो गतिपना है, उस पर्याय में ज्ञायकभाव त्रिकाली शुद्ध चैतन्य, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह अपने स्वभाव में से अस्खलितपना — कभी गति की पर्याय में आया नहीं है। आहाहा!

कितने ही कहते हैं न कि मनुष्य की गति हो तो केवलज्ञान होता है। मनुष्यगति में केवलज्ञान होता है परन्तु वह बात झूठ है। आहाहा! अपना अकेला ज्ञायक ध्रुव अस्खलित, जो गति की — किसी भी गति की पर्याय में ध्रुव ज्ञायकस्वभाव नहीं आया। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है और उसके आश्रय से चारित्र होता है और उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। किसी संहनन से, मनुष्यपने से केवलज्ञान होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

बापू! सत्य वस्तु बहुत दुर्लभ है। आहाहा! **सर्वतः अस्खलित....** चार गति में से — एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, नारकी आदि पर्याय में आया, परन्तु वह वस्तुस्वभाव पर्याय में कभी नहीं आया। आहाहा! एक ध्रुवस्वरूप, एकरूप सदृशस्वरूप, नित्यानन्द प्रभु अपने स्वभाव में से किंचित्मात्र गति में स्खलित नहीं हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

वह **एक चैतन्याकार आत्मस्वभाव के समीप जाकर....** क्या कहते हैं? गति की पर्याय के समीप जाकर उस पर्याय का ज्ञान होता है और वह मैं हूँ — (ऐसा मानना) वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह पर्याय - गति की पर्याय है, उसकी समीपता से दूर होकर (अर्थात्) पर्यायबुद्धि में से निकलकर, आहाहा! आत्मा जो ज्ञायक चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु है, उसके समीप जाकर **अनुभव करने पर....** त्रिकाली ज्ञायकभाव के समीप अर्थात् दृष्टि करने से, उसका स्वीकार और सत्कार करने से, उसका अनुभव करने से... आहाहा! ऐसा है प्रभु! **अन्यत्व अभूतार्थ है....** यह अन्य-अन्य गति जो पर्याय है, वह झूठ है। पर्याय, पर्यायरूप से है परन्तु स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से पर्याय झूठ है। झूठ है अर्थात् पर्याय नहीं थी — ऐसा नहीं है। (पर्याय) है तो सही, परन्तु वह व्यवहारनय का — खण्ड-खण्ड का ज्ञान करने का विषय है। आहाहा! और

भगवान आत्मा ज्ञायक अस्खलित चैतन्यस्वरूप अनादि-अनन्त एकरूप रहनेवाली चीज, उस अभेद पर दृष्टि करने से वह पर्याय के भेद भी झूठे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय के भेद झूठे हैं अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद, वह दृष्टि का विषय नहीं है। अत: पर्याय गौण करके उसे झूठा कह दिया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! धर्म चीज कोई अलौकिक है। आहाहा!

इस पर्याय की दृष्टि से द्रव्यदृष्टि नहीं होती, पर्याय के लक्ष्य से द्रव्यदृष्टि नहीं होती। इसी अपेक्षा से द्रव्य अर्थात् ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप के समीप जाकर अर्थात् उसका सत्कार, स्वीकार करने से और त्रिकाली ज्ञायकभाव के सन्मुख होने से अनुभव करने पर वह पर्याय का भेद गौण हो गया है; अत: वह अभूतार्थ है। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : पर्याय के भेद तो ज्ञान में आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में भेदज्ञान में दर्शन हुआ, उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान स्व को भी जानता है और पर्याय के भेद को भी जानता है। बाद में जानने में दो हैं परन्तु सम्यग्दर्शन में दो, दृष्टि के विषय में (दो) नहीं हैं। अरे! ऐसी बात है भाई! आहाहा! समझ में आया?

यह चैतन्याकार, एक चैतन्याकार, एक चैतन्यस्वरूप स्वभाव, एक चैतन्यस्वभावरूप आत्मस्वभाव, अथवा चैतन्यस्वरूपरूप आत्मस्वभाव.... आहाहा! उसके समीप जाने पर — अनुभव करने पर यह अन्यत्व झूठा है। अन्य — अन्यपना झूठा है; भगवान तो अनन्य है; अन्यत्व, अन्यत्व में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? गति आदि की पर्याय अन्य-अन्य है, उसमें अनन्य प्रभु अन्यत्व में नहीं आता। अरे! यह क्या है, यह बात! कहते हैं।

अभी मूल चीज और मूल चीज का विषय, पूरी बात में मानो फेरफार हो गया है। यह करो और वह करो, यह करो और शास्त्र पढ़ो, शास्त्र पढ़ो और भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो, तप करो, और.... आहाहा! भाई! तुझे पता नहीं, प्रभु! यह सब क्रिया का विकल्प है, वह तो राग है और राग से प्रभु तो अबन्ध है, राग से सम्बन्ध अर्थात्

बन्ध नहीं है। स्वभाव में राग का सम्बन्ध, सम्बन्ध (नहीं है)। समझ में आया? क्या कहा? कि भगवान ज्ञायकस्वभाव एकरूप चैतन्यस्वरूप आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से गति जो अन्य-अन्य है, वह उसमें नहीं। उसमें नहीं, इस अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहा गया है। समझ में आया?

पहले एक बार कहा था कि स्वद्रव्य की अपेक्षा से अन्य द्रव्य अद्रव्य है। क्या कहा? स्व आत्मा है, स्वद्रव्य; स्वद्रव्य अपनेरूप है, परद्रव्य से नहीं है और परद्रव्य, परद्रव्य से है, अपने द्रव्य से नहीं है — तो इसका अर्थ क्या हुआ? पहली चौभंगी.... सप्तभंगी में... अपने द्रव्य की अपेक्षा से अपने में है परन्तु अपने द्रव्य की अपेक्षा से दूसरा द्रव्य अद्रव्य है। आहाहा! उसकी अपेक्षा से द्रव्य है परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य है। आहाहा! और इस क्षेत्र से असंख्यप्रदेशी भगवान आत्मा, वह स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अपना है और अपनी अपेक्षा से दूसरे का असंख्यप्रदेशी क्षेत्र जीव का और परमाणु का एक प्रदेशी क्षेत्र, वह अक्षेत्र है। अरे ऐसी बातें अब! आकाश भी इस स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अक्षेत्र है। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं बापू! क्या हो? वस्तु की स्थिति (ऐसी है)।

मुमुक्षु : आकाश तो बहुत बड़ा क्षेत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बड़ा क्षेत्र है (वह) उसमें है, इस क्षेत्र की अपेक्षा से तो अक्षेत्र है। उसके क्षेत्र की अपेक्षा से क्षेत्र हो। समझ में आया? ऐसी बात! बापू! भगवन्त! तेरी चीज ऐसी कोई है, वह उसकी लीला पर्याय में अनेकता दिखती है परन्तु वह वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार काल की अपेक्षा से अपनी पर्याय के स्वकाल की अपेक्षा से अपना अपने में है और अपने पर्याय के स्वकाल की अपेक्षा से दूसरी पर्याय का काल परकाल है। आहाहा! और इससे सूक्ष्म ले जाये तो त्रिकाली ज्ञायकभाव वह स्वकाल की अपेक्षा से अपना है और अपनी पर्याय की अपेक्षा से परकाल है, वह अपने में नहीं। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं कि परकाल जो गति आदि है, हो; अपने द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से वह नहीं है। उसकी अपेक्षा से वह है। आहाहा! यह जैनदर्शन बापू! बहुत सूक्ष्म भाई! आहाहा! यह कोई पण्डिताई का — विद्वतता का विषय नहीं है, यह तो अन्तर्दृष्टि का विषय है। आहाहा!

हजार योजन का मच्छ-तिर्यंच भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, क्या जानपना था? अस्खलित चैतन्यद्रव्य ज्ञायक ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करने से वह सत्य है और पर्याय है, इस अपेक्षा से वह असत्य है। उसकी अपेक्षा से सत्य है; अपने द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से असत्य है। आहाहा!

जैसे 'भाव' अपना भाव जो अनन्त गुणरूप भाव है, वह अपनी अपेक्षा से सत्य है और दूसरे जो अनन्त सिद्ध और उनका भाव केवलज्ञान आदि अन्दर गुणभाव, अपने भाव की अपेक्षा से वह अभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे यहाँ, ज्ञायकभाव की दृष्टि अन्दर करने से वह सत्यार्थ, वही है और पर्यायभेद जितना गति आदि का है, वह असत्यार्थ है — ऐसा है प्रभु! क्या हो बापू! मार्ग बहुत बदल गया है, प्रभु! क्या करें? आहाहा! भगवान का विरह पड़ा है, केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं, लोगों ने स्वच्छन्दता से मार्ग चलाया है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान की वाणी तो रह गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है? यह मार्ग रह गया है। अन्दर वस्तु... आहाहा! परन्तु उसको एकान्त मानते हैं।

मुमुक्षु : मानने दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह एकान्त ही है। यह आयेगा, सम्यक् एकान्त ही है, पाँचवें बोल में आयेगा। यह तो अभी दूसरा बोल चलता है। आहाहा! ये दो बोल हुए।

अब तीसरा बोल। **जैसे समुद्र का हानि-वृद्धिरूप अवस्था से....** ज्वारभाटा... तुम्हारी भाषा में क्या? बाढ़... बाढ़ कहलाती है न? वह वृद्धि अपेक्षा से और हानि अपेक्षा से। **अनुभव करने पर....** अर्थात् ज्ञान करने पर। **अनियतता (अनिश्चितता भूतार्थ है)...** वह है। ज्वारभाटा होता है, वह बाढ़ आती है, घट जाती है। वह पर्याय की अपेक्षा समुद्र में वह है। आहाहा! **तथापि नित्य-स्थिर समुद्रस्वभाव....** ध्रुवस्वभाव समुद्र एकरूप रहनेवाला। जिसमें ज्वार-बाढ़ और हानि नहीं है — ऐसे समुद्र की एकरूप चीज को देखने से... आहाहा! **अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है-झूठ है।** उस समुद्र

में जो बाढ़ आती है और घट जाती है, वह सब झूठ है। त्रिकाल की अपेक्षा-समुद्र के सामान्य स्वभाव की अपेक्षा वह बाढ़ आदि है वह सब झूठ बात है। समझ में आया? अरे ऐसी बातें हैं।

इसी प्रकार.... यह तो दृष्टान्त हुआ, अब आत्मा में.... आहाहा! **आत्मा का हानिवृद्धिरूप पर्यायभेदों से अनुभव करने पर....** आहाहा! पर्याय में अनन्त गुण-पर्याय विशेष होती है और वह घट जाती है — ऐसा अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय निगोद में हो जाती है; केवलज्ञान पर्याय सर्वज्ञ को होती है — ऐसे पर्यायभेदों से देखो, आहाहा! तो अनियतता है अवश्य, अनियत अर्थात् अनिश्चय वस्तु है अवश्य, पर्यायदृष्टि से (है अवश्य)। आहाहा!

अब **तथापि नित्य-स्थिर....** नित्य का अर्थ स्थिर; स्थिरबिम्ब, ध्रुवबिम्ब अनन्त गुणराशि का पिण्ड प्रभु आहाहा! उसके **स्थिर-निश्चल आत्मस्वभाव के समीप जाने पर....** निश्चल आत्मस्वभाव जो एकरूप (है), पर्याय में नहीं आता। हानिवृद्धिरूप जो पर्याय होती है, उसमें वह एकरूप द्रव्य नहीं आता। आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय हो तो भी द्रव्य तो पूर्ण ही पूर्ण ही पड़ा है और केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी द्रव्य तो परिपूर्ण ही है। अतः इतनी पर्याय बाहर आयी तो वहाँ न्यूनाधिकता हो गयी है — ऐसा नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय एक समय की, वह भी एक समय की पर्याय है। पर्याय की अवधि ही एक समय है। द्रव्य और गुण की अवधि त्रिकाल है। आहाहा!

तो कहते हैं कि केवलज्ञान (में) तीन काल-तीन लोक को अपनी पर्याय में जानने में, वह जानने में आ जाता है। ऐसी वह पर्याय होने पर भी, द्रव्यस्वभाव में कुछ कमी हुई है — ऐसा नहीं है। इतनी पर्याय बाहर आयी और अन्दर कमी नहीं? बापू! यह कोई अलौकिक चीज है। आहाहा! वह पर्याय इतनी ताकतवाली बाहर आयी तो अन्दर में से कुछ हीनाधिकता होगी या नहीं? भगवान! मार्ग तो बहुत अलौकिक है, भाई! आहाहा!

वह द्रव्यस्वभाव एकरूप त्रिकाल है। एक है न? **नित्य स्थिर आत्मस्वभाव के समीप जाकर,....** नित्य स्थिर एकरूप है, चाहे तो केवलज्ञान हुआ हो और चाहे तो

अक्षर के अनन्तवें भाग हो और चाहे तो चार ज्ञान और अवधिज्ञान आदि हो, परन्तु वह वस्तु तो उसमें आती नहीं। आहाहा! उस पर्याय में, जो त्रिकाली वस्तु है, वह नहीं आती। आहाहा! और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करना, उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन की गाथा है।

अभी तो कोई (ऐसा कहते हैं कि) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, नव तत्त्व के भेद की श्रद्धा करो (वह) समकित! अर...र...! बापू! तुझे पता नहीं, भाई! आहाहा! नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा का अनुभव तो मिथ्यात्व है। भेदवाली, हाँ! ऐसे नव तत्त्व तत्वार्थसूत्र में कहे हैं, वहाँ तो एकवचन है, वहाँ बहुवचन नहीं हैं। तत्वार्थसूत्र में जीव-अजीव, आस्रव-बन्ध (संवर-निर्जरा) मोक्ष एक वचन है। यह नौ का एक वचन, यह अभेद होकर जानता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पर्याय में हीनाधिक दशा... आहाहा! अगुरुलघुत्व के कारण और पर्याय के धर्म के कारण (हीनाधिक दशा है)। पर्याय अधिक हो, सामान्य हो, थोड़ी हो, विशेष हो — ऐसे प्रकार हो पर्यायदृष्टि से (हों) परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखो (तो) भगवान एकरूप चैतन्यसूर्य भगवान चैतन्यसमुद्र अन्दर पड़ा है। आहाहा! जैसे, उस समुद्र में पर्याय की ज्वार-बाढ़-वृद्धि है नहीं, वैसे ही भगवान में यह पर्याय-हीनाधिक की पर्याय अन्दर में है नहीं और हीनाधिक पर्याय में आत्मा आता नहीं — ऐसी बात है भाई! आहाहा!

अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला और उसमें यदि यह नहीं किया तो प्रभु तेरा क्या होगा? भाई! आहाहा! चौरासी लाख योनियों के अवतार... नाथ! आहाहा! यह दृष्टि का विषय -सम्यग्दर्शन के बिना यह (अवतार) हुआ, आहाहा! यह सम्यग्दर्शन पर्याय को स्वीकार नहीं करता। सम्यग्दर्शन त्रिकाली ज्ञायकभाव को ही स्वीकार करता है। आहाहा! समझ में आये ऐसा है प्रभु! भाषा तो सादी है, भाव तो जो है, वह है। आहाहा!

कहते हैं कि पर्याय चाहे तो केवलज्ञान हो और चाहे तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के अक्षर के अनन्तवें भाग हो... भेद की अपेक्षा से पर्याय की दृष्टि से पर्याय है, आहाहा! वह तो जाननेयोग्य है इतना। अब आदर करनेयोग्य चीज क्या है? आहाहा! त्रिकाली

एकरूप... केवलज्ञान की पर्याय भी आदरणीय नहीं है, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। आहाहा! अरे! अरे! केवलज्ञान निश्चयनय का विषय नहीं; निश्चयनय का विषय तो ध्रुव त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह उसका विषय है। पण्डितजी! आहाहा!

और आहाहा! उस पर्याय में द्रव्य कभी आया ही नहीं है। आहाहा! ऐसा द्रव्यस्वभाव अस्खलित (स्वभाव है)। उस पर दृष्टि देने से, वह वस्तु सत्यार्थ हो गयी और उसकी अपेक्षा से पर्याय का भेद असत्यार्थ हो गया। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है भगवान! क्या हो प्रभु? तेरी लीला तो देख! आहाहा! पर्याय में अनेकपना होने पर भी, भगवान! तेरी एकरूप चीज है, वह कभी अनेक में नहीं आयी। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय में भी द्रव्य नहीं आता। सम्यग्दर्शन की पर्याय में, पूर्ण ज्ञायकभाव की प्रतीति और उसकी जितनी सामर्थ्य है, वह सब उस ज्ञानपर्याय में आता है परन्तु वह चीज पर्याय में नहीं आती। आहाहा!

जैसे अग्नि को देखने से अग्नि की उष्णता का ज्ञान यहाँ होता है परन्तु वह उष्णता यहाँ नहीं आती। समझ में आया? आहाहा! वैसे ही अपनी पर्याय में लोकालोक जानने पर भी पर्याय में लोकालोक नहीं आता — एक बात... और पर्याय में पूर्ण जानने की ताकत विकसित हुई तो उसमें द्रव्य नहीं आता। पर्याय में लोकालोक नहीं आता और पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय अकेली लटकेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही समय की पर्याय... एक बार तो कहा था कि इस जगत् में एक समय की पर्याय, वही पूर्ण है बस! सम्पूर्ण द्रव्य-गुण को जानती है, अनन्त पर्याय को जानती है, लोकालोक-षट्द्रव्य की अस्ति है; इसलिए नहीं जानती (अपितु) उसका स्व पर-प्रकाशक (स्वभाव) होने से जानती है, एक समय की पर्याय में सारा सब आ गया। तथापि उसमें द्रव्य नहीं आया। द्रव्य का ज्ञान आया। आहाहा! ऐसी बात है भाई!

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं, सन्त उसी प्रकार जगत के समीप बात रखते हैं, प्रभु! आहाहा! भाई! तुझे कार्य बहुत करना पड़ता, अन्तर्मुख जहाँ सारी

—पूर्ण चीज है, वहाँ तुझे दृष्टि करना पड़ेगी, प्रभु! आहाहा! तब तुझे तेरी प्रभुता की प्रतीति होगी। समझ में आया? पर्याय तो पामर है! आहाहा!

मुमुक्षु : पामर होने पर (भी) जानने की शक्ति तो है न?

समाधान : जानने की शक्ति भले हो परन्तु वह (पर्याय) पामर है। स्वामी कार्तिकेय में तो ऐसा कहा है कि समकितदृष्टि को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्याय हुई, तथापि वह कहता है कि प्रभु! मेरी पर्याय तो केवलज्ञान की अपेक्षा से पामर है। स्वामी कार्तिकेय में मूल श्लोक है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह पर्याय पूर्ण सामर्थ्यवान् तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी द्रव्य के समक्ष पामर है। आहाहा! क्योंकि एक-एक गुण में ऐसी केवलज्ञान की पर्याय तो अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्याय एक गुण में शक्तिरूप पड़ी है। आहाहा! और ऐसे जो अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण का एकरूप प्रभु भगवान द्रव्यस्वभाव (है), उसकी दृष्टि करने से वह सत्य है और पर्याय, वह दृष्टि का विषय नहीं; इसलिए वह असत्य है। आहाहा!

अब ऐसी बातें! इसमें क्या करना, क्या करना? — कुछ सूझ नहीं पड़ती — ऐसा कहते हैं। ऐसा कि ऐसा करना और वैसा करना... आहाहा! भाई! स्वसन्मुख होना, वह (कुछ) करना नहीं है? स्व अर्थात् परिपूर्ण भगवान आत्मा... आहाहा! उसकी दृष्टि करने से — आत्मस्वभाव त्रिकाली के समीप जाकर... आहाहा! **समीप जाकर....** भाषा तो देखो!

टीका तो टीका है। आहाहा! भरतक्षेत्र में ऐसी टीका कोई है नहीं। आहाहा! गजब बात है! सर्वज्ञ अनुसारिणी... ऐसे शास्त्र की रचना हो गयी है। आहाहा! यह आत्मा.... इस टीका का नाम आत्मख्याति है न? इस टीका का नाम आत्मख्याति है, यह समयसार.... अतः आत्मख्याति अर्थात् प्रसिद्धि हुई।

स्वभाव त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करने से आत्मा कैसा और कितना है? उसकी प्रसिद्धि श्रद्धा में आ गयी और ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञेय कितना है? — वह आ गया। आहाहा! इस राग की पर्याय में उसकी प्रसिद्धि नहीं आती। समझ में आया? राग

स्वयं जड़ है, अचेतन है। उसमें ज्ञान के — चैतन्य के अंश का अभाव है। व्यवहाररत्नत्रय — चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, चाहे तो पंच महाव्रत का परिणाम हो या शास्त्रज्ञान हो, विकल्पात्मक पर से पढ़ा (परलक्ष्यी ज्ञान) परन्तु राग, वह तो अचेतन है। बन्ध अधिकार में तो यहाँ तक कहा है कि जितना शास्त्रज्ञान है, पर का... वह शब्दज्ञान है। वह आत्मज्ञान नहीं — ऐसा लिया है। बन्ध अधिकार! वह ज्ञान शब्द का ज्ञान है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह शब्द है न? उसमें शब्द निमित्त थे न? और ज्ञान तो भले अपनी पर्याय में हुआ परन्तु वह शब्दज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा!

बन्ध अधिकार में है। नव तत्त्व की श्रद्धा, वह नव तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा है, अपनी नहीं। आहाहा! है उसमें? और छहकाय की रक्षा का भाव वह छहकाय जीव है, वह पर है, तेरी चीज नहीं। आहाहा! ऐसा वहाँ — बन्ध अधिकार में लिया है। आहाहा!

यहाँ तो इससे आगे बढ़कर... आहाहा! पर्याय में जो गति आदि है, अनियतता है, पर्याय में हीनाधिक दशा होती है, वह सब... पर्याय की दृष्टि से पर्याय है परन्तु वस्तु की दृष्टि करने से, अनुभव करने पर, सम्यग्दर्शन के विषय का अनुभव करने पर वह सब उसके विषय में नहीं आता, इस अपेक्षा से अभूतार्थ है। समझ में आया? अब ऐसा उपदेश, अब इसमें किस प्रकार (समझना)? आहाहा! दूसरी तो ऐसी बातें होती हैं कि ऐसा करो — व्रत करो, दया पालो, भक्ति करो, राग करो...

मुमुक्षु : राग करने का उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर बनाओ, गजरथ चलाओ.... ऐ...ई...! गोदिकाजी! यह पैसेवालों को तो ठीक दिखता है, कुछ पैसे से होता हो तो... बापू! कहीं नहीं भाई! यह पर की चीज कर नहीं सकता। मन्दिर बना नहीं सकता, गजरथ आत्मा चला नहीं सकता। रथ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। उसमें भाव होता है वह शुभ हो, वह शुभराग बन्धन का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप प्रतिष्ठा तो कराते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कराता है? होती है। हमने तो कभी किसी से नहीं कहा कि यह करो; मन्दिर बनाओ, यह भी हमने तो कभी नहीं कहा। यह मकान भी बनाओ,

हमने तो कभी नहीं कहा। स्वाध्याय मन्दिर बनता था तो कभी कहा नहीं कि यह बनाओ। मैंने तो ऐसा कहा था कि तुम बनाते हो परन्तु हमारी कोई विशेषता या वीतरागता बढ़ जाये तो हमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि हमें यहाँ रहना ही पड़ेगा। पहले से कहा था। हमने कभी कोई मकान बनाओ या ऐसा कुछ (नहीं कहा)। यहाँ करोड़ों रुपये का मकान हो गये हैं, अभी यहाँ.... कभी कहा नहीं। बनते हैं तो हम जानते हैं। है?

मुमुक्षु : आपको इस मकान में रोक दिया, वीतरागता नहीं बढ़ने दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी ने नहीं रोका है।

मुमुक्षु : पर पदार्थ रोकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? अपने राग में.... वीतरागता न हो उस कारण से राग में रुक गया है, मकान के कारण नहीं — ऐसी बात है प्रभु! क्या हो? आहाहा! यहाँ अब यह कहा।

भगवान निश्चल स्थिर प्रभु पड़ा है एकरूप! आदि-अन्तरहित, अकृत्रिम-नहीं किया हुआ — चीज (है)। पर्याय तो कर्ता होती है और भोक्ता होती है, वह चीज नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुवभाव, अविचलभाव, अविनाशीभाव, नित्यभाव, ध्रुवभाव, एकरूप भाव, सदृशभाव, सामान्यभाव को देखने से, उसके समीप जाने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा और समीप जाने से यह सब पर्याय अभूतार्थ दिखेगी, उसमें नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? तीन बोल हुए —अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत — तीन (बोल) हुए।

अब चौथा 'अविशेष', चौथा। **जैसे सोने का,....** सोना... सोना... स्वर्ण, **चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से....** इत्यादि गुणरूप भेदों से **(अनुभव करने पर)...** जानना करने पर, अनुभव अर्थात् ज्ञान करने पर। **विशेषता भूतार्थ है (सत्यार्थ है)....** उस सोने के जो अनेक चिकनापन आदि गुण हैं, वे विशेष से देखने से वे हैं, यह विशेष हुआ। गुणी के गुण का भेद विशेष हुआ। आहाहा! विशेष देखने से है परन्तु उसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो सोने की बात है। उसकी दृष्टि से सोना ख्याल में नहीं आता। समझ में आया? सोने के गुणभेद देखने से सोना ख्याल में नहीं आता। आहाहा!

तथापि.... तो भी **जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं....** आहाहा! चिकना, पीलापन, और सब विलय हो गये हैं, अकेला सामान्य सोना (को देखने से) विशेष को न देखने से विशेष विलय हो गये हैं। जिसमें — सामान्य है नहीं। **ऐसे सुवर्णस्वभाव के समीप जाकर अनुभव — ज्ञान करने पर विशेषता अभूतार्थ है (असत्यार्थ है)....** वह सोने की विशेषता-चिकनापन आदि झूठ है। एकरूप सोने में वह भेद नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह चौथा बोल जरा कठिन है।

इसी प्रकार आत्मा का, ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता है.... गुणभेद है, वह पर्यायनय का विषय है। व्यवहारनय का वह विषय है। आहाहा! **तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं....** सर्व जो अव्यक्त में कहा है कि चैतन्य सामान्य में, चैतन्य की विशेष व्यक्तियाँ सब अन्तर्गत हो गयीं, पूर्व की पर्याय अन्तर्गत हो गयी, वर्तमान पर्याय भिन्न बाहर रही तो उस वर्तमान पर्याय से देखने में भूत और भविष्य की पर्याय चैतन्यसामान्य में अन्दर में घुस गयी। जैसे जल की तरंग जल में डूबत है.... आता है न? यह तो पूर्णरूप है — ऐसे चैतन्य सामान्य में जितनी पर्याय हुई... एक समय की बाहर-व्यक्त रही, बाकी सब पूर्व-भविष्य और भूत की तो अन्तर प्रविष्ट हो गयी। वे गुण में अभेदरूप हो गयी। आहाहा!

जैसे, जो ज्ञान का क्षयोपशम है, वह पर्याय है। एक समय की अवस्था (है)। दूसरे समय में वह अवस्था अन्दर में चली गयी तो बाहर में तो वह क्षयोपशम दशा थी। अन्दर गयी वहाँ क्षयोपशम नहीं रही, पारिणामिकभाव हो गयी। आहाहा! यह क्या है यह? समझ में आया?

मुमुक्षु : नष्ट हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नष्ट हो गयी परन्तु गयी कहाँ? नष्ट हुई किन्तु सत् थी न? वह कहीं असत् नहीं थी, परन्तु गयी कहाँ? वर्तमान में से गयी है परन्तु सामान्य में ऐसे गयी है।

मुमुक्षु : बाहर नहीं रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय में नहीं है, अन्दर में है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वह वर्तमान दशा — चाहे तो उदय की — राग-आदि हो, वह एक समय रहती है, दूसरे समय तो व्यय होता है। व्यय होकर कहाँ गयी? अस्ति है न, अस्ति थी न? उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् — अस्ति है। तीनों सत् है तो पर्याय भी उदय की थी, (वह) सत् थी। आहाहा! तत्वार्थसूत्र में तो उसे जीवतत्व कहा गया है। दूसरे अध्याय में (कहा है) राग आदि — दया, दान का विकल्प वह जीवतत्व है — ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : स्वतत्वं....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वतत्व कहा है परन्तु एक समय में रहकर दूसरे समय में चली जाती है। कहाँ? अन्दर में... परन्तु अन्दर में वह विकार नहीं चला जाता, किन्तु उसकी योग्यता अन्दर में चली जाती है — पारिणामिकभावरूप हो जाती है। आहाहा! गजब बात है भाई! समझ में आया?

इस प्रकार क्षयोपशमभाव की पर्याय एक समय की स्थिति है, दूसरे समय चली जाती है तो कहाँ जाती है? अन्दर में। तो अन्दर में क्षयोपशमभाव की पर्याय नहीं रही। अन्दर में गयी तो पारिणामिकभाव की दशा हो गयी। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार क्षायिक-केवलज्ञान की पर्याय एक समय रहती है, दूसरे समय व्यय होती है तो गयी कहाँ? अन्दर। यहाँ तो क्षायिकभाव की थी, अन्दर गयी वहाँ पारिणामिकभाव हो गया।

मुमुक्षु : अन्दर में पर्यायरूप कहाँ रही, द्रव्यरूप हो गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायरूप नहीं, गुणरूप हो गयी।

मुमुक्षु : पारिणामिकभाव में फेरफार हो जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ फेरफार नहीं, निश्चय में तो फेरफार नहीं, व्यवहार से ऐसा कहने में आता है। पर्याय अन्दर से निकली और पर्याय अन्दर गयी, यह सब भेदनय से है। गजब है भाई! यह द्रव्य का स्वभाव अचिन्त्य है। आहाहा!

जैसे कहीं क्षेत्र का अन्त है? यह लोक तो असंख्य योजन में है, पीछे अलोक... आकाश कहाँ पूरा हुआ? पूरा हुआ तो पीछे क्या? भाई! कोई अलौकिक स्वभाव है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : कहीं तो अन्त होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं न कहीं अन्त है ही नहीं; इसलिए तो यह कहना है। आहाहा! अन्त है तो पीछे क्या? पीछे है या नहीं कुछ अन्त? भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं बापू! आहा! एक नास्तिक व्यक्ति था, ठीक नहीं था, दीवान का लड़का था। मेरे पास आया तो पूछता था। मैंने कहा भाई! कहो, भले तुम्हें कोई बात न जँचे तो एक बात मैं ऐसी कहता हूँ कि यह क्षेत्र है क्षेत्र.... कहाँ पूरा हुआ? विचार में तो लो, यह क्षेत्र कहाँ पूरा हुआ? आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में पूरा हो गया, पीछे? आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... अनन्त को अनन्त गुणाकार करो तो भी उसका अन्त नहीं है। वह क्या चीज है? कोई क्षेत्र स्वभाव भी कोई अलौकिक है! ऐ...ई...! दीवान का लड़का...

मुमुक्षु : केवलज्ञान अनन्त को जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त को अनन्तरूप से जानता है (अनन्त को) जाना इसलिए अन्त हो गया — ऐसा नहीं है। अनन्त को अनन्तरूप से जाना... जाना इसलिए वहाँ अन्त हो गया — ऐसा नहीं है। आहाहा! यह जैनदर्शन में (तात्कालिन साप्ताहिक समाचार पत्र) में कल बहुत गड़बड़ आयी है। सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा, तब तो नियत हो गया (— ऐसा उसमें लेख आया है)। अरे! सुन तो सही प्रभु! आहाहा! यह तो सर्वज्ञ की पर्याय का निश्चय करना (उसमें) स्वभावसन्मुख होकर अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! पीछे देखा वैसा होगा... आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! यहाँ क्षेत्र का स्वभाव ऐसा ख्याल में.... आहाहा!

काल का स्वभाव? कहाँ से शुरु हुआ? द्रव्य की पर्याय कहाँ से शुरु — पहली पर्याय है? आहाहा! द्रव्य कहाँ से और पर्याय भी पहली पर्याय कौन सी? पहली नहीं है। अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... भाई! वस्तु का स्वरूप कोई अलौकिक है। वह तो जैनदर्शन ही जानता है, अन्य को तो पता नहीं है। आहाहा! तो उस काल की आदि नहीं है, क्षेत्र का अन्त नहीं है, काल का अन्त नहीं है, उससे भी अनन्त गुणा क्षेत्र का प्रदेश है। अनन्तगुणा धर्म आत्मा का, अनन्तगुणा का

गुण तो उस गुण का अन्त नहीं की एक, दो, तीन, अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., अनन्त..., यह अन्तिम आया — ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : गुरुदेव! कोई कहता हो कि केवली भगवान का केवलज्ञान परिपूर्ण है तो पहली पर्याय कौन सी? वह तो जाने न?

समाधान : परन्तु पहली पर्याय है नहीं, यह तो कहा न? यह तो है ख्याल है, सब तर्क तो हमारे पास सब आये हैं। पहली पर्याय है नहीं तो पहली पर्याय को भगवान कहाँ से देखेंगे? अनादि की है, ऐसी अनादि की देखते हैं। कठिन बात है भाई!

मुमुक्षु : अनुमान से देखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष देखते हैं, अनुमान कैसा? भविष्य की पर्याय, भूत की पर्याय वर्तमान में नहीं है, तथापि भगवान तो प्रत्यक्ष देखते हैं। आहाहा! बापू! यह कोई अलौकिक बातें हैं! सर्वज्ञ की पर्याय भविष्य में अनन्त काल बाद होगी, अभी है नहीं परन्तु वहाँ ज्ञान में है — ऐसी प्रत्यक्ष दिखती है।

मुमुक्षु : है नहीं तो क्या देखे?

समाधान : वह है नहीं, यह दिखता है। यह वहाँ — भविष्य में होनेवाली प्रत्यक्ष यहाँ दिखती है, बापू! यह अलौकिक बातें! भाई! आहाहा!

यह क्षेत्र का स्वभाव, काल का स्वभाव, गुण का-अनन्त का स्वभाव कि कहीं तो अन्त होगा? उसका — क्षेत्र का अन्त आया... अनन्त गुण है तो इतने क्षेत्र में है परन्तु उसकी-भाव की संख्या की कोई हद (मर्यादा) नहीं, आहाहा! भाई! वस्तु का स्वभाव ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं कि इतने गुण हैं, भेद — अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... वह तो भेद की दृष्टि से गुण भले हो, है? आत्मा का ज्ञान-दर्शन आदि अर्थात् अनन्त, गुणरूप भेद, गुणी में गुणरूप भेद... आहाहा! अनुभव अर्थात् ज्ञान करने पर विशेषता तो है, भेद है, पर्यायनय का विषय गुणभेद है, गुणी का गुणभेद है। आहाहा! गजब बात है भाई!

तथापि.... ऐसा होने पर भी **जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं....** द्रव्यस्वभाव में गुणभेद विलय हो गया है। अन्दर में भेद रहता ही नहीं। आहाहा! गुणभेद की दृष्टि भी पर्यायनय का विषय है। आहाहा! और इतना मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा होने पर भी, अनन्त गुणरूप भाव सत्यार्थ — पर्यायदृष्टि से सत्यार्थ होने पर भी, आहाहा! अरे! उसकी पर्याय लो... एक समय की अनन्त गुण की यह पर्याय अनन्त है। उसमें यह पर्याय अनन्त की अन्तिम है, यह कहाँ आया? क्या कहा? आत्मा में जो अनन्त गुण हैं — अपार... अपार... अपार... पार नहीं — जैसे क्षेत्र का पार नहीं, काल का पार नहीं, भाव की संख्या का पार नहीं, इतनी सब पर्याय है; जितने गुण हैं, उतनी पर्याय है तो उन अनन्त पर्यायों में यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... और यह अन्तिम / आखिर की पर्याय है — कहाँ आया उसमें? एक समय की पर्याय अनन्त है, उसमें यह पर्याय आखिर की, आखिर की, आखिर की है और यह सब अनन्त... अनन्त है, कहाँ आया उसमें? आहाहा! पाटनीजी! ऐसा मार्ग है प्रभु का, भाई! आहाहा! ऐसे गुणभेद....

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण तो बहुत हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है! वस्तु तो ऐसी है भाई! वह किसी ने की नहीं है, कोई कर्ता नहीं है, इस चौदह ब्रह्माण्ड का। सत् है, उसको कर्ता कैसे? है उसका कर्ता कैसे? न हो उसका कर्ता कैसे? आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि गुणभेद से देखने पर है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं — ऐसे आत्मस्वभाव के समीप-एकरूप गुण, द्रव्यस्वभाव! जिसमें गुण-भेद भी नहीं। आहाहा! गुणभेद भी पर्यायदृष्टि का विषय है, द्रव्यदृष्टि का विषय गुणभेद है ही नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय, एकरूप द्रव्यस्वभाव (है); उसका विषय गुणभेद नहीं है। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य कितनी? वह क्या कहें? आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुणभेद होने पर भी, वस्तु के स्वभाव को देखो तो वह गुणभेद नाश हो गया, भेद है नहीं। ऐसी दृष्टि... उसकी दृष्टि करना। आहाहा! उस दृष्टि में सामर्थ्य कितना, प्रभु? आहाहा! अकेला अभेद अनन्त गुण का एकरूप उसका (स्वभाव का) ज्ञान हुआ पर्याय में और श्रद्धा में उसकी प्रतीति हुई। समझ में आया? बापू!

उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यहाँ तो अभी यह माना, यह माना सम्यग्दर्शन। अरे प्रभु! सुन तो सही बापू! सम्यग्दर्शन हुआ तो उसके भव का अन्त हो गया। आहाहा!

यह प्रभु तो मुक्तस्वरूप... अबद्ध में आया न? अबद्ध अर्थात् मुक्त; बद्ध नहीं कहो या मुक्त कहो, वह तो मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से वे गुणभेद अभूतार्थ हैं। आहाहा!

अरे! चैतन्य चमत्कार वस्तु है। भाई! एक क्षेत्र का चमत्कार देखो, कहीं अन्त नहीं! क्या है? यह ख्याल में लेना इसे मुश्किल है। काल का अन्त नहीं, पर्याय का अन्त नहीं की यह पहली पर्याय! क्या है प्रभु? गुण का अन्त नहीं — अनन्त... अनन्त... भाव कि यह अनन्त में अनन्त में अनन्त में अनन्त में अन्तिम का यह भाव — ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा द्रव्यस्वभाव जो है, उसके समीप जाने पर, आहाहा! भेददृष्टि को छोड़कर, भगवान पूर्णानन्द के नाथ के समीप जाने पर, यह समीप जाने पर जो सम्यग्दर्शन हुआ, प्रभु! उसमें कितनी ताकत है? आहाहा! कि सम्पूर्ण आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का एक पिण्ड उसे जिसने प्रतीति में लिया। प्रतीति में लिया, वस्तु आयी नहीं उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : सुनने को मिलता है, वही अहोभाग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ऐसी है, बापू! क्या कहे? अरे! भगवान के श्रीमुख से तो निकली हुई यह बात है। आहाहा! समझ में आया? इसके लिए निवृत्ति लेकर वाँचन आदि विचार (आदि) करके निर्णय करना पड़ेगा प्रभु! यह ऐसे नहीं मिल सकता। आहाहा! इस पैसे के लिये भी देश छोड़कर परदेश में भटकता है, वहाँ स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, कुटुम्ब नहीं, कोई न हो... वह तो फिर मुम्बई में घर हो जाये तो वहाँ सब हो, यह अब इंग्लैण्ड जाता हो तो वहाँ साथ कौन होगा? इसके साथ कौन होगा? पूनमचन्दजी के साथ वहाँ भटकने में कोई है? दूसरा कोई साथ भटकेगा? यहाँ तो दूसरा कहना है कि पैसे के लिए देश और कुटुम्ब को छोड़कर भी वहाँ जाता है तो आत्मा को पर्याय छोड़कर द्रव्य में जाना है। आहाहा! विशेष कहेंगे। समय हो गया, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गर्भ कल्याणक

(दिनांक 21-01-2024)

प्रवचन नं. ६९　गाथा-१४　दिनाङ्क २६-०८-१९७८ शनिवार
श्रावण कृष्ण ८,　वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्रीसमयसार, गाथा १४ टीका चलती है। क्या चला? यह आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त गुण हैं, उस गुणी के गुण का भेद करना, वह तो विकल्प है। सम्यग्दर्शन होता है, प्रथम में प्रथम (सम्यग्दर्शन होता है) तो वह गुणी, गुण (गुणी के) भेद का विकल्प भी छोड़कर, एक स्वभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! विशेष गुण के भेद का लक्ष्य भी छोड़ना — ऐसा कहते हैं। आहाहा! सामान्य जो ज्ञायक एकरूप स्वभाव है, विशेष सर्व विलय हो गये हैं। आहाहा! पर्याय की विशेषता तो लक्ष्य में (से) छोड़ना; राग का-विकल्प का पक्ष तो छोड़ना, वह तो स्थूल बात (है) परन्तु यहाँ गुण-गुणी का भेदरूप विशेष का लक्ष्य भी छोड़ना। अलिंगग्रहण में ऐसा आया है — अर्थावबोधरूप गुण विशेष से नहीं आलिंगित — ऐसा एक द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! अर्थावबोधरूप गुण-विशेष को आलिंगन नहीं करता, उसे स्पर्श नहीं करता, उसे नहीं छूता। आहाहा! ऐसा एक द्रव्यस्वभाव है, वह आत्मा है। आहाहा!

अन्तर एकस्वभावरूप जो आत्मद्रव्य है, गुण-गुणी के भेद से भी भिन्न (आत्मद्रव्य है)। आहाहा! अभी तो ऐसा (कहते) हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होता है। अरे प्रभु! यह व्यवहार तो अनन्त बार किया नौवें ग्रैवेयक गया तो, ऐसा व्यवहार तो (अभी) है ही नहीं। यहाँ तो गुण-गुणी के भेद को भी निकाल दे। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होगा — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह चार बोल हुए। आज पाँचवाँ है।

पाँचवें बोल में दृष्टान्त है। **जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है...** निमित्त है। उष्णता तो स्वयं से होती है, अग्नि निमित्त है। **ऐसी उष्णता के साथ संयुक्तारूप....** उष्णता के साथ संयुक्तरूप जल **तप्ततारूप-अवस्था से अनुभव करने पर (उष्णतारूप संयुक्तता....)** है। पर्याय में अग्नि का निमित्त और उष्णता है, वह पर्याय है। आहाहा! **तथापि एकान्त शीतलतारूप....** एकान्त शीतलता... क्या कहते हैं? एक स्वभाव जो शीतलता त्रिकाली, एकान्त एक स्वभाव **शीतलतारूप....** आहाहा! जल का एकरूप शीतलता स्वभाव। आहाहा! ऐसा देखने से **जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तपना उष्णता झूठा है।** आहाहा! यह तो दृष्टान्त है।

सिद्धान्त **इसी प्रकार आत्मा का,....** भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली एक ज्ञानस्वभाव स्वरूप, एक ज्ञानस्वभावरूप ऐसे आत्मा का, आहाहा! **कर्म जिसका निमित्त है....** निमित्त है, हाँ! **ऐसे मोह के साथ संयुक्तारूप अवस्था से अनुभव करने पर (संयुक्तता भूतार्थ है-सत्यार्थ है,....)** कर्म के निमित्त से... जैसे अग्नि का निमित्त और जल में उष्णता है। वैसे कर्म का निमित्त और मोह-राग-द्वेष मिथ्यात्वभाव पर्याय में है। आहाहा! वह है व्यवहारनय का विषय है।

तथापि.... तो भी **जो स्वयं एकान्त....** क्या कहते हैं? उसमें आया था कि कर्म के निमित्त से मोह-राग-द्वेष हुआ, अब यहाँ तो निमित्त से दूर... आहाहा! स्वयं, स्वयं स्वभाव उसका है। वह तो कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में राग-द्वेष-मोह था, वह व्यवहार की पर्याय का विषय है। अब सम्यग्दर्शन पाने में विषय क्या? आहाहा! समझ में आया? **स्वयं एकान्त....** स्वयं स्वरूप, उसमें तो निमित्त की अपेक्षा होकर विकार था, पर्याय में कर्म के निमित्त की अपेक्षा से विकार था। उपादान अपने में था। अब यहाँ तो निमित्त नहीं, स्वयं; उस निमित्त के सामने स्वयं आया। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है प्रभु! आहा! जैसे एक कर्म के निमित्त से उपादान तो अपने में से हुआ, परन्तु उस पर्याय में जो मोह और राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध आदि के भाव, उस पर्याय की अपेक्षा से — कर्म के निमित्त की अपेक्षा होकर अपने में है परन्तु वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

अत: स्वयं... उसमें निमित्त से विकार था — ऐसा कहा था। यहाँ स्वयं निमित्त

के अतिरिक्त स्वयं सहज पारिणामिक ज्ञायकभाव... आहाहा! **स्वयं, एकान्त** — एक धर्म, जिसका सदा एक धर्म है। यह मोह और राग, द्वेष अनेक, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं हैं। आहाहा! **एकान्त स्वयं एक धर्म,** धर्म क्या? कि **बोधरूप (ज्ञानरूप) है ऐसे जीवस्वभाव....** आहाहा! स्वयं एक ज्ञानरूप जिसका स्वभाव है। त्रिकाली स्वयं ज्ञानरूप एक स्वभाव ऐसा भगवान। आहाहा! है? स्वयं एकान्त एक धर्म ऐसा ज्ञानरूप... है! भगवान तो स्वयं एक ज्ञानरूप आत्मा है। आहाहा!

ऐसे जीवस्वभाव के समीप जाकर.... एकरूप ज्ञानस्वभाव... ज्ञान की प्रधानता से कथन है। बाकी आनन्दस्वभाव, दर्शनस्वभाव, शान्तस्वभाव, स्वच्छतास्वभाव, प्रभुतास्वभाव.... उस एक ज्ञानस्वभाव में सर्व स्वभाव की एकता ज्ञान में (जानने में आती है)। समझ में आया? आहाहा! यह जीव का जो अनन्त स्वभाव है, उसमें ज्ञान प्रधानता से कथन है कि एकरूप जिसका ज्ञानस्वभाव, कायम ही एकरूप है, स्वयं है, वह किसी निमित्त से स्वयं पारिणामिक स्वभावभाव है — ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वयं एकान्त एक धर्मरूपी ज्ञान, ज्ञानरूपी आत्मा है। ऐसे जीवस्वभाव के समीप जाकर। आहाहा! अर्थात् एकरूप ज्ञानस्वभाव के समीप अर्थात् सन्मुख जाकर **अनुभव करने पर....** आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। ऐसी चीज है। आहाहा!

आचार्य महाराज ने तो बहुत सरल करके टीका की है तो उसे (भी) कितने ही दुरूह / कठिन (कहते हैं)। रात्रि को कहा था न, दुरूह — ऐसा कहते हैं? ऐसा कि समयसार है तो सरल परन्तु विद्वानों ने उसकी टीका करके दुरूह कर दिया है (— ऐसा कहते हैं)। अरे प्रभु! तुम क्या कहते हो!

मुमुक्षु : विद्वानों ने या आचार्यों ने?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विद्वान अर्थात् आचार्य का मूल कहने का अर्थ यह है, है आया है समयसार में आया है। विद्यानन्दजी के (समयसार में ऐसा आया है) आहाहा! यहाँ दुरूह कर दिया है अमृतचन्द्राचार्य का। अरे भगवान! ऐसा नहीं कहते प्रभु! ऐसा, आहाहा! क्योंकि उसमें वह आया है न? '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं। ववहारदेसिदा**' यह इन्हें सरल लगता है। व्यवहार का उपदेश देना यह सरल लगा,

परन्तु टीकाकार ने कहा कि व्यवहार अर्थात् क्या? '**देसिदा**' अर्थात् क्या? कि उस समय भी राग की अशुद्धता है और शुद्धता की कमी है, वह व्यवहार है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है — ऐसा टीकाकार ने दुरूह कर दिया है। टीकाकार ने स्पष्ट कर दिया है, दुरूह नहीं किया प्रभु! अरे! ऐसा नहीं है। बात उन्हें यह शब्द बाधक हैं और व्यवहारदेसिदा अर्थात् पहले तो व्यवहार का उपदेश देना (यह सरल पड़ते हैं) परन्तु यह उपदेश की व्याख्या यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? है!

मुमुक्षु : आचार्य का अर्थ ऐसा होता है ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य को अर्थ नहीं आया — ऐसा कहते हैं। टीकाकार को.... अरे प्रभु! अरे! १५ वीं गाथा **अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।** अब **अपदेस** का अर्थ तो जयसेनाचार्य ने द्रव्यश्रुत किया है, उसे झूठा बतलाकर कहते हैं कि अपदेस अर्थात् ऐसा नहीं, अखण्ड प्रदेश ऐसा लेना। अरे प्रभु! यह क्या करता है भाई! आहाहा! यह दुनिया तो चलेगी, दुनिया ऐसी है, परन्तु बापू! यह मार्ग (दुनिया से) विरुद्ध है। समझ में आया?

अपदेससंत आता है न? उसका अर्थ यह किया है। समयसार में आया, (यहाँ) अखण्ड, अखण्ड ऐसा लेना परन्तु यहाँ अपदेस का अर्थ जयसेनाचार्य ने द्रव्यश्रुत किया, उस अर्थात् द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा है कि अबद्धस्पृष्ट देखना, वह जैन शासन है — ऐसा द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा है और भावश्रुत तो वह है ही, आहाहा! भावश्रुत से जो अबद्धस्पृष्ट का अनुभव है, वह भावश्रुत तो जैन शासन है, वह शुद्ध उपयोग है, वह जैनधर्म है, वह जैन शासन है। आहाहा! १५ वीं गाथा में वह अर्थ बदल डाला। यहाँ कहते हैं कि ऐसा नहीं प्रभु! अपनी बात रखने को शास्त्र का अर्थ पलट देना, वह नहीं होता भाई! आचार्यों ने, सन्तों ने तो करुणा करके वह टीका बनायी है, तथापि वे तो कहते हैं कि प्रभु! यह टीका मैंने नहीं बनायी, हाँ! वह तो शब्दों से बन गयी है नाथ! आहाहा! परमाणु की पर्याय से टीका बन गयी है। अतः हमने टीका बनायी है — ऐसे मोह से मत नाचो। आहाहा!

मुमुक्षु : अमृतचन्द्राचार्य को वह समझ में नहीं आया था?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया था (ऐसा नहीं है)। अरे भगवान! अमृतचन्द्राचार्य कौन हैं? पंच परमेष्ठी परमेश्वर हैं। आहाहा! बापू! साधु कौन है? आचार्य कौन है? आहाहा!

कितने ही तो 'णमो लोए' में से 'लोए' निकाल देते हैं। पण्डितजी! णमो लोए सव्व साहूणं है न? तो 'लोए' निकाल दो.... अभी वह तेरापंथी का तुलसी है न, वह कहता है 'लोए' निकाल दो। अरे प्रभु! यह तुम क्या करते हो? यह तुम 'णमो लोए सव्व साहूणं' ऐसा न रखकर 'णमो सव्व साहूणं' बस! लोए नहीं... अरे प्रभु...!

मुमुक्षु : लोए अर्थात् सब साधु ले लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब लेना, फिर वह तो दूसरा वह अर्थ करते हैं। सुशील (श्वेताम्बर साधु) लोए अर्थात् जितने साधु हैं वे सब ले लेना... अरे! यह अर्थ यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो अनन्त आनन्द जिसका अनुभव हुआ, तीन कषाय का अभाव है, जिन्हें छठा सातवाँ गुणस्थान क्षण में अनेक बार आता है — ऐसे ही साधु को लिया है। अन्यमती की तो बात ही कहाँ है? जैन में जो द्रव्यलिंगी है, उसकी बात (भी) यहाँ नहीं है। समझ में आया? वह अक्षर-अक्षर सत्य है। अरे! धवल (धवला टीका) तो ऐसा कहता है कि णमो लोए सव्व (पद) अन्त दीपक है। अतः चारों में ले लेना। इसे विशेष कहते हैं, इससे धवल तो भी विशेष कहते हैं। त्रिकालवर्ती शब्द साथ में लेना, यह पूरा पाठ है।

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उव्वझायाणं
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साधुणं

धवल में ऐसा पाठ करके णमोकार पूरा ऐसा बनाया। आहाहा! समझ में आया? परन्तु त्रिकालवर्ती निकाल दिया, पश्चात् णमो लोए सव्व साहुणं रखा और अन्त दीपकरूप से चारों में ले लेना — णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं.....

ऐसे लेना। वस्तु का स्वरूप अनादि से ऐसी चीज है, उसमें गड़बड़ करे, वह नहीं चलता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! कि जैसे वह कर्म का निमित्त है और उपादान तो अपना है, राग-द्वेष-मोह आदि; तो उस पर्याय में है परन्तु अब दृष्टि का विषय — जब सम्यग्दर्शन प्रगट करना है तो एक, एकान्त, एक अन्त, एक धर्म, एक स्वभाव बोध बीज, ज्ञानस्वरूप.... बीज का अर्थ यहाँ स्वरूप लेना। एक ज्ञानस्वरूप एक धर्म सामान्य, एक स्वरूप ऐसे जीव का स्वभाव, उसकी दृष्टि करने से, यह मोहादि का भाव अभूतार्थ है, झूठा है। आहाहा! समझ में आया? कहो, ज्ञानचन्दजी! है? तो भी स्वयं एकान्त अपने से अपना स्वभाव त्रिकाल, आहाहा! उसमें था कि कर्म के निमित्त से विकृत अवस्था — इतना निमित्त-निमित्त सम्बन्ध व्यवहारनय में बताया था। निश्चय में तो स्वयं ज्ञायक एकरूप स्वभाव, ज्ञान एकरूप स्वभाव, आनन्द एकरूप स्वभाव, शान्त एकरूप स्वभाव... शान्त अर्थात् स्थिरता चारित्र की (स्थिरता), वीतराग एकरूप स्वभाव — ऐसे सर्व गुणों का एकरूप स्वभाव, ऐसे ज्ञान के एकरूप स्वभाव में सब साथ में ले लेना। आहाहा!

भगवान एक धर्म, एक स्वभाव....। ज्ञानरूप ऐसे जीव के स्वभाव की दृष्टि करने से, जो पर्यायबुद्धि है उसे छोड़कर, द्रव्यस्वभाव के समीप जाकर। आहाहा! इस प्रकार वहाँ जाकर अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है। यह तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन के बिना... छहढाला में आता है... ज्ञान और चारित्र सब मिथ्या है। आहाहा! पहले से थोड़ा सुधार किया है। इसमें है? स्वयं एकान्त जो ज्ञानस्वरूप है — ऐसा जीवस्वभाव.... ज्ञानस्वभाव स्वयं है। आहाहा! उसमें तो कर्म के निमित्त से मोह-विकार, विकार कर्म से... निमित्त का अर्थ यह कि निमित्त से हुआ वह नहीं परन्तु उसके — निमित्त के लक्ष्य से हुआ तो निमित्त से हुआ — ऐसा कहा जाता है। वरना तो उस समय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति का जन्मक्षण है। प्रवचनसार गाथा १०२ (में यह बात आती है) उस क्षण में, उस काल में मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति का-उत्पन्न होने का जन्मक्षण, उत्पत्ति का काल था, निमित्त भले हो, समझ में आया?

अत: पर्यायदृष्टि से देखने से मोह और राग-द्वेष पर्याय में है - ऐसा ज्ञान कराने को कहा परन्तु वह आदरणीय नहीं। आहाहा! एकरूप भगवान आत्मा स्वयं अपने से एक स्वभावरूप जीवस्वभाव के समीप जाने पर, उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव के — एक जीवस्वभाव के समीप (जाकर).... जो दूर था, पर्यायबुद्धि में एकरूप स्वभाव से दूर था। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। वह दूरी हटाकर, पर्यायबुद्धि छोड़कर... आहाहा! एक अन्त अर्थात् धर्म, ज्ञानस्वभावरूप जीव के स्वभाव की दृष्टि करने से, उसके समीप जाकर अनुभव करने से मोह आदि का भाव अभूतार्थ है। भूतार्थस्वभाव का अनुभव करने पर वह चीज अभूतार्थ है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा सम्यग्दर्शन इसने कुछ का कुछ कर डाला है। आहाहा! समझ में आया? एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ — भगवान ने जो कहा, परमार्थ का पंथ एक ही प्रकार है, यह है। आहाहा!

स्वयं ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जीव का स्वभाव, उसमें कोई निमित्तपना है नहीं और वह क्षणिक है नहीं। आहाहा! त्रिकाली ज्ञानस्वभाव स्वरूप प्रभु की दृष्टि करने से, उसके समीप जाकर अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है, अनुभूति होती है। तब रागादि को अभूतार्थ कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। ये पाँच बोल हो गये हैं।

भावार्थ : आत्मा पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखाई देता है.... अनेकरूप दिखाई देता था, अब उसमें एकरूप दिखाना है। आहाहा! देखो टीकाकार कितनी स्पष्टता करते हैं। जयचन्द पण्डित! आहाहा! आत्मा....

मुमुक्षु : टीका का अधिक स्पष्ट किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्होंने स्पष्ट किया है। लोगों को सादी भाषा में समझ में आवे—ऐसी बात कहते हैं। आहाहा! आत्मा एक वस्तु, पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखाई देता था—बद्धस्पृष्ट, अन्य-अन्य, नियत नहीं परन्तु अनियत, विशेष और रागसहित, मोहसहित—ऐसे अनेकरूप दिखता था। आहाहा!

(१) अनादि काल से कर्म पुद्गल के सम्बन्ध से बँधा हुआ.... यह पहला बोल

लेते हैं। **कर्मपुद्गल के स्पर्शवाला दिखाई देता है,...** आहाहा! **(२) कर्म के निमित्त से होनेवाली नर, नारक आदि पर्यायों में भिन्न-भिन्न स्वरूप से दिखाई देता है....** भगवान एकरूप स्वभाव होने पर भी कर्म के निमित्त से उसको नारकी आदि गति अनेकरूप दिखते थे।

(३) शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद.... प्रतिच्छेद घटते भी हैं और बढ़ते हैं। पर्याय में अगुरुलघु आदि एक समय की पर्याय में षट्गुण हानिवृद्धि आदि होती है, बढ़ती भी है **यह वस्तु का स्वभाव है...** पर्यायस्वभाव, हाँ! (वह) यह वस्तु-स्वभाव का अर्थ पर्यायस्वभाव **वह नित्य-नियत एकरूप दिखाई नहीं देता,....** क्या कहा? पर्याय में हीनाधिक दशा होती है, वह वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव अर्थात् पर्याय का ऐसा एक धर्म है। वस्तु का स्वभाव अर्थात् त्रिकाली की यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

यह घटती-बढ़ती पर्याय अनन्त गुणी बढ़ जाये और अनन्त गुणी हीन हो जाये... आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान हो जाये, केवलज्ञान हो जाये, मति-श्रुत की पूर्णता हो जाये, अपूर्ण रहे इतने भेद, वह भी उसमें **यह नित्य-नियत एकरूप दिखाई नहीं देता।** आहाहा! नित्य-नियत स्वभाव एकरूप दिखाई नहीं देता, एक बात।

(४) वह दर्शन, ज्ञान आदि अनेक गुणों से विशेषरूप दिखाई देता है और.... (५) कर्म के निमित्त से होनेवाले मोह, राग, द्वेष आदि परिणामों से सहित वह सुखदुःखरूप दिखाई देता है।..... सुख-दुःख की कल्पना से.... यह सुख आनन्द का नहीं लेना, यह सुख-दुःख कल्पना का लेना। स्वभाव का सुख, उस आनन्द की तो एकरूप दशा है। इस कल्पना के सुख-दुःख की अनेक दशा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **सुखदुःखरूप दिखाई देता है....**

यह सब अशुद्ध-द्रव्यार्थिकरूप.... ऐसा क्यों कहा? है तो पर्याय परन्तु वह द्रव्य की पर्याय है — ऐसा गिनकर अशुद्ध-द्रव्यार्थिक कहा है। है? **अशुद्ध-द्रव्यार्थिकरूप व्यवहारनय का विषय है।....** अशुद्ध-द्रव्यार्थिक कहो या पर्यायार्थिक कहो या व्यवहार कहो (सब एकार्थ है)। आहाहा! अशुद्ध पहले क्यों लिया? कि द्रव्य त्रिकाली होकर, पर्याय में अशुद्धता होती है, इसलिए अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा। वह कोई दूसरे में हुई है

और दूसरे से हुई है — ऐसा नहीं है। आहाहा! पहले के पण्डितों के कथन तो देखो! वस्तु की जैसी स्पष्टता है, उस स्पष्टता को खोलकर रखते हैं। आहा!

मुमुक्षु : अगुरुलघु माने क्या?

समाधान : अगुरुलघु हो परन्तु पर्याय में हीनाधिक दशा है, वह भी है, अगुरुलघु है परन्तु पर्याय में हीनाधिकदशा होती है, वह भी लेना। आहाहा! सब अशुद्ध द्रव्यार्थिक व्यवहारनय का विषय है।

इस दृष्टि (अपेक्षा) से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है।.... पर्याय में वह भेद है। बद्धपना, निमित्तपना है, विकार है, अनेक पर्याय हीनाधिकरूप है, विशेषता है, व्यवहारनय से देखो तो वह है। **परन्तु आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता,....** आहाहा! यह सिद्धान्त है। भगवान आत्मा स्वयं एकरूप त्रिकाली स्वभाव, जिसमें निमित्त की अस्ति की तो अपेक्षा नहीं परन्तु निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। क्षायिक समकित, क्षायिक केवलज्ञान में निमित्त के अभाव की अपेक्षा है। राग में निमित्त के सद्भाव की अपेक्षा है। इसमें (स्वभाव में) तो निमित्त के सद्भाव और निमित्त के अभाव की कोई अपेक्षा नहीं है — ऐसा स्वयं आत्मस्वभाव (है)। आहा! आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु बापू मार्ग यह है। आहाहा!

अरे! जन्म-मरण कर-करके चौरासी के अवतार किये, भाई! इसके दुःख की व्याख्या करते हुए परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरे नरक के क्षणमात्र के दुःख कहने में करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहे जा सकते, भाई! तूने इतने दुःख भोगे हैं, इस मिथ्यात्व के कारण (भोगे हैं)। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन होने के बाद आर्तध्यान-रौद्रध्यान होता है परन्तु भविष्य की आयु का बन्ध अशुभभाव के काल में नहीं होता। आहाहा! क्या कहा? आत्मा का अनुभव— सम्यग्दर्शन होने के बाद आर्त-रौद्रध्यान आदि अशुद्धभाव आदि होता है परन्तु भविष्य की आयु जब बँधती हो, तब तो शुभभाव में ही आयु बँधेगी, अशुभभाव में आयु नहीं बँधेगी; अशुभभाव में दूसरे कर्म की प्रकृति बँधेगी। समझ में आया? समकित का इतना जोर है। आहाहा! समकिती को रौद्रध्यान होता है, पाँचवें गुणस्थान तक रौद्रध्यान

(होता है), छठवें गुणस्थान में आर्तध्यान, तथापि उस रौद्रध्यान के काल में भविष्य की आयु नहीं बँधेगी। आर्तध्यान के काल में भी भविष्य की आयु नहीं बँधेगी — ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

मुमुक्षु : आर्तध्यान-रौद्रध्यान करे और बँधे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आयु नहीं बँधती है — ऐसा कहा है। प्रकृति बँधती है, दूसरा बँधता है कहा न, यह तो कहा न, साथ में कहा न, आयु नहीं बँधती, भव नहीं बँधता, भविष्य का भव तो जब शुभभाव आयेगा तब बँधेगा। आहाहा! पण्डितजी! ऐसा है न? क्योंकि (कोई) समकिती नारकी में है तो यहाँ आना है तो मनुष्यपने की ही आयु बँधेगी और मनुष्य है, उसकी आयु तो वैमानिक की ही आयु समकिती को बँधेगी। आहाहा! समझ में आया? और जो वैमानिक समकिती है, उसको मनुष्य की आयु बँधेगी, उसको — समकिती को तिर्यंच की आयु नहीं बँधेगी। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है।

मुमुक्षु : उन्होंने शास्त्र लिखा है, अपने लिए सोच कर लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं; सब झूठ है, उन्होंने तो लिखा नहीं, वे तो वीतरागभाव में स्थित थे, सन्त तो वीतरागभाव में गुप्त थे। कहा नहीं? हम तो हमारे ज्ञानस्वरूप में गुप्त हैं। हमने टीका बनायी है — ऐसा नहीं है। यह तो भाषा की वर्गणा से (बन गयी है)। भाषा में स्व-परप्रकाशक शक्ति है, स्व-परप्रकाशक शक्ति.... स्व-पर जानन शक्ति जीव में और शब्दों में स्व-पर कहने की शक्ति है। समझ में आया? अतः भाई! उस वाणी से बन गया है, नाथ! मैंने बनाया — ऐसा मत मानो। आहाहा! यह वाणी मैं करता हूँ — ऐसा मत मानो, प्रभु! वाणी जड़ की है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे ये पाँच प्रकार के अनेक प्रकार दिखते हैं, इससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! क्योंकि एकरूप जीव का स्वभाव जब दृष्टि में नहीं आता, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! गाथा तो बहुत सरस आयी है! १३, १४ (गाथा)! समझ में आया? **इस दृष्टि से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है।....** पर्याय से है। परन्तु भगवान **आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता,....** वह त्रिकाली ज्ञायक

एक स्वभाव इस पर्यायनय से ग्रहण नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अनेकपने को जानने की जो दृष्टि है, वह व्यवहार है और अनेकपने की दृष्टि से एक स्वभाव पकड़ में नहीं आता। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक संसार में भटकेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे, बाँधे भटकता है संसार में, क्या? नरक और निगोद में जायेगा परन्तु संस्कार डाला होगा तो सम्यग्दर्शन भले न हो, परन्तु संस्कार डाला होगा कि मैं तो राग से भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ — ऐसे संस्कार (डाले होंगे) तो वह भी नरक-निगोद में नहीं जायेगा। समझ में आया? जिसे सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि कहा गया है... मोक्षमार्गप्रकाशक! सातवाँ अध्याय है। अन्दर में दृढ़तर संस्कार डाले हैं कि मैं इस राग से भिन्न हूँ, पुण्य से भिन्न हूँ, पर्याय जितना भी मैं नहीं; मैं तो पूर्ण ज्ञायकस्वभाव हूँ — ऐसा दृढ़ संस्कार डाला है, भले सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

जैसे, कोरा सकोरा (मिट्टी का बर्तन) होता है न सकोरा? आप क्या कहते हैं? सकोरा, पानी डालते-डालते पी जाता है। बाद में विशेष पानी पड़ता है, (तब) बाहर दिखता है। ऐसे पहले अन्दर ऐसे दृढ़ संस्कार डालना कि राग से और विकल्प से मेरी चीज जानने में नहीं आती, मैं तो मेरे स्वभाव से जानूँ — ऐसा संस्कार डालते... डालते... डालते जब विशेष हो गया, तब अनुभव हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा! यह चीज है भैया! दुनिया माने न माने, मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया?

एक स्वभाव इस नय से.... इस नय से क्या? अनेकपने के पाँच बोल कहे, उस नय से एक स्वभाव दृष्टि में नहीं आ सकता। आहाहा! **और एक स्वभाव को जाने बिना....** एकरूप कायमी स्वयं शुद्ध परमस्वभावभाव पारिणामिकस्वभावभाव — ऐसे एक स्वभाव को जाने बिना **यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है?...** वास्तविक एकरूप त्रिकालस्वभाव को जाने बिना वास्तविक आत्मा को कैसे जाना जाता है? आहाहा! भाषा जरा सरल है। वस्तु कठिन है परन्तु भाषा सरल और समझ में आये ऐसी चीज है। समझ में आया?

इसलिए दूसरे नय को.... क्यों कहा? कि पाँच भेद — बद्ध, अन्य-अन्य, अनियत, विशेष, रागादि सम्बन्धवाला देखने से एकरूप स्वभाव देखने में नहीं आता। आहाहा! व्यवहार में राग आता है, उसको देखने से एकरूप स्वभाव देखने में नहीं आता। आहाहा! व्यवहार है न? दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प (है न?) उसके लक्ष्य से एकरूप स्वभाव जानने में नहीं आता। आहाहा! उससे एकरूप स्वभाव जानने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? समझ में आवे ऐसा है प्रभु! तेरे घर की बात, नाथ! तुझे न समझ में आये ऐसा कैसे? आहाहा! है? प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं नाथ! अरे प्रभु! तुझे पता नहीं है। तेरी प्रभुता ऐसी है कि अन्दर में संस्कार डालने से अनुभव में आयेगा ही आयेगा। समझ में आया? आहाहा! यह पामरता टूट जायेगी, आहा! एकरूप स्वभाव... एकरूप स्वभाव... एकरूप स्वभाव.... आहाहा! ऐसा अनुभव करने पर सम्यक्स्वभाव जाना जाता है। टीका का अर्थ गम्भीर लगे, इसलिए सादी भाषा में अर्थ किया है।

इसलिए दूसरे नय को—उसके प्रतिपक्षी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को.... वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक था। अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहो, व्यवहार कहो या पर्यायनय कहो, तीनों एक हैं। अब यहाँ शुद्ध द्रव्यार्थिक लेना है। आहाहा! भाई! यह तो हित की बात है, प्रभु! यह तो धर्म-सम्यक् कैसे प्राप्त हो? इसकी बात है। आहाहा! यह कोई साधारण बात नहीं। आहाहा! अनन्त काल का जन्म-मरण, उसके भाव का नाश करने का यह उपाय है। आहाहा!

शुद्ध द्रव्यार्थिक शुद्ध द्रव्यस्वरूप, त्रिकाली शुद्ध द्रव्य, अर्थी अर्थात् प्रयोजन। जिस नय का शुद्ध त्रिकाली द्रव्य प्रयोजन (है); शुद्ध द्रव्यार्थिक — शुद्ध द्रव्य अर्थी, जिसका प्रयोजन — त्रिकाल का — ऐसे नय से। आहा! **ग्रहण करके, एक असाधारण....** एक असाधारण, दूसरी चीज में ऐसा भाव एकरूप है ही नहीं पर्याय में, ऐसा। **ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर,....** एक ज्ञायकमात्र भाव... आहाहा! मुद्दे की रकम है, मुद्दे की क्यों कहा? वह पाँच लाख दिये हों और आठ आने की ब्याज से, पहले तो आठ आना सैकड़ा ब्याज था न? आठ आना... अब तो टका हो गया है। तो पाँच लाख दिये हों तो आठ आना ब्याज पच्चीस वर्ष तक लिया। बाद में कहे भाई! ब्याज तो लिया परन्तु अब

(मूल) पैसा लाओ, मुद्दे की रकम लाओ, ब्याज नहीं अब। (वह कहे कि) रकम नहीं है... आहाहा! ऐसे यहाँ कहते हैं, पुण्य-पाप से स्वर्ग-नरक आदि मिला है, वह सब तो बाहर का ब्याज है, मूल रकम लाओ।

यह त्रिकाली स्वभाव जो मूल रकम है... आहाहा! जिसकी उत्पत्ति नहीं, जिसका नाश नहीं, जिसमें अपूर्णता नहीं, जिसमें आवरण नहीं, जिसमें अशुद्धता नहीं... आहाहा! ऐसा **ग्रहण करके, एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर,....** आहाहा! **उसे शुद्धनय की दृष्टि से....** जो ज्ञान का अंश त्रिकाल को पकड़ता है, वह शुद्धनय, उससे **सर्व परद्रव्यों से भिन्न,....** अबद्धस्पृष्ट है और इसी से लिया है परद्रव्यों से भिन्न, **सर्व पर्यायों में एकाकार,....** नारकी आदि यह अन्य-अन्य नहीं... **हानिवृद्धि से रहित,....** अनियत नहीं नियत। **विशेषों से रहित...** गुणभेद से-विशेष से रहित **और नैमित्तिक भावों से रहित....** निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुए राग-द्वेष आदि इन नैमित्तिक भावों से रहित.... कर्म तो निमित्त है, पर्याय में विकृत अवस्था नैमित्तिक अपने कारण से हुई है। आहाहा! समझ में आया?

अभी यह कर्म की पुकार बहुत है सबको, बस कर्म से होता है, कर्म से होता है, कर्म से होता है, किन्तु पर की — राग की पर्याय कर्म — परद्रव्य से कैसे हुई? परद्रव्य तो उसे स्पर्श नहीं करता न? और राग है, वह कर्म द्रव्य के उदय को स्पर्श ही नहीं करता न और दो द्रव्य भिन्न हैं... 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया....' कर्म से नहीं; 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया...' आहाहा! अपनी चीज क्या है? उसमें भी नहीं आया? 'अब हम निज घर कबहुँ न आये, पर घर भ्रमत....' अपने उल्टे पुरुषार्थ से परघर भ्रमत — राग और पुण्य व अनेकता को अपना मानकर मैं चार गति में भटका। आहाहा!

बहिन के वचन में (बहिनश्री के वचनामृत) तो ऐसा आया है कि सम्यग्दर्शन हुआ है, स्वदेश का भान हुआ है। चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य में... अरे...रे! राग में आया (तो) हम परदेश में आ गये। आहाहा! बहिन के वचनामृत में है। अरे...! दया, दान, व्रत आदि विकल्प में आये, हम परदेश में आ गये, उसमें हमारा देश नहीं है। आहाहा! हमारे स्वदेश में तो आनन्द, ज्ञान और शान्ति पड़ी है, वह हमारा परिवार है।

आहाहा! बातें बहुत कठिन, भाई! आहाहा! है न वह, उसमें है या नहीं? कितने में है? ४०१, ४०१ है — ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है, ज्ञानी निजस्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसते हैं। आहाहा! मैं मेरे घर में परिपूर्ण कैसे बैठ जाऊँ! आहाहा! समकिती को तो अपने स्वरूप में पूर्ण प्रेम करके बैठ जाऊँ — ऐसी भावना है। आहाहा! यह विभावभाव हमारा देश नहीं, यह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी समकिती को उठता है परन्तु वह हमारा देश नहीं। आहाहा!

कहो, जयपुर छोड़कर विलायत.... क्या कहते हैं? अमेरिका-अमेरिका, विलायत है। यह तो दृष्टान्त है। आहाहा! यहाँ तो प्रभु! आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि हुई और उसका - स्वभाव का भान और अनुभव हुआ, तत्पश्चात् विकल्प आया तो कहता है कि अरे...रे! हम तो परदेश में आ गये, उसमें हमारा कोई परिवार नहीं, वहाँ आ गये। आहाहा! युगलजी! यहाँ तो व्यवहार आवे तो प्रसन्न होता है। आहाहा! इस परदेश में आकर हम कहाँ पहुँचे! आहाहा! हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। शुद्ध चैतन्य हमारा पवित्र देश है, उसमें हम रहते हैं और यह आ गया राग.... हम परदेश में कहाँ आ गये? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता, शुभभाव अच्छा नहीं लगता। ए... रंगुलालजी! आहाहा! उसके बदले अभी तो स्त्री-पुत्र और पैसा-प्रतिष्ठा ठीक लगती है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

भाई! तीन लोक के नाथ केवली परमात्मा की यह वाणी है। उसका यह स्वरूप है। प्रभु! आहाहा! यहाँ हमारा कोई नहीं। अरे...रे! विकल्प उठा, वह भी हमारा नहीं। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्य आदि अनन्त गुणोंरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। आहाहा! रतनचन्दजी! अब हम उस स्वरूप-स्वदेश की ओर जा रहे हैं। आहाहा! स्वरूप जो ज्ञायक और आनन्दस्वरूप एकरूप है, वहाँ हम जा रहे हैं। हमें शीघ्रता से अपने मूल वतन में जाकर, शीघ्रता से अपना मूल वतन जो स्वदेश-आनन्द ज्ञान आदि.... आहाहा! वहाँ आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं। आहाहा! पुस्तक (बहिनश्री के वचनामृत) प्रकाशित हो गया तो बहुत महिमा आती है, लोग कहते हैं... ओहोहो! आया तुम्हारे आया न हिन्दी में, आया है न पत्र आया है। ऐसे एक संग्रह हो गया है। आहा! यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : आत्मधर्म में दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा दिया है।

ऐसा **देखा जाये तो सर्व (पाँच) भावों से जो अनेक प्रकारता है, वह अभूतार्थ है—असत्यार्थ है।....** स्वभाव की एकता में दृष्टि करने से, स्वभाव की एकरूप स्वभावसमीप की दृष्टि करने से, अनुभव करने से, ये पाँच प्रकार हैं — अनेक प्रकार हैं, ये झूठे दिखते हैं, उसमें है नहीं। सामान्य में विशेष है नहीं, सामान्य में अनेकता है नहीं, सामान्य में अनियतता है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। है? ऐसा प्रभु है भाई! भाई! तेरे घर की बात है न प्रभु! आहा! कठिन लगे, इसलिए दूसरा रास्ता लेना — ऐसा कुछ है? है? आहा! मार्ग तो यह है। आहाहा!

यहाँ यह समझना चाहिए कि वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है,... वस्तु का स्वरूप तो अनन्त धर्मस्वरूप, अनन्त गुणस्वरूप है, **वह स्याद्वाद से यथार्थ सिद्ध होता है।.....** देखा जाता है। अपेक्षा से ऐसा सब निर्णय होता है। **आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है। उसके कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं....** ज्ञान-दर्शन आदि। **कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं।....** कुछ पुद्गल की अपेक्षा से-संयोग से हुए हैं राग-द्वेष आदि। ज्ञानदर्शन, आनन्द स्वाभाविक हैं और राग आदि पुद्गल के निमित्त से हुए विभाविक हैं। कुछ पुद्गल के **संयोग से होते हैं।** आहाहा! **जो कर्म के संयोग से होते हैं, उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है.....** कर्म के निमित्त से जो राग आदि आता है, वह तो संसार की प्रवृत्ति है। (राग) चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। आहाहा!

समयसार नाटक में तो मोक्ष अधिकार में ४० वाँ बोल लिया है... समझ में आया? कि मुनि है सच्चे भावलिंगी (मुनि हैं) जिनको पूर्णानन्द के नाथ का पता लगकर ऐसी स्थिरता जम गयी है, वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता जम गयी है। उनको महाव्रत का विकल्प उत्पन्न होता है.... समयसार नाटक में कहा है कि वह जगपंथ है। है यहाँ समयसार नाटक? है, मोक्ष अधिकार है न? उसमें ४० वाँ बोल है, मोक्ष (द्वार) है न? मोक्ष (द्वार) है? यह आया देखो '**ता कारण जगपंथ ऐ...**' आहाहा! मुनिराज आत्मा के आनन्द के वेदनवाले, शुद्धचैतन्यघन में रमणता करनेवाले,

उसको भी जो विकल्प आता है, पंच महाव्रत का अट्ठाईस मूलगुण का (विकल्प आता है) **ता कारण जगपंथ....** वह जगपंथ है, इतना! आहाहा! '**उत् शिवमारग जोय**' राग से भिन्न होकर अन्दर स्वरूप में स्थिरता, वह **शिवमारग जोय। 'प्रमादी जग को ढूके'** अरे...रे...! मुनि भी प्रमाद में आये तो जग की दशा हुई - राग की-संसार... आहाहा! ऐसी बात है प्रभु! 'और **अप्रमादी शिव ओर**' स्वरूप में अप्रमाद होकर रहते हैं, वे तो शिवलोक में-मोक्ष के पंथ में चलते हैं। आहाहा! सच्चे भावलिंगी मुनि, जिसका भावलिंग जिनकी मोहर-छाप है, ज्ञायक प्रचुर स्वसंवेदन! ज्ञायक का प्रचुर स्वसंवेदन जिसकी मोहर-छाप है — ऐसे भावलिंगी सन्त। आहाहा! उनको भी विकल्प आता है तो कहते हैं, वह तो संसार है, इतना संसार — जगपंथ है। आहाहा! अज्ञानी की तो क्या बात करना? आहाहा! क्योंकि राग उदयभाव है, उदयभाव संसार है। आहाहा! समझ में आया? **उससे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है।** राग आदि से तो संसार की प्रवृत्ति होती है, देखो! **और तत्सम्बन्धी जो सुखदुःखादि होते हैं, उन्हें भोगता है।....** अज्ञानी... आहाहा! **यह, इस आत्मा की अनादिकालीन अज्ञान से पर्यायबुद्धि है;.....** अनेकपने की, रागादि की पर्याय और भेद को देखना अनादि की पर्यायबुद्धि है। आहाहा! भगवान एक समय की पर्याय के समीप प्रभु विराजमान है। आहाहा! अनेक पर्याय, जो पर्याय एक समय की है, उस पर्याय के समीप अन्तर में प्रभु विराजमान है, पूर्णानन्द का नाथ। समझ में आया? आहा!

यह आत्मा अनादिकाल से पर्यायबुद्धि है। **उसे अनादि-अनन्त एक आत्मा का ज्ञान नहीं है।....** साथ में जो भिन्न ध्रुव पड़ा है, अनादि-अनन्त (पड़ा है), उसका ज्ञान नहीं है, पर्याय का ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? एक क्षण की पर्याय उत्पन्न हुई, दूसरे क्षण में नाश होती है, परन्तु उसमें भगवान एक अनादि-अनन्त ध्रुव पड़ा है। आहाहा! उसका तो ज्ञान है नहीं उस तरफ तो झुके नहीं... आहाहा! वह आत्मा का ज्ञान नहीं है।

इसे बतानेवाला सर्वज्ञ का आगम है।..... इस सर्वज्ञ के आगम के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सभी धर्मवाले अपने गुरु को सर्वज्ञ मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने कुछ भी, सर्वज्ञ है ही नहीं। अज्ञानी स्वयं अपने को चाहे जो माने। सर्वज्ञ तो एक जैनदर्शन में क्योंकि आत्मा सर्वज्ञस्वभावी त्रिकाल है। भगवान आत्मा त्रिकाल सर्वज्ञस्वभावी है — ऐसा कहनेवाले तो सर्वज्ञ परमात्मा हैं और वह सर्वज्ञ स्वभाव है, त्रिकाली भगवान। उसके अवलम्बन से पर्याय में सर्वज्ञपना होता है। जिसका सर्वज्ञस्वभाव आत्मा में है — ऐसा मानता नहीं, उसे सर्वज्ञ पर्याय कभी नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा को तो मानता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, आत्मा को क्या माने? सब बातें करते हैं। आत्मा अर्थात् क्या, प्रभु? सर्वज्ञ... दूसरी सादी भाषा में कहें तो 'ज्ञ' स्वभावी और 'ज्ञ' स्वभावी में सर्व लगा दिया तो सर्वज्ञस्वभावी क्योंकि वह सर्वज्ञस्वभाव उसका गुण है, उसकी शक्ति है। आहाहा! और वह सर्वज्ञस्वभावी एकरूप प्रभु की दृष्टि करने से और उसमें स्थिर होने से सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट पर्याय में होती है। सर्वज्ञ में से प्रवाह आता है। आहाहा! पूर्व की पर्याय में से मोक्ष हो — ऐसा कहना भी व्यवहार है। बाकी तो सर्वज्ञस्वभाव है, उसमें से सर्वज्ञ पर्याय आती है। आहाहा! समझ में आया?

उसमें शुद्धद्रव्यार्थिकनय से यह बताया है कि आत्मा का एक असाधारण चैतन्यभाव है.... त्रिकाली एक असाधारण, दूसरा गुण भी ऐसा नहीं... ज्ञानस्वभाव जैसा। दूसरे गुण भी अपने को नहीं जानते; ज्ञान अपने को जानता है और दूसरे गुण को जानता है और पर को जाननेवाला असाधारण एक ज्ञायकस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश! है? आहाहा! ज्ञान है, **असाधारण चैतन्यमात्र जो कि अखण्ड....** है, प्रभु तो—द्रव्यस्वभाव तो अखण्ड है, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं है। **नित्य....** है, अनित्य नहीं। **और अनादिनिधन है....** अनादिनिधन.... 'अ' आदि—अनिधन (अर्थात्) आदि नहीं और अन्त नहीं — ऐसी चीज ध्रुव नित्यानन्द प्रभु! आहाहा! **उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है।** ऐसे भगवान त्रिकाली ज्ञायक को जानने से और अनुभव करने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात छूट जाता है, तभी सम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक-०३-०२-१९७८, कलश-१९८, १९९, प्रवचन-२२२

कलशटीका, १९८ (कलश के) अन्तिम थोड़े शब्द हैं न? १९८ भावार्थ। **भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व संसार है,...** पाठ में '**मुक्त एव**' कहा है न? अन्तिम शब्द। संसार कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं रहता। संसार, वह आत्मा की भूल है तो भूल अपने से भिन्न नहीं रहती। वह भूल क्या? राग की एकताबुद्धि। '**करणवेदन**' (पाठ) है न? राग का करना और वेदना, उससे रहित भाव, वह सम्यग्दृष्टि। और राग का करना और वेदना, वह मिथ्यादृष्टि। वह मिथ्यात्व ही संसार है। कहते हैं न, स्त्री, कुटुम्ब छोड़कर, दुकान छोड़ी, उसने संसार छोड़ दिया। हें? परन्तु संसार उसमें कहाँ था? पर के त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति। आत्मा में ऐसी एक शक्ति है कि पर का त्याग और ग्रहण उसमें है ही नहीं। पर का त्याग-ग्रहण कैसे हो? वह तो अनादि से है ही। पर का त्याग है, ग्रहण तो है नहीं। पर के त्याग-ग्रहणरहित ऐसी शून्यत्व शक्ति आत्मा में है। ४७ शक्तियों में त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति उसका नाम है। आहाहा! यहाँ तो राग का त्याग और स्वभाव का अनुभव, उसका नाम त्याग और ग्रहण है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जिसने राग का त्याग नहीं किया। किसमें से? अपनी ज्ञान की पर्याय में से। राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, उससे ज्ञान की पर्याय भिन्न नहीं की और एकत्व किया। राग के आधीन होकर पर्याय को राग के साथ एकत्व किया, वही मिथ्यात्व है और वही संसार है। आहाहा! अनन्त काल से भटकता है तो इस दृष्टि से भटकता है। कहते हैं कि मिथ्यात्व, वह संसार है। है न? मिथ्यात्व का अर्थ यह। इसकी पर्याय में निश्चय से तो भगवान ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय में आबालगोपाल सबको स्व ही ज्ञात होता है। क्या कहा? आबालगोपाल की ज्ञान की पर्याय में... समयसार १७वीं गाथा, १७-१८ (गाथा)।

वर्तमान ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य होने से ज्ञान की पर्याय में स्व ही जानने में आता है। स्व वस्तु ही ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होती है। अज्ञानी को और सब आबाल-गोपाल को। तब ऐसा क्यों नहीं जानता? कि ज्ञान की पर्याय जो है, भले अज्ञानी की पर्याय हो परन्तु पर्याय का स्वभाव, ज्ञान की पर्याय है न?

तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है न? तो ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य का ज्ञान तो अज्ञानी को भी होता ही है। अरे... अरे...! ऐसी बात।

१७-१८ गाथा है। आबाल-गोपाल को ज्ञान की पर्याय में... समयसार, टीका में है, मूल पाठ में थोड़ा है। टीका में है—आबाल-गोपाल १७वीं गाथा है न?

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

इसके अर्थ में स्पष्टीकरण किया। अस्ति से है। टीका में नास्ति से स्पष्टीकरण किया। **जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** इसकी टीका **जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** तीसरा पेराग्राफ है। **आबाल-गोपाल सबके सदाकाल अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** आहाहा! क्या कहा? सब जीव, आबाल-गोपाल—बालक से लेकर वृद्ध, सबको उनकी ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय वस्तु है, वही जानने में आती है। अपनी चीज़, हों! द्रव्य। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से आबाल-गोपाल सबको सर्व काल पर्याय में पूर्ण द्रव्य ज्ञेय है, वही जानने में आता है, तथापि उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है। अज्ञानी की दृष्टि राग के ऊपर है। दया, दान, व्रतादि का जो शुभरागादि विकल्प है, उसके ऊपर दृष्टि है, इस कारण से पर्याय में पूरा ज्ञेय पूरा तत्त्व द्रव्य, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु पर्याय में जानने में तो आता है, परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है, उसकी दृष्टि वहाँ रागरुचि, पर्यायबुद्धि में राग में है, इस कारण से उसे ख्याल में नहीं आता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञात होने पर भी ख्याल में नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, अज्ञान के कारण ख्याल में नहीं आता। कहा न यह तो? कि राग की रुचि के प्रेम में, ज्ञान की पर्याय में सब आबाल-गोपाल सबको आत्मा ही जानने में आता है, ऐसा होने पर भी। ऐसा यहाँ कहा न? देखो न! **उसके अभाव के कारण... अज्ञानी को 'यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'... उसके अभाव के**

कारण, नहीं जाने हुए का श्रद्धान गधे के सींग के समान होने से... देखो! **निश्चय से मूढ़ जो अज्ञानी... बन्ध के वश पर (द्रव्यों के) साथ एकत्व के निश्चय से...** यह टीका है, बहुत स्पष्ट है। क्या कहते हैं? कि आबाल-गोपाल को। आबाल-गोपाल अर्थात् आ-बाल (अर्थात्) बालक से लेकर गोपाल अर्थात् वृद्ध। सबको ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय स्वप्रकाश में आता है। वह ज्ञेय जो पूर्ण द्रव्य है न? वही स्वप्रकाश में आता है। अज्ञानी को भी आता है, आबाल-गोपाल सबको। तथापि उसकी दृष्टि वहाँ नहीं। दृष्टि वह राग के ऊपर है। राग—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि मैं करूँ, रचूँ, भोगूँ, यह दृष्टि वहाँ है तो पर्याय में पर्यायवान द्रव्य जानने में आता है, तथापि उसकी दृष्टि में राग आया। आहाहा! यशपालजी! सूक्ष्म है, भैया बात तो ऐसी है। आहाहा! टीका में बहुत स्पष्ट किया है।

आबाल-गोपाल सबको सदाकाल... और सबको ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया? अभी पहले शुरुआत में कहा था न? पण्डितजी के साथ बात करते थे। कहा, राग है न राग, राग से भिन्न करे तो ज्ञान की पर्याय में ज्ञान की पर्याय पूर्ण को जानती है। राग से भिन्न करे तो दृष्टि वहाँ जाती है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है। पर्याय का, हों! परन्तु राग से भिन्न होकर पर्याय का लक्ष्य (वहाँ) जाये तो उस पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, तो लक्ष्य वहाँ द्रव्य पर जाता है। क्या कहा? ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो मूल बात है, भाई!

ऐसा क्यों नहीं होता? आबाल-गोपाल को पर्याय में आत्मा जानने में आता है, तो भी क्यों जानने में नहीं आता? कहते हैं, राग के वश होकर। बन्ध के वशात्। दृष्टि वहाँ पड़ी है। समझ में आया? यह है, देखो! **अनादि बंध के वश...** ऐसी टीका है। अनादि बन्ध के वश पड़ा है तो उसकी पर्याय में ज्ञेय आने पर भी जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपने बहुत बार बात हो गयी है, परन्तु यह तो सहज यह बात करनी थी कि राग के वश होता है, इस कारण से पर्याय में ज्ञेय ज्ञात होने पर भी जान नहीं सकता। और धर्मीजीव राग से ज्ञान की पर्याय को भिन्न की तो उस पर्याय में ज्ञेय—आत्मद्रव्य ही जानने में आया है। वहाँ भिन्न किया तो द्रव्य पर उसका लक्ष्य गया। उस

पर्याय में द्रव्य जानने में आया है। उस पर्याय में द्रव्य आया नहीं, पर्याय में द्रव्य आया नहीं। इस ओर पर्याय में राग भी आया नहीं। राग आया नहीं, तथा द्रव्य आया नहीं। परन्तु राग से भिन्न करके ज्ञान की पर्याय पकड़ती है, वहाँ उस पर्याय में पर्यायवान जानने में आता है, वहाँ दृष्टि जाती है। उसका ज्ञान होता है। अरे! ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

इसमें तो आबाल-गोपाल पाठ लिया है। है? **अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा आबाल-गोपाल सबको सदाकाल स्वयं ही अनुभव में आने पर भी...** देखा? आहाहा! पोते अर्थात्? स्वयं। आहाहा! क्योंकि ज्ञान की पर्याय का... बापू! यह तो धीरज की बातें हैं। यह कोई (कथा, वार्ता नहीं)। ज्ञान की पर्याय में, ज्ञानगुण त्रिकाली है, उसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, परन्तु वह तो ध्रुवरूप है और पर्याय में परिणमन में, ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशक जानने की सामर्थ्य है, सामर्थ्य है तो पर्याय स्व को जानती ही है। आबाल-गोपाल सबको, अज्ञानी को भी। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ क्यों नहीं जाती? कि, वह राग के आधीन हो गया है। पर्याय में राग, विकल्प है, उसका कर्ता-भोक्ता होकर उसके आधीन हो गया है। उसके आधीन होकर पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है तो द्रव्य भी जाना नहीं और ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य कितना है, उसे भी नहीं जाना। आहाहा! ऐसा है, बापू! यह अन्दर की बातें हैं। सूक्ष्म पड़े परन्तु अब (क्या हो)? समझ में आया? यह कहा।

यहाँ कहते हैं, '**करणवेदनयोः**' आहाहा! यह बुद्धि जहाँ छूट गयी तो राग से ज्ञान की पर्याय भिन्न हुई, राग से भेदज्ञान हुआ तो उस पर्याय में जानने में आती (स्व) चीज़ तो ज्ञात होती थी परन्तु इसका लक्ष्य वहाँ नहीं था, इसलिए जानता नहीं था, तो पर्याय राग से भिन्न की, उस पर्याय में ज्ञेय पूरा द्रव्य ज्ञात होता था, तो यह पर्याय ज्ञेय का ज्ञान करती है, (उसमें) अपना भी ज्ञान है और उसका भी ज्ञान है, ऐसे सामर्थ्य की प्रतीति आने से द्रव्य की दृष्टि हो गयी। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग के ऊपर से लक्ष्य नहीं छूटे तो दृष्टि किस प्रकार करनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि से राग के ऊपर जाता है। राग से भिन्न करे,

पर्याय पर लक्ष्य जाये, राग को भिन्न करे तो ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है तो वह भी ज्ञात हो गया कि पर्याय का इतना सामर्थ्य है। पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि अज्ञानी को भी पर्याय में ज्ञेय पूरा द्रव्य ही जानने में आता है। आहाहा! अनादि से आबाल-गोपाल को सबको और सदाकाल, ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा होने पर भी, ऐसा पाठ है न? देखो! उसमें ऐसा पाठ है।

राग और बन्ध के वश। दृष्टि वहाँ अनादि से है। अन्दर चीज़ क्या है और उस ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य क्या है, उसकी प्रतीति की ही नहीं। आहाहा! मुनिव्रत लिये, बाह्य त्याग किया, सब क्रिया (की)। अभी आयेगा। बाद की गाथा में आयेगा, कलश में आयेगा। १९९ कलश में (आयेगा)। परन्तु ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है कि राग को अपना मानता है, वह तो मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! परन्तु वह ज्ञान की पर्याय स्वद्रव्य को भी जानती है और राग को भी, राग में एकत्व हुए बिना राग को भी जानती है। ऐसा पर्याय में स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य है, ऐसी प्रतीति होने पर पूरे ज्ञेय की प्रतीति उसमें हो गयी। आहाहा! समझ में आया? और वह मिथ्यात्व टलने से संसार गया। वह यहाँ (कहते हैं), मिथ्यात्व गया तो संसार गया। क्योंकि मिथ्यात्व, वही संसार है। आया है न अन्त में? आहाहा! इस मूल चीज़ की बात है। स्थिरता किस प्रकार हो, वह तो बाद में, परन्तु यह मूल चीज़ है। आहाहा! मूल चीज़ की जहाँ खबर नहीं, वहाँ (स्थिरता कैसी?) और जो चीज़ जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? गधे के सींग जैसी है। जो चीज़ जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार करना? आहाहा!

पर्याय में राग से जब एकत्व किया है तो पर्याय में ज्ञेय ज्ञात होने पर भी उसकी बुद्धि राग के वश हो गयी है। आहाहा! तो वह नहीं जानता स्व को और नहीं जानता यथार्थ पर को। समझ में आया? और राग से यथार्थरूप से भिन्न होकर, '**करणवेदनयोः**' भिन्न होकर, यह आ गया न? '**करणवेदनयोः अभावात्**' है न? **सम्यग्दृष्टि जीव के मिटे हैं...** यह '**करणवेदनयोः**' मिट गया। आहाहा! सूक्ष्म है। अन्दर शल्य है, वह मिथ्याशल्य है। दूसरा सब तो बाद में, परन्तु इस राग से लाभ होगा, शुभराग की क्रिया करता है तो मुझे लाभ होगा, ऐसी एकत्वबुद्धि है, वह महामिथ्यात्व शल्य है। इस कारण

उसकी दृष्टि ज्ञान की पर्याय में आत्मा ज्ञात होने पर भी जान नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? सेठजी! भाषा समझ में आती है? किसी समय थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है। कहाँ गया इनका लड़का? आहाहा! समझ में आया या नहीं? सेठ के पुत्र हैं न! आहाहा! कैसे समझ में आये, ऐसा पूछते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में राग का '**करणवेदनयोः**' जो है, वही मिथ्यात्व है और वही संसार है और जिसका मिथ्यात्व छूट गया। यह आया न? देखो! **मिथ्यात्व के मिटने पर जीव सिद्धसदृश है।** आहाहा! फिर पर्याय में राग की एकत्वबुद्धि छूट गयी और राग से ज्ञान की पर्याय को भिन्न किया तो पर्याय में ज्ञेय जानने की सामर्थ्य है, वह भी ख्याल में आ गया कि इस पर्याय की सामर्थ्य द्रव्य को जानने की है और इस पर्याय की सामर्थ्य राग को राग में एकमेक हुए बिना, राग की अस्ति है तो ज्ञान हुआ है—ऐसा भी नहीं, यह राग, व्यवहार हो, परन्तु अपनी पर्याय अपने से स्व का ज्ञान करते हुए पर का ज्ञान अपनी सामर्थ्य से होता है। आहाहा! वह सिद्धसदृश है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा विशाल सभा में रखे तो लोगों को ऐसा लगे कि यह क्या बोलते हैं? पागल जैसा लगे। यहाँ तो निश्चिन्तता की वसतु है। बाहर में दो-चार हजार लोग आवे और देखे कि यह क्या कहते हैं यह वह? पागल जैसी बातें करते हैं। लगे ऐसा, हों! परमात्मप्रकाश में कहा है, हें?

मुमुक्षु : आपकी बातें इतनी दूर से सुनने आये हैं। पागल जैसा क्या लगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो बड़े शहर की बात है। बड़े शहर में पाँच-पाँच हजार, दस हजार लोग आते हैं। मुम्बई में दस-दस हजार लोग व्याख्यान में (आते हैं)। ऐसा लगावे तो कहे, क्या कहते हैं यह? भोपाल में चालीस हजार लोग आठ दिन के व्याख्यान में। बापू! वहाँ तो अमुक बात को बहुत स्पष्ट करते... करते... करते... करते... कितना स्थूल करना पड़े। बात तो यह आवे। यहाँ तो थोड़े में भी बहुत आ जाता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **मिथ्यात्व संसार है,...** भाषा देखो! फिर अव्रत और प्रमाद, कषाय, योग रहे न? वह तो अल्प संसार की स्थिति है, उसकी गिनती नहीं है। उससे

अल्प रस, स्थिति पड़ती है, उसे यहाँ गिनने में आया नहीं। और वास्तव में तो सम्यग्दर्शन होने के बाद राग आता है, उसे भी परज्ञेयरूप से जानता है। अर्थात् वह तो स्वयं राग से भिन्न ही है और स्वभाव से एकत्व है तो सिद्धसदृश है। आहाहा! समझ में आया? पाठ में है न? '**स हि मुक्त एव**' कलश में है न? चौथा अन्तिम पद। '**स हि मुक्त एव**' कलश में है, उसका यह अर्थ है। अन्तिम, अन्तिम। मूल श्लोक का अन्तिम शब्द। आहाहा! अब १९९ कलश।

यह तो भगवान की वाणी है, बापू! मुनियों की सन्तों की। यह कहीं कोई कथा, वार्ता नहीं। यह तो एक-एक शब्द में महान गम्भीरता पड़ी है। आहाहा! एक-एक शब्द में अनन्त-अनन्त आगम रहे हैं, ऐसी यह वाणी है। यह कोई कल्पना से बनायी हुई चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब १९९।

कलश - १९९

(अनुष्टुप्)

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ।।७-१९९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तेषां मोक्षः न' [तेषां] ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को [न मोक्षः] कर्म का विनाश, शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं है। कैसे हैं वे जीव? 'मुमुक्षतां अपि' जैनमताश्रित हैं, बहुत पढ़े हैं, द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं, मोक्ष के अभिलाषी हैं, तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है। किनके समान? 'सामान्यजनवत्' जिस प्रकार तापस, योगी, भरड़ा इत्यादि जीवों को मोक्ष नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं, कुछ विशेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है। कैसे हैं वे जीव? 'तु ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति' [तु] जिस कारण ऐसा है कि [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव, [आत्मानं] जीवद्रव्य को [कर्तारं पश्यन्ति] वह ज्ञानावरणादि कर्म को — रागादि अशुद्धपरिणाम को करता है, ऐसा जीवद्रव्य का स्वभाव है — ऐसा मानते हैं, प्रतीति करते हैं, आस्वादते हैं। और कैसे हैं? 'तमसा ततः' मिथ्यात्वभाव — ऐसे अन्धकार से व्याप्त हैं, अन्ध हुए हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि वे महामिथ्यादृष्टि हैं जो जीव का स्वभाव, कर्तारूप मानते हैं; कारण कि कर्तापन, जीव का स्वभाव नहीं है; विभावरूप अशुद्धपरिणति है, सो भी पर के संयोग से है, विनाशीक है।।७-१९९।।

कलश - १९९ पर प्रवचन

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ।।७-१९९।।

आहाहा! **'तेषां मोक्षः न' ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को कर्म का विनाश, शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं है।** आहाहा! जहाँ मिथ्यात्व का नाश नहीं तो उसे सर्व कर्म का नाश होता ही नहीं। वह तो संसार में भटकेगा। कैसा है? देखो! **ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को कर्म का विनाश,...** अर्थात् **शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं है। 'न मोक्षः'** है न इसलिए (ऐसा कहा)।

कैसे हैं वे जीव ? 'मुमुक्षतां अपि' जैनमताश्रित हैं,... जैन को माननेवाले हैं। जैन देव-गुरु-शास्त्र को माननेवाले जैन हैं, तो भी मिथ्यादृष्टि हैं। क्यों ? **बहुत पढ़े हैं,...** बहुत पढ़ा है, बहुत शास्त्र पढ़े हैं। उसमें क्या हुआ ? है ? ऐसे जीव को स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। कैसे (जीव को) ? '**मुमुक्षतां अपि**' वह मुमुक्षु है। मुमुक्षु अर्थात् **जैनमताश्रित है...** जैन मत के आश्रित है। **बहुत पढ़ा है...** जानपना भी बहुत है, उसमें क्या हुआ ? और **द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं,...** दया, दान, व्रतादि के परिणाम बराबर पालन करते हैं, द्रव्यचारित्र। समझ में आया ? ब्रह्मचर्य पालते हैं, शरीर से आजीवन बालब्रह्मचारी भी होते हैं। जैनमताश्रित मुमुक्षु जैनमताश्रित है परन्तु दृष्टि की खबर नहीं और बहुत पढ़ा है, एक बात।

द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं,... एक बात। वह **मोक्ष के अभिलाषी हैं...** उसे ऐसा है कि मुझे मोक्ष लेना है, मोक्ष लेना है। परन्तु ऐसा लेना है, लेना है, वस्तुदृष्टि बिना ? (मोक्ष के) **अभिलाषी हैं तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है।** आहाहा ! समझ में आया ? है ? जिसे राग के विकल्प की एकता टूटती नहीं और '**करणवेदनयोः**' मैं राग का करण-कर्ता और वेदन में पड़ा है, वह जैनमताश्रित हो, सम्प्रदाय में हो, बहुत पढ़ा हो और द्रव्यक्रिया भी करता हो, आजीवन बालब्रह्मचारी हो, उसमें क्या हुआ ? वह तो अनन्त बार किया है। बालब्रह्मचारी तो शुभभाव, राग है। ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप, उसका चर्य अर्थात् चरना, आनन्द में रमना तो है नहीं। समझ में आया ? यह कहते हैं।

द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं, मोक्ष के अभिलाषी हैं तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है। आहाहा ! वस्तु की दृष्टि की जहाँ खबर नहीं, सम्यग्दर्शन किसे कहना ? और सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है ? इसके बिना सब बात थोथा है। पढ़ा, गुना, चारित्र क्रिया सब (थोथा है)। कठिन पड़े लोगों को, क्या हो ? आहाहा ! उपमा देते हैं।

किनके समान ? 'सामान्यजनवत्' ईश्वर को कर्ता माननेवाले होते हैं न सामान्यजन ! जगत का कर्ता ईश्वर है, ऐसा माननेवाले। पाठ में यह है, मूल पाठ में। **'सामान्यजनवत्' जिस प्रकार तापस, योगी, भरड़ा इत्यादि जीवों को मोक्ष नहीं है।** मिथ्यादृष्टि को। वेदान्त माननेवाला, ईश्वर को कर्ता माननेवाले को जैसे मोक्ष नहीं, उसी प्रकार इस जीव को भी मोक्ष नहीं। जैनमताश्रित पढ़ा, गुना है, द्रव्यचारित्र पालता है, तो

भी वह मिथ्यादृष्टि है, उसे मोक्ष नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं, कुछ विशेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है। जैनधर्म में तो है, जैनधर्म पालता तो है न व्यवहार क्रिया आदि? जैन के शास्त्रों का जानपना है, तो दूसरे की अपेक्षा इसमें कुछ अन्तर तो है या नहीं? कोई ऐसा कहता है। है? **कुछ विशेष होगा,...** (ऐसा) कोई कहे **सो विशेष तो कुछ नहीं है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं,...** जैन की क्रिया करता है, ब्रह्मचर्य पालता है, व्रत पालता है, आहाहा! जिनेश्वर ने कहे वैसे व्यवहार के व्रत पालता है... आहाहा! तो **कुछ विशेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है।** आहाहा!

कैसे हैं वे जीव? 'तु ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति' बस! यही (बात है)। पाठ में तो ऐसा लिया है, छह काय के जीव की दया मैं पाल सकता हूँ। मूल पाठ में यह है। चारित्र की व्याख्या। छह काय जीव है, एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (और त्रस) की दया मैं पाल सकता हूँ, उनकी रक्षा मैं कर सकता हूँ। तो जैसे ईश्वरकर्ता माननेवाला है, उसी प्रकार यह छह काय के जीवों की मैं दया पाल सकता हूँ, दोनों एक जाति की श्रद्धावाले हैं। वह सामान्यजन की व्याख्या है। मूल पाठ में वह है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गृहीत मिथ्यादृष्टि से तो इसमें कुछ अन्तर पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इसे मानता है, वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। साधुपना है नहीं, ऐसी क्रियाकाण्ड में श्रावकपना भी नहीं और मानता है कि हम श्रावक हैं। वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : कोई ऐसा हुआ हो कि मुनि हुआ और गृहीत मिथ्यात्व छोड़ा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहीत मिथ्यात्व छोड़ा हो परन्तु यहाँ तो यह भी नहीं। यहाँ तो गृहीत मिथ्यादृष्टि की तुलना में डालना है। समान कहा न? समान कहा न? देखो न! **किसकी भाँति?** ऐसा लिया है न! आहाहा! यहाँ तो भाई एक-एक शब्द की कीमत है। **किसकी भाँति?** वहाँ मूल पाठ में तो सामान्यजन का अर्थ यह लिया है कि ईश्वर का

कर्ता मानते हैं न? वे ईश्वर को कर्ता माननेवाले जीव और यह राग का कर्ता माननेवाला जीव, दोनों एक सरीखी दृष्टिवाले हैं। आहाहा! और वहाँ बन्ध अधिकार में तो ऐसा लिया है कि जो शास्त्र का ज्ञान है, वह शब्द का ज्ञान है, ऐसा वहाँ लिया है। वह आत्मा का ज्ञान नहीं। अज्ञानी को शास्त्र का ग्यारह अंग का ज्ञान हो तो वहाँ पाठ ऐसा लिया है कि वह शब्दज्ञान है, शब्द का ज्ञान है, शब्द का ज्ञान है। ऐसा लिया है। और वहाँ नौ तत्त्व की श्रद्धा ली है, वहाँ नौ तत्त्व लिये हैं। कौन श्रद्धा? कि नौ तत्त्व। श्रद्धा कौन? कि नौ तत्त्व। ऐसा लिया है। वह नौ तत्त्व की श्रद्धा, भेदवाली, हों! वह मिथ्यादृष्टि है। और छह काय के जीव की दया वह चारित्र, ऐसा वहाँ लिया है। छह काय की दया। पाँच महाव्रत की बात नहीं की, एक लिया क्योंकि एक में चारों समा जाते हैं। छह काय की दया, छह काय की रक्षा करता हूँ। जैसे ईश्वर जगत का कर्ता (है, ऐसा मानते हैं), यह कहता है कि छह काय के जीव की दया का मैं कर्ता हूँ। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! बात तो ऐसी है, प्रभु! सत्य तो इस प्रकार से है। इसलिए समान कहा है। मूल पाठ में भी ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों की श्रद्धा एक सरीखी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सरीखी है, इसलिए एक समान है। है न? देखो न! '**आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति**' किस कारण से? **मिथ्यादृष्टि जीव जीवद्रव्य को कर्ता मानता है अर्थात् वह ज्ञानावरणादि कर्म को रागादि अशुद्ध परिणाम को...** इतना संक्षिप्त लिया है। पाठ में तो ऐसा पाठ है, छह काय के जीव की रक्षा कर सकता हूँ। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय की रखा कर सकता हूँ। तो जैसे जगत का ईश्वरकर्ता है, उसी प्रकार यह रक्षा करता हूँ, ऐसा मानता है तो उसका कर्ता हुआ। (दोनों) मिथ्यादृष्टि समान हैं। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े परन्तु क्या (हो)? भाई! सत्य तो यह है। हें? बात तो यह है। जँचे, न जँचे स्वतन्त्र है, जीव स्वतन्त्र है। आहाहा! भगवान के समवसरण में भी अनन्त बार गया था। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा। महाविदेह में तो तीर्थंकरों का कभी विरह नहीं होता। समवसरण में भी अनन्त बार गया। अनन्त बार गया, हीरा के थाल... आहाहा! कल्पवृक्ष के फूल, मणिरत्न के दीपक (लेकर गया)... जय भगवान! ऐसी पूजा, भक्ति भगवान की अनन्त बार की। वह तो परद्रव्याश्रित शुभभाव है। आहाहा! जैनमताश्रित

ऐसा हो तो भी मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि वह राग का कर्ता मानता है। ईश्वर को जगत का कर्ता मानता है, यह छह काय की रक्षा करने का मानता है—दोनों समान हैं।

मुमुक्षु : दया पालने का चारित्रव्रत में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया पालने का नहीं आता। वह जरा शुभराग आता है, बस! इतना। पर को न मारूँ, ऐसा शुभराग आता है, वह व्यवहार है। तीन काल में पर की दया कोई पाल नहीं सकता। परद्रव्य की पर्याय की रक्षा कौन करे? आहाहा!

यहाँ तो पर की दया का भाव आया, वह राग है, बस इतना। उस राग को व्यवहार कहा जाता है। किसे? जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान स्व के आश्रय से अनुभव हुआ हो, उसके राग को व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? पर की दया पाल सकता हूँ, ऐसा न माने और राग हुआ तो मुझे लाभ हुआ, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है, क्या हो? एक-एक श्लोक में कितनी गम्भीर बात पड़ी है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, दिगम्बर कोई भी शास्त्र लो, सत्य के रहस्य से भरपूर हैं। दूसरे अनुयोग भले हो, दूसरे अनुयोग में तात्पर्य तो वीतरागता बतलानी है न! आहाहा! हें?

मुमुक्षु : राग को तो पालना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को पालता है, वही मिथ्यादृष्टि है—ऐसा कहते हैं। अनादि से करता है। आहाहा! रक्षा की, मैंने राग की रक्षा की, राग की रक्षा। वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

ज्ञानावरणादि कर्म को रागादि अशुद्ध परिणाम को करता है, ऐसा जीवद्रव्य का स्वभाव है—ऐसा मानते हैं,... जीवद्रव्य का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा नहीं मानता, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, ऐसे राग का कर्ता होना, वह मेरा स्वभाव है—ऐसा मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे जीव को बचाना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बचा सकता है? तीन काल में बचा नहीं सकता। उसके आयुष्य की स्थिति पूरी हो तो देह छूट जाती है। आयुष्य हो और लाख उपाय दूसरे करे

तो मरता नहीं। जिस क्षण में, जन्मक्षण में उसका उत्पत्ति का काल है, देह छूटने का (काल है) उस क्षण ही छूटेगी, तुझसे नहीं छूटेगी और उसमें रहेगा, शरीर में रहने की जब तक योग्यता है, आयुष्य के कारण (रहता है), ऐसा कहना भी निमित्त है परन्तु अपने आत्मा की शरीर में रहने की जितनी योग्यता है, उतना ही रहेगा, उसमें कोई दूर कर सके या जिला सके, ऐसा तीन काल में नहीं है। बहुत कठिन काम, भाई! दुनिया से तो बात अलग है। यह तो सर्वज्ञ जिनेन्द्र प्रभु वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का यह हुकम है। आहाहा! है?

ऐसा **आस्वादता है...** तीन शब्द लिये। **ऐसा जीवद्रव्य का स्वभाव है...** राग करना, वह तो जीव का स्वभाव है, करने का हमारा भाव है, ऐसा। **ऐसा मानते हैं, प्रतीति करते हैं, (और राग को) आस्वादते हैं।** आहाहा! राग का ही अनुभव है। आत्मा के आनन्द का वहाँ अनुभव नहीं। आहाहा! शास्त्र में लिखा है या नहीं? यशपालजी! यह कहीं सोनगढ़ का है? यह सोनगढ़ का है या....?

मुमुक्षु : यहाँ से प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जहाँ से प्रकाशित हुआ हो। अरे! भगवान! क्या करता है? बापू! छाप चाहे जो हो। यह यहाँ प्रकाशित हुआ है? यह हिन्दी? फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री अनुवादक हैं। दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट है। हमको तो यह भी खबर नहीं। यहाँ कौन देखे? किसी को कहा नहीं कि तुम छपाओ। छपाकर लावे तब देखते हैं।

मुमुक्षु : किसी ने फेरफार किया हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : फेरफार करे, अपनी दृष्टि से करे तो करे। यहाँ तो बहुत गुप्तरूप में कहने आते हैं। यह शान्तिभाई गुजर गये न? वे शान्तिभाई मेरे पास एकान्त में आये थे, मुझे लाख रुपये देना है। मैंने कहा, मैं कुछ जानता नहीं। वे गुजर गये न? २०-२५ दिन पहले अन्दर आये थे। मुझे लाख रुपये देना है। कहा, कहाँ देना है? हमने कभी किसी को कहा नहीं। फिर पचास हजार अपने यह सूक्ष्म व्याख्यान चले थे न? पचास हजार उसमें और पचास हजार ऐसा कहते थे। आयेंगे अभी। यहाँ तो बहुत

लाखों रुपये गुप्तरूप से देते हैं। एक व्यक्ति आया था, पाँच मिनिट बैठा। पैसे रखे। मैंने कहा कितने होंगे? दो-पाँच हजार होंगे? देखा तो पचास हजार! नोट। यहाँ रखे। मैं अन्दर बैठता हूँ न वहाँ। दो-तीन वर्ष हुए। उसके समय में। साढ़े तीन वर्ष हुए न? मैंने कहा, हजार, दो हजार होंगे। ऐसे नोट देखे वहाँ दस-दस हजार के पाँच=पचास हजार। कौन लेकर देता है? मैंने तो लेकर दे दिये रामजीभाई को, हमारे क्या? हमारे नोटों का क्या करना है? रामजीभाई को दे दिये। पचास हजार, लाख रुपये देते हैं। परन्तु उसमें क्या हुआ अब धूल में? लाख हो या करोड़ हो। आहाहा! उसमें राग मन्द किया हो तो पुण्य है, और पुण्य मेरी चीज़ है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! यहाँ तो इतनी स्पष्ट बात है, भाई! आहाहा

यहाँ यह कहा, **और कैसे हैं? 'तमसा ततः' मिथ्यात्वभाव ऐसे अन्धकार से व्याप्त हैं,...** अज्ञानी अन्धकार में पड़े हैं। यह शुभराग मेरा है और मुझे लाभ होगा, वह अज्ञान अन्धकार में पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्रतादि पालना या नहीं पालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या पाले? आता है, राग आता है, वह आस्रव है। व्यवहारनय से कथन में आवे, परन्तु राग है, वह तो विकार है। मैं पाल सकता हूँ, रख सकता हूँ, वह तो मिथ्यात्व है। आता है, निरतिचार व्रत पालना, ऐसा व्यवहारनय से कथन आता है। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! अज्ञानी को तो है कहाँ? आहाहा! पुरुषार्थसिद्धिउपाय में तो ऐसा कहा, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव अपराध है। मूल पाठ है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय, अमृतचन्द्राचार्य (कृत)। जिस भाव से आहारकशरीर का बन्ध पड़े, वह भाव अपराध है। पर की दया का भाव, वह राग है, हिंसा है। ऐसा लिखा है, पाठ है। यह तो सत्य बात है, बापू! जगत से विपरीत है। आहाहा! यह कहा, नहीं?

महामिथ्यादृष्टि हैं... ऐसा कहा? आहाहा! **जो जीव का स्वभाव कर्तारूप मानते हैं; कारण कि कर्तापन जीव का स्वभाव नहीं है, विभावरूप अशुद्ध परिणति है; सो भी पर के संयोग से है,...** विभाव, राग वह पर के संयोग से है, वह निश्चय से अपनी यथार्थ परिणति है ही नहीं। उसे अपनी माने, वह महामिथ्यादृष्टि है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दीक्षा कल्याणक

(दिनांक 23-01-2024)

अनित्य भावना : गृहस्थाश्रम में धर्मी जीवों को बारम्बार यह बारह भावना भाना चाहिए। तीर्थंकर भगवान भी जब तक दीक्षा न ले, तब तक चक्रवर्ती पद में भी कितने ही होते हैं, वह भी निरन्तर बारह भावनायें भाते हैं। समझ में आया? शास्त्र में प्रत्येक तीर्थंकर के अधिकार के प्रत्येक के गृहस्थाश्रम में हो, भले उनकी पुरुषार्थ की मन्दता से चारित्र अंगीकार किया न हो ९६००० स्त्रियों के वृन्द में हों, ३२ हजार राजा में नायक हों, अनेक देव जिनकी सेवा में तैनात हों, तथापि वे आत्मा की नित्यता की दृष्टि के भान भूमिका में वह हमेशा रानियों के वृन्द में बैठा हो तो भी उसमें यह भावना उसमें करते हैं। उनके समुदाय में बैठे हों, तो भी यह भावना वह आचार्य महाराज श्रावक को बारह भावना होती है, उसका वर्णन है।

अध्रुव अशरणेश्च एव भव एकत्वमेवतः अन्यत्वं तथैव आस्त्रवसंवरो।
निर्जरा च तत्त्वालोकोबोधिदुर्लभधर्मता द्वादशानुप्रेक्षा भासितां जिनपुंगवे॥

जैन परमेश्वर ने—वीतरागदेव ने गृहस्थाश्रम में धर्मी जीवों को बारह भावना बारम्बार भाना चाहिए क्योंकि उन्हें पाप के व्यापार-धन्धादि के पाप बहुत होते हैं, इसलिए उन्हें यह बारम्बार अनित्यादि भावना भावे तो उन्हें चारित्रपद लेने की जिज्ञासा बारम्बार वर्तती होती है। समझ में आया? उसमें पहली अध्रुव भावना है, अध्रुव कहो या अनित्य कहो, यहाँ।

जोबन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी,
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई

देखो, यौवन, शब्दार्थ है न यह यौवन। यह यौवन चपल क्षणिक है, देह तो नाशवान है। जैसे इन्द्रधनुष और बिजली की चंचलता चमक... चमक क्षण में नाश

होती है। ऐसा यौवन अवस्था, यह तो शरीर की मिट्टी-धूल है। भगवान आत्मा तो अन्दर चिदानन्दस्वरूप है। ऐसा धर्मी जीव ने अपने आत्मा में दृष्टि शुद्ध में आनन्द में रखकर, यह यौवन अनित्य है—ऐसी बारम्बार विचारणा करनी चाहिए। समझ में आया? वृद्धावस्था ऐसी है, यौवन बीत गया, वह क्या, वृद्धावस्था कैसी है? धूल है, क्षण में पलट जायेगी। बिजली के चमकार ऐसा अथवा इन्द्रधनुष, वह है न! क्या कहते हैं? मेघधनुष। क्या कहते हैं अपने? काचली... काचली... काचली होती है न! क्षण में नाश हो सारा क्षण में नाश। इसी प्रकार यह शरीर वृद्धावस्था हो या युवा हो, यह तो मिट्टी—धूल है, जड़ परमाणु पुद्गल की दशा है यह। यह कहीं आत्मा नहीं है।

भगवान आत्मा तो अन्दर अरूपी सच्चिदानन्द सिद्ध समान, जैसे भगवान सिद्ध हैं, अशरीरी, वह हुआ, वह आत्मा था। ऐसा आत्मा अन्दर अशरीरी चैतन्यमूर्ति है, ज्ञान आनन्द-कन्द है, ऐसी दृष्टि करके, यौवन या वृद्धावस्था हो। ऐ मलूकचन्दभाई! भाई! यह यौवन गया और वृद्धावस्था रही, उसे क्या करना, ऐसा पूछा? वृद्धावस्था तो क्षण में गिर जाये, उसके लिये अपने नहीं कहते भाई खिरा पान। ऐसे खिरा हुआ पत्ता पीला खिरने में देरी नहीं लगती। इसी प्रकार वृद्धावस्था तो क्षण में नाश हो जायेगी। बैठे रहे फिर क्या हुआ? अभी तो हार्टफेल बहुत होते हैं। लठ्ठ जैसे शरीर हो, क्या हुआ? क्योंकि संयोगी चीज़ है, यह कोई आत्मा की चीज़ नहीं आत्मा तो अविनाशी भिन्न है, यह तो नाशवान पदार्थ का संयोग है। तो अमृतचन्द्राचार्य तो यहाँ तक कहते हैं (कि) अनित्य में कि माता के उदर में वह बालक पड़ा तो माता की नजर न पड़े, उससे पहले अनित्य ने... अनित्य ने तो उसको गोद में ले लिया। बसंतीलालजी! क्या कहा?

माता से प्रसव आया शरीर का, बालक, अभी नजर पड़े, उससे पहले, गोद में लेने से पहले अनित्य ने गोद में ले लिया है। सब क्षण में नाश हो जायेगा। नाशवान पदार्थ है। जन्मते तुरन्त नाश हो जाती है देह। ऐसी अनित्य चिन्तवना करके आत्मा अपना शुद्धस्वरूप है, उसकी अन्तर्दृष्टि का एकाग्र करना, वही मनुष्यपने का कर्तव्य है। कहो, समझ में आया? यौवन, मकान, पाँच, पाँच लाख, दस-दस लाख का मकान बिजली पड़े और क्षय हो जाये। अब अशरण। दूसरी अशरणभावना।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते,
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।

है दूसरा श्लोक अशरणभावना। देखो, यहाँ एक मुर्दा चित्रित किया, देखो यहाँ मुर्दा यहाँ पर। सुर और असुर लाख तेरे देव और देवी हों, तेरी मृत्यु को बचानेवाला कोई है नहीं। लक्ष्मी को माने, वाड़ा को माने, धूल को माने, अम्बाजी को माने, भवानी को माने, वे सब नाशवान हैं। वे सब भूतड़ा हैं। अम्बाजी और भवानी सब भूतड़ी हैं, ऐई! इन भूतड़ियों को माने, अब यह सब नाशवान, यह सब बेचारे दुःखी हैं, वहाँ देव में भी दुःखी हैं, वह तो मानना, मरते कोई बचावे, ऐसा है नहीं। सुर-असुर खगादिक अर्थात् देवों के इन्द्र, असुरों के इन्द्र और खगेन्द्र मानो विद्याधर और गरुड़ और हंस कोई मृत्युकाल में किसी को बचानेवाला कोई है नहीं। देखो न, यह लालबहादुर शास्त्री बड़े डॉक्टर साथ में थे वहाँ ताशकन्द में। असुख है, ऐसा बोले, यहाँ असुख है दौड़कर गये चलकर डॉक्टर दूसरे कमरे में गये। ऐसा देखा, आहाहा! दुःख अन्तर से चला जाना तो वे खिंच गये। पाँच-सात मिनिट में समाप्त, क्या करे? धूल करे कोई? समझ में आया?

आयुष्य देह की पूरी हो इन्द्र-नरेन्द्र रखने को समर्थ नहीं। एक समय का आयुष्य किसी का बढ़े तीन काल-तीन लोक में नहीं। जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस स्थिति में देह छूटनेवाली है, वही छूटेगी, वहाँ शरण-फरण कोई है नहीं और रख सके क्षण (भर) तीन काल में किसी की सामर्थ्य नहीं है। ऐसी अशरणभावना भावे। देखो! गरुड़ जो है, उन सबका जिस प्रकार हिरण को सिंह मार डालता है, देखो, देखो सिंह लिया है। हिरण का पैर पकड़ लिया है सिंह ने। क्या करे हिरण? इसी प्रकार मृत्यु का आया। श्वास तेरा सगा नहीं, ऐसा नहीं कहते हैं? ऐसा हमारे कठियावाड़ में कहते हैं। तुम्हारे कहते, वह कहते हैं या नहीं? श्वास चले... मिट्टी है। ऐसे चलते मिट्टी है, तेरे से नहीं चलता। वह तो आत्मा है। वह तो पाक है, रजकण है, पुद्गल परमाणु का खण्ड का पिण्ड है। वह श्वास की क्रिया चलती है, आत्मा से नहीं। अरे! यह भी कौन निवृत्ति है इसमें। निवृत्ति अभी मरने की अभी निवृत्ति नहीं। आहाहा! पूरे दिन मरण... मरण... मरण। क्षण में भयंकर मरण। मेरा... मेरा... मेरा करके मर गया, मेरी चीज़ कहाँ अन्दर में है, उसकी कभी पहिचान की नहीं तो भगवान परमात्मा तीर्थंकरदेव

कहते हैं, हे भाई! विचार कर, क्षण विचार कर। सबका ..... हिरण को सिंह मार डालता है, वैसे मृत्यु नाश करती है।

चिन्तामणि आदि मणिरत्न काम करे मृत्यु के समय चिन्तामणि घिसकर पिलाओ, धूल क्या करे चिन्तामणि? वह सोगठी आती है न, क्या कहलाती है वह? हिरण्यगर्भ की, वह तो स्वार्थ के लिये बुलाने के लिये हो, वह जरा घिसकर कुछ आवाज दे, इसका क्या करना? फिर भले मर जाये। थोड़ी बहुत आवाज दे गर्मी से। कस्तूरी की हिरण्यगर्भ की गोली आती है अकेली कस्तूरी नहीं, वह गोली आवे बहुत ऊँची चीज़ हो उसमें मैंने देखी थी। बहुत वर्ष वहाँ पालेज में देखी। वह बेचने आता था और एक साधु था स्थानकवासी, वह वहाँ लेता था। मैंने कहा, यह ठीक, हरखचन्दजी थे.... लेते थे, तब देखी (संवत्) १९६७ के वर्ष, संवत् १९६७, वह मरते समय उस गृहस्थ को पिलाते हैं न थोड़ी-थोड़ी जरा गर्मी हो तो बोले, क्या है बापूजी! क्या कहे फिर तो मर जायेंगे वहाँ। ....दबाया हो तो पूछ ले, बाद में मर जाये कहाँ कोई शरण है नहीं। भले चिन्तामणि रत्न घर में पड़ा हो। समझ में आया? आहाहा!

देखो न! यह बड़े वहाँ दस-दस करोड़ रुपये पड़े, यह शोभायभाई भाणाभाई। वहाँ दस करोड़। अमीर थे और यहाँ आते न भाई! यहाँ पभाभाई नहीं आये थे उनके मामा के पास दस करोड़। देखो, वहाँ अकेले माणेक भरे हों, सोना पड़ा हो, कुछ खर्च करने की वृत्ति नहीं और लड़के को लड़का नहीं था। जहाँ हो वहाँ दस करोड़ रुपये, सोना तो सोना भरा, माणेक तो माणेक भरे हैं। मानो इतनी चीज़ें ढ़ेर! चाँदी तो चाँदी भरी हो, मणिरत्न में मणि भरे हों, दस करोड़ डाले, कहाँ? वह मरते समय भाई! हो...हा... अरे प्रभु! दरकार नहीं यह तो ... पचास लाओ भाग.... उत्तराधिकारगत नकद लाओ। आहाहा! ऐसे हैरान ... हैरान हो गये। अपनी चीज़ नित्यानन्द भगवान की दृष्टि करते नहीं, सम्हाल करते नहीं, उसकी कहाँ चीज़, उसका ज्ञान करते नहीं। मैं हूँ कौन? यह आत्मा आत्मा करते हैं कौन? सब है, ऐसा विचार करते हैं परन्तु मैं हूँ कौन?

चिन्तामणि आदि मणिरत्न बड़े-बड़े रक्षा मन्त्र हो, देखो! मुडका को .... किया

और स्वाहा, ऐसा करते हैं धूल में रख सकते नहीं। ब्राह्मण भी मर जाते हैं। पढ़ाते हैं न ब्राह्मण से क्या कहलाता है? मृत्यु के जाप। वह सेठिया को भ्रमणा का पार नहीं होता, बड़ी भ्रमणा... बड़ी भ्रमणा। समझ में आया? हमारे एक बड़े सेठिया देखे थे बड़े करोड़पति बड़ा ऐसे घर में लील ऐसे उसके घर में ही उतरे थे। बाहर वहाँ अन्दर ब्राह्मण जाप करता था, यह क्या? इस सेठ के घर में। अरर! ऐसा बनिया होकर भी जाप जपे मृत्यु के जाप और कुछ लक्ष्मी मिल जाती होगी। मर जाये तो भाग्य बिना न मिले कोड़ी। हुनर करे हजार भाग्य बिन मिले न कोडी। लाख हुनर कर न, वह तो तेरा राग है। पैसा आदि मिलना तो पूर्व के पुण्य के कारण से है। तेरी व्यवस्था के कारण से मिलता है (ऐसा नहीं)। समझ में आया? तेरी होशियारी के कारण से मिलता है पैसा? धूल में नहीं मिलता। मलूकचन्द कहे न, यह चतुराई से मिला होगा न यह तेरे तुम्हारे पूनमचन्द को! नहीं। धूल में भी नहीं आवे। उसकी अपेक्षा चतुर बहुत हैं। पूर्व के पुण्य के रजकण पड़े हों, पाप काल में, वह लक्ष्मी दिखती है, उसमें तुझमें क्या आया? धूल में आया क्या? पाँच एक सौ करोड़ दिखे उसमें, ममता में निमित्त है। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है। उसकी रुचि और दृष्टि करे बिना वह सब अशरण... अशरण। समझ में आया? आहाहा!

डॉक्टर कहे, दो-चार लाख की पूँजी हो, शरीर बीमार हो डॉक्टर कहे केंसर हुआ है। भाईसाहब स्त्री को कहना नहीं, हों! स्त्री से अभी विवाह किया, दो वर्ष हुए। यह बना था न मलूकचन्दभाई! लींबड़ी में दस लाख हुए। यह तो सब हमको खबर है, हमको एक-एक बात की। दस लाख हुए, नया विवाह किया। डुंगरशीभाई लो न... डुंगरशी गुलाबचन्द विराटमल संघवी। आहाहा! ४८ वर्ष में नया विवाह किया। दस लाख रुपये। डॉक्टर कहे क्या करूँगा... कैसे करूँगा? भाईसाहेब! बात करना नहीं किसी को। मुझे भले कही, परन्तु अब बाहर प्रसिद्ध करना नहीं। वरना स्त्री को, सबको दु:ख होगा। सबको दु:ख होगा ऐसा। मर गया बेचारा ४८ वर्ष की छोटी उम्र। क्या करे धूल में, अशरण में पैसा शरण कौन? स्त्री शरण है? कोई शरण है? सिंह देखो, सिंह ने हिरण का पैर पकड़ लिया है। कौन करे? यह कहते हैं चिन्ता तन्त्र। बहुत से होने पर भी, जन्त्र-तन्त्र-मन्त्र करे, लो न, कोई मादळिया करते हैं और वह करते हैं और वह

ऐसा और वैसा, धूल भी नहीं है, सुन न! तुझे कोई शरण है नहीं। मुफ्त का मेरा मूढ़.. मूढ़... वह पक्का मूढ़, बैल जैसा मूढ़। ऐ झवेरचन्दभाई! तेरा आत्मा का चिन्तवन कर, हित कर। क्या आत्मा क्या है, उसकी तो पड़ी नहीं, ऐसा-ऐसा ममता में कोई शरण नहीं। मरनेवाले को कोई नहीं बचा सकते? आहाहा! रोवे।

पैंतीस वर्ष की स्त्री मर जाये, चालीस वर्ष का पति ऐसा रोवे, आहाहा! अरेरे! इन लड़कों का क्या होगा? बच्चे का क्या होगा? नया विवाह करेगा, छोटी उम्र से है। पाँच लाख की पूँजी है। आहाहा! वह स्त्री मरते हुए... हाय, हाय! कोई शरण है नहीं। कोई शरण नहीं। ऐसा कहा है अन्दर देवी देव एक ओर ब्राह्मण ऐसे... ऐसे करता है मुर्दे के ऊपर, ऐसा अब कहाँ मुर्दा, कहाँ जन्त्र-मन्त्र करना। जो आयुष्य की स्थिति जिस समय में जिस क्षण में जिस खाट पर जिस प्रकार से होनेवाली है, वह तीन काल में इन्द्र नरेन्द्र, जिनेन्द्र जिसे कोई बदल सकते नहीं। किसी की सामर्थ्य नहीं कि आयुष्य का एक समय बढ़ा सके। मूढ़ शरण खोजने को पर में जाते हैं। आहाहा! सब मूढ़ होंगे यह? पैसेवाले यह पैसेवाले अर्थात् क्या परन्तु? सुखलालजी! अर्थात् बड़े धूलवाले। संसार में जो देवेन्द्र, असुरेन्द्र, खगेन्द्र—पक्षियों का राजा आदि, ऐसा सबका जिस प्रकार हिरण को सिंह मार डालता है, उसी प्रकार मृत्यु नाश करती है। चिन्तामणि आदि मणि, मन्त्र आदि जन्त्र, तन्त्र, कोई मृत्यु शरण नहीं रखता....

यदि ऐसा समझना यहाँ ऐसा समझना निज आत्मा ही शरण है, ओहो! मैं नित्य ध्रुव। मैं तो कायम रहनेवाला हूँ, विकार भी क्षणिक पलटते हैं, शरीर पलटते हैं, मैं तो ध्रुव नित्यानन्द हूँ, मेरे अन्तर स्वरूप में तो आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। वस्तु में आनन्द—शान्ति पड़ी है, ऐसा मैं ही आत्मा हूँ, ऐसी धर्मी जीवों को अपने स्वरूप का बारम्बार मनन, चिन्तवन करना चाहिए। आत्मा ही शरण है। दूसरे को कोई शरण है नहीं। अरिहंता शरणं आता है न? आता है या नहीं मांगलिक में? अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं। मांगलिक में आता है या नहीं? ऐसे भगवान कुछ शरण देते हैं? यह तो भगवान कहते हैं, तेरे स्वरूप का तुम सम्हाल करो, तू तेरा शरण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? किसका शरण वह दे देते हैं भगवान यहाँ आकर कोई, अरिहन्त भगवान तो अरिहन्त में स्थित। महाविदेह में विराजते हैं वहाँ

तीर्थंकरदेव सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। महावीर भगवान तो सिद्ध में गये चौबीस तीर्थंकर तो सिद्ध हो गये। शरीररहित (हो गये) नीचे शरण देने आते हैं कोई? वे कह गये, तेरा स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द अन्दर है, उसकी तुम शरण लो। वही भगवान का शरण कहते हैं। दूसरा क्या? दूसरा भगवान कहाँ शरण देने को आता है।

अशरण में क्या शुभभाव हो जरा, उसमें आत्मा में क्या हुआ? उसे माने वहाँ देनेवाले को आत्मा अन्तर ज्ञानानन्द प्रभु चैतन्य सूर्य आत्मा अर्थात् चैतन्यसूर्य, आत्मा अर्थात् आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार। ऐसा आत्मा का शरण न ले तो कोई शरण देने में समर्थ नहीं। आहाहा! तेरी नजर तुझमें पड़े तो शरण है। तेरी नजर शरीर और पर में पुण्य-पाप के ऊपर रहे तो कहीं शरण है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका नाम धर्म है। तेरी नजर तुझमें पड़ना। आहाहा! बात ऐसी! सुनने का समय मिले नहीं, विचारने का समय नहीं। बहुत कहे कि मरने का समय है नहीं अभी हमको। मरने का समय आयेगा तब पैर पड़ा रहे एक ओर, सुन तो सही तेरे रुपया-बुपया धूल में काम नहीं आवे। कहते हैं, एक शरण आत्मा है। उसके अतिरिक्त कोई शरण नहीं। कोई जीव अन्य जीव की रक्षा कर सकने में समर्थ नहीं। कोई रक्षा कर सकता है? मृत्युंजय करावे तो। मृत्युंजय जाप वह मर जाये, मेरा मृत्युंजय करता ब्राह्मण वह... मृत्युंजय ब्राह्मण से करावे, सवा लाख जपाओ सवा लाख, ऐसा है उसको मिले पाँच पचास लाख, पचास हजार.... मृत्यु बचा सकते कोई एक समय आयुष्य की हीनाधिकता होती है (ऐसा तीन काल में नहीं)। जिस समय में वहाँ मर जाने का, उस समय मर जानेवाला है। भगवान ने आत्मा से देखा भगवान केवलज्ञानी साथ में देह छूटेगा, वह तीन काल में बदले नहीं। कहो, झवेरचन्दभाई! क्या होगा? कौन मरकर कहाँ जाना है यहाँ से? .... वह पर से रक्षा की आशा करना व्यर्थ है। देखो!

सर्वत्र सदैव एक निज अपना आत्मा शरण है। आत्मा अन्दर शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, पुण्य-पाप विकार दिखते हैं, वह तो विकार है। विकार से अन्दर में देखो तो शुद्ध चिदानन्द आत्मा है, ज्ञानानन्द सिद्ध समान है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ने तो आत्मा आनन्दरूप देखा है। वह आनन्द प्रभु आत्मा, उसकी शरण ले.... उसकी दृष्टि करो, उसके सन्मुख हो, दुनिया की क्या कहे दुनिया कोई शरण देनेवाला नहीं। समझ में

आया ? यह खबर है आत्मा कौन कहाँ और कौन जाने यह दुनिया की यह पड़ी मैं धुँए को बाथ में भरना। तुम्हारे कुछ कहते हैं यह धुँआ नहीं उठता धुँआ ? धुँआ पकड़े तो पकड़ सकते हैं ? थैली भरी हैं धुँए की, धुँआ की थैली भर सकते हैं ? उसी प्रकार यह जगत की चीज़ अनित्य है, उसको रख सकते हैं ? कोई शरण नहीं तुझको। मैं आत्मा अनादि-अनन्त स्वसन्मुखतापूर्वक चिन्तन करने कहे, सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है। धर्मी जीव अपने शुद्धस्वरूप को वह दृष्टि करके अनित्यता की— अशरण की भावना करके अपने स्वसन्मुख में वृद्धि करते हैं, वही धर्म है, दूसरा कोई बाहर से धर्म होता नहीं।

संसार भावना

चहुँगति दुःख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं;
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा।

देखो, इसमें लिखा है देखो यहाँ मनुष्यगति ली है मनुष्यगति। एक मनुष्य है, लड़का है, स्त्री एक ओर सामने देखकर बैठी है, सामने मकान है, यह संसार मनुष्यपना है। फिर यह देव, फिर यह तिर्यंच घोड़ा लिया है घोड़ा, उसमें भार भरा है। नीचे कुत्ते जैसा किया लगता है। एक यह नारकी। नीचे नारकी की गति है, हों नीचे। यह पशु तो दिखते हैं, मनुष्य दिखते हैं। देव है ऊपर स्वर्ग में देव है और नीचे नारकी है। माँस, मदिरा पीते हैं, शिकार करते हैं लम्पटपना करते हैं (वे) मरकर नरक में जाते हैं। यह नरकगति है। कल्पना नहीं है, कोई माने या न माने, इससे वस्तु चली जाती है ? देखो, नारकी पड़ा है। बिच्छू-बिच्छू उसे डंक मारते हैं, उसको यम मारते हैं। समझ में आया ?

यह चार गति। मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारकी। चार गति में जीव चार गति में दुःख भोगता है। स्वर्ग में भी दुःख, स्वर्ग में कहीं सुख होगा या नहीं ? मोहनभाई! लिखा है न उसमें। क्या लिखा ? देव में दुःख है... देव में दुःख है धूल में कहाँ सुख, वहाँ तो आकुलता है। भले इतनी इन्द्राणी आदि स्वर्ग, परन्तु आकुलता है न! आकुलता है कि यह मेरा, यह है मेरा, यह है। वह तो दुःख है, देव में सुख कहाँ से पड़ा था सेठाई में। चार गति में चारों गति ली है। सेठाई में सुख है, दुःख है, सेठिया दुःखी है, ऐसा कहते हैं। ऐ मलूकचन्दभाई! दुःखी है, मानते हो अन्दर।

क्या कहते हैं (आकुलता मिली न), वह आकुलता यह लक्ष्मी मेरी, शरीर मेरा, रक्षण करना, ऐसे धूल करना, वह सब आकुलता दुःखी है। अन्दर होली सुलगती है, अन्दर कषाय। विकार की ज्वाला सुलगती है, वह दुःखी है। सेठ दुःखी, सेठिया दुःखी, रंक-राजा दुःखी, देव दुःखी, चार गति दुःखी, देखो ऐसा लिया है। है नहीं सुख है नहीं। सुख आत्मा के आनन्द में है। सिद्धपद में है सुख, वह सुख आत्मा में है, उसमें से प्रगट होता है। बाहर से सुख आता नहीं। समझ में आया? चार गति में दुःख भोगता है। 'भरे' ऐसा लिखा। पाँच प्रकार के परिवर्तन—परिभ्रमण करे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव (परावर्तन)। लो, यह भाव शुभाशुभ, वह दुःखरूप है, ऐसा कहते हैं। क्या पाँच परिवर्तन आया न! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। जितना शुभ और अशुभभाव है, वह संसार परिवर्तन दुःखरूप है। आहाहा! पाँच परिवर्तन आया न! द्रव्य में यह संयोग, क्षेत्र में यह क्षेत्र, काल में समय-समय, भव में चार गति और भाव में शुभाशुभभाव। पाँचों परिवर्तन में अनन्त काल से आत्मा के शुद्ध चैतन्य के भान बिना, यह सम्यग्दर्शन बिना, यह सम्यग्दर्शन आत्मा के शुद्धस्वरूप की प्रतीति—अनुभव बिना, वह चार गति में अनन्त काल में रुले, कोई उसका संसार में सुख है नहीं, शरण है नहीं। यह संसारभावना की बात चलती है, हों!

संसार सर्व प्रकार से साररहित है, देखो! 'सबविध संसार असारा, यामें सुख नाहीं लगारा।' सुख तो आत्मा में आनन्द में है। संसार में कहीं सुख नहीं। सार यह, इसमें सुख लेशमात्र भी नहीं। थोड़ा सुख है या नहीं? बैठे हैं दुःखी हैं, आकुलता है, देखो! उसमें आकुलता है। सम्हालने की एक-दूसरे की, बैठे हैं न यह लोग। धूल में नहीं सुख, दुःख है। आत्मा प्रभु अनाकुल आनन्द से भरा, उसकी सम्यग्दृष्टि, वही सुखरूप है। आदि सबमें सुखरूप संसार में कोई गन्ध में है नहीं। चक्रवर्ती दुःखी, श्लोक आता है न! 'नवी कोई देवता देवलोए, नवी सुही सेठ सेना...' आता है न! 'नवी सुही उठवी पहियाया पृथ्वी का पति चक्रवर्ती सुखी नहीं।' दुःखी... दुःखी... दुःखी है। राग और द्वेष विकार करते हुए दुःखी है। राग-द्वेषरहित आत्मा का स्वभाव ही सुखरूप है। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करते नहीं और चार गति में संसार में दुःखी होकर रुलते हैं।

जीव की अशुद्धपर्याय संसार है, लो। कल किसी ने पूछा था न! संसार किसको

कहना? यह स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, मकान को संसार कहना? नहीं। वह तो परचीज़ है। संसार आत्मा का दोष है। समझ में आया? संसार कहाँ रहता होगा? भैया, समझ में आया? संसार कहाँ रहता होगा? यह स्त्री-पुत्र, यह मकान, पैसा बँगला, पैसा वह संसार है? वह तो जड़ पदार्थ पर है, उसमें संसार कहाँ से आया? आहाहा! खबर नहीं, अभी संसार कहाँ रहता है, खबर नहीं। संसार भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द अन्दर शुद्ध आत्मा प्रभु शक्ति तत्त्व में से खस—हटकर, वह पर मेरा, मैं उसका—ऐसा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष का भाव, उसको भगवान संसार कहते हैं। देखो, जीव की अशुद्ध पर्याय संसार। रतनलालजी! या स्त्री संसार, दुकान संसार? ऐ मोहनभाई! लोग कहे न संसार छोड़ा, इसने कहाँ संसार छोड़े स्त्री-पुत्र तो बाहर पर है, वह छोड़ा अर्थात् मानो क्या ..... अन्दर में मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव की रुचि छोड़े तो संसार की रुचि छूटी, फिर आसक्ति छोड़े—छूटे तो वीतरागता हो तो आसक्ति का त्याग हुआ, उसका नाम संसार का त्याग कहने में आता है। गजब दुनिया से बात अलग! समझ में आया?

संसार स्त्री कुटुम्ब शरीर संसार हो तो यह देह तो छूट जायेगी तो यह छूटे तो उसकी मुक्ति हो जायेगी। ऐसा यह संसार हो तो यह छूटता है मृत्युपना रहते तो उसकी मुक्ति हो जाये, यह संसार हो तो। यह संसार है ही नहीं। उसका संसार मेरी शुद्ध स्वरूप शक्ति है, उसकी प्रतीति की खबर नहीं, यह शरीर मेरा, लक्ष्मी मेरी, परिवार मेरा, इज्जत मेरी, ऐसा... ऐसा पुण्य-पाप का भाव मेरा, ऐसा मिथ्यादृष्टिपना, वही संसार है। समझ में आया? यह और कहाँ से निकाला ऐसा? ऐ मलूकचन्दभाई! भाई! हमने तो ऐसा सुना कि यह स्त्री-पुत्र संसार है। स्त्री, पुत्र, यह मकान, पैसा, इज्जत, दुकान चलती हो, पाँच-पचास लोग काम करते हों तो संसार। संसार तो वहाँ रहता होगा? संसार तो तेरी भूल है। तेरी भूल बाहर में रहती है? वे तो बाहर के पदार्थ हैं।

भगवान को भूलकर मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान करते हैं, उसको भगवान संसार कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द आनन्दकन्द, यह उसको भूलकर विकार और पर मेरा मानना और राग-द्वेष होना, उसका नाम भगवान संसार कहते हैं। समझ में आया भैया? आहाहा! स्त्री-पुत्र छोड़े, इसके घर में कहाँ घुस गये पैसा, वहाँ पड़े आत्मा की तो वहाँ पड़े बाहर, पैसा भी बाहर, होली पड़ी है और मकान-बकान बनाये

पाँच-पाँच-दस लाख के, कहाँ पड़े आते हैं साथ में? ऐ मोहनभाई! बँगला... बँगला में बैठे, बँगला है, यहाँ आया है साथ में? आहाहा! भाई! तेरी चीज़ अन्दर शुद्ध आनन्द प्रभु आत्मा है। यह उसको भूलकर शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पापभाव मेरा—ऐसी मान्यता मिथ्यात्व, वही तेरा संसार है। आहाहा! और मिथ्यात्व के साथ राग-द्वेष होना, वह संसार, वह मन्द संसार है। मिथ्यात्व तो तीव्र संसार है। समझ में आया?

रतनलालजी! क्या कहा? संसार आत्मा की पर्याय में—अवस्था में रहता है। भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति आत्मा है, स्वरूप शुद्ध चिदानन्द की अनन्त गुण की मूर्ति प्रभु आत्मा है, उसकी रुचि छोड़कर पुण्य-पाप मेरे हैं, ऐसी रुचि करना और परपदार्थ उसमें नहीं, उसको मेरा मानना, वह ही मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव संसार है। भगवान उसको संसार कहते हैं। आहाहा! ऐसा यह कहाँ से निकाला? तुझे खबर नहीं, इसलिए कहीं दूसरा हो जाये और उसके साथ जो पुण्य-पाप का राग-द्वेष का भाव है, वह संसार है, परन्तु मिथ्यात्व, वह बड़ा संसार है और राग-द्वेष मन्द संसार है, दोनों संसार हैं। दो का त्याग करके वीतराग को प्रगट करना, यह उसका नाम मोक्ष में संसार का अभाव है। समझ में आया? संसार.... आया था न यह, यह आया मोक्ष अधिकार में था उसमें। उसमें है न! मोक्ष अधिकार है न अन्तिम। मोक्ष... मोक्ष। प्रगट हो, वह मिथ्यात्व, वह आस्रव-बन्ध है। मिथ्यात्व का अभाव सम्यक् संवर, निर्जरा और मोक्ष है। प्रसिद्ध हो, ढिंढोरा पीटकर प्रसिद्ध हो। मिथ्यात्व, वह आस्रव और बन्ध है। वह संसार है। अपने शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की श्रद्धा छोड़कर शरीर, वाणी मेरा, पुण्य-पाप मेरा, यह पुण्य-पाप का फल मेरा, बन्धन मेरा, शुभाशुभभाव मेरा—ऐसी मान्यता मिथ्यात्व, वही संसार है, आस्रव और बन्ध है। वह आस्रव-बन्ध ही संसार है। आहाहा! यह कहाँ से निकाला?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दीक्षा कल्याणक (सायं)

(दिनांक 23-01-2024)

श्री समयसार कलश-टीका, कलश-१२४, प्रवचन-९७, दिनांक १३-०७-१९६५

१०८, समयसार कलश 'आस्रव अधिकार' है। है न १०८ पृष्ठ? क्या कहते हैं? देखो! नीचे।

इस आत्मा का ज्ञानस्वभाव इतना है, उसका महात्म्य वर्णन करते हैं। उसकी शक्ति का सत्व वर्णन करते हैं। यह आत्मा.. ये पुण्य-पाप के परिणाम जो आस्रवरूप हैं, वे मलिनभाव हैं। उनकी रुचि छोड़कर और आत्मा महान ज्ञान अनन्त.. अनन्त.. **ज्ञानस्वभाव...** है, उसकी रुचि करने से अन्तर में उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति का चारित्र होता है। समझ में आया? शान्ति... कहा इसमें, रामजीभाई! अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है।

श्रोता : यहाँ शान्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं धूल में भी शान्ति नहीं है। थोड़ी-थोड़ी क्या हो?

श्रोता : धूल में कहाँ है? घड़ी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ी धूल नहीं? यह यहाँ वर्णन करते हैं। अन्तिम आस्रव (अधिकार) पूर्ण करते हैं न? कि जहाँ आत्मा में...

आत्मा वस्तु है। उस ज्ञानमूर्ति की प्रधानता से वर्णन है। वैसे तो उसमें अनन्त गुण हैं। यह दर्शन, आनन्द, शान्ति अर्थात् चारित्र इत्यादि; परन्तु यह ज्ञानगुण एक ही इतना है, गुण कि जिसमें उसकी प्रगट होती पर्याय, पुण्य-पाप के मेल परिणाम की रुचि छोड़कर यह भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान का पिण्ड है, ऐसी अधिकपने आस्रव से भिन्न पड़कर, भगवान आत्मा महान ज्ञान का समुद्र है। उस ज्ञान के समुद्र में इतनी सामर्थ्य है

कि यह लोक और अलोक जो आकाश पूरा है, वह आकाश जिसके ज्ञान की एक समय की पर्याय में बिन्दुवत् ज्ञात हो, इतनी उसकी सामर्थ्य है।

भगवान आत्मा—यह चैतन्य वस्तु जिसका स्वभाव है। यह शरीर, वाणी, मन तो जड़ है; कर्म मिट्टी-जड़ है। उसमें पुण्य-पाप के विकारी शुभ-अशुभभाव होते हैं, वह मलिनता है। उस मलिनता की दृष्टि छोड़कर आत्मा की दृष्टि करना। क्यों? - कि वह महान ज्ञान का सागर है। उसमें आस्रव उत्पन्न हो, ऐसा कोई स्वभाव नहीं, परन्तु उसमें ज्ञान का इतना स्वभाव अन्दर पड़ा है कि जिसकी एक समय की प्रगट पर्याय होने पर पूरे आकाश को / नभ को पूरे आकाश को बिन्दुवत् जाने। पूरे ज्ञान में मानो लोकाकाश बिन्दु-समान (ज्ञात हो), इतनी उसके ज्ञान की सामर्थ्य है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिन्दु... यह अलोकाकाश की बात की है। किसकी चलती है यह? आकाश कहा न? पूरा आकाश। पूरा आकाश बिन्दुवत् ज्ञात होता है। वह तो है उतना है, परन्तु यहाँ ज्ञान के महात्म्य में उस ज्ञान का स्वभाव ऐसा है। इसे चीज़ यह आत्मा क्या है, इसकी खबर नहीं। बेखबरी अनादि का (भटक रहा है)। बराबर है न? बेखबरी अर्थात? दो खबर होगा? खबर रहित। बेखबर की व्याख्या क्या? खबर अर्थात् ज्ञान, (उसके) बिना का। भान नहीं होता कि मैं कौन हूँ? यह पुण्य-पाप के भाव, राग किया और उसमें माना कि अपना ओहोहो! अब वह तो तुच्छ विकारभाव, वह तो मलिनभाव, आत्मा के वास्तविक स्वभाव से विरुद्ध जहरभाव है। उससे आत्मा मानने में आये और आत्मा की शान्ति मिले (-ऐसा) तीन काल, तीन लोक में नहीं है।

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड में असंख्य भाग में आकाश, जो यह लोकाकाश नहीं; अलोकाकाश; वह भी जिनके ज्ञानार्णवे... इसमें पाठ है, भाई! इसमें। उसमें तो जरा पूछा था। यह '**विसरैः**' आयोगा न? '**विसरैः**' और '**स्फारै**' '**स्फारस्फारैः**' '**स्फारस्फारैः**' इस आत्मा में ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य लो या ध्रुव की सामर्थ्य (कहो), एक समय की पर्याय जो अवस्था है, उस अवस्था में अनन्त आकाश बिन्दुवत् ज्ञात (होता है) इतनी तो उसकी सामर्थ्य है। अब ऐसे आत्मा का

महात्म्य न आकर जिसे... यहाँ आस्रव अधिकार है। पुण्य और पाप के विकल्प तथा राग का महात्म्य आता है, वह दृष्टि असत्य अर्थात् मिथ्यात्व है। समझ में आया?

जिस दृष्टि में सम्यक्ता होता है, उस दृष्टि में पुण्य-पाप के विकल्पों की महत्ता / महात्म्य छूट जाता है और भगवान आत्मा, वह चैतन्यमूर्ति है, अकेला ज्ञान का सागर है। ज्ञानार्णव—वह ज्ञान का समुद्र है। जिसमें आकाश... दूसरा सब बहुत लिखा था। पण्डितजी! धर्म, अधर्म, आकाश, अभी जिक्र किया था न? धर्म, अधर्म, आकाश, कषाय, अध्यवसान यह सब उसे ज्ञात होते हैं, (वे) बिन्दु की भाँति ज्ञात होते हैं। यह तो अभी दो शब्दों का पूछा था। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तू कितना, कहाँ है—इसकी तुझे कीमत नहीं होती और तब तक पर की कीमत हृदय में से हटती नहीं। पुण्य के परिणाम और पाप के भाव और हमने ऐसा किया... यह उसकी कीमत की है। कान्तिभाई!

श्रोता : यह बहुतों का काम सुधारा होवे न...!

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका सुधारा? धूल का सुधारे? किसने सुधारा? किसने सुधारे? किसने सुधारे हैं?

श्रोता : कौन हाँ करे! अन्तर में....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक द्रव्य दूसरे को सुधारे कौन? कौन है सुधारनेवाला? लाओ एक दृष्टान्त। जगत के पदार्थ जहाँ स्वयं से स्वतन्त्ररूप से परिणम रहे हैं, उन्हें दूसरा सुधारे क्या? और दूसरा बिगाड़े क्या? शान्तिभाई! आहाहा! तूने तुझे बिगाड़ा। क्योंकि ऐसा ज्ञानमूर्ति प्रभु, जिसमें अलोकाकाश भी बिन्दुवत् ज्ञात हो, इतना, उसे दृष्टि में महात्म्य न आकर, यह जरा पुण्य-पाप के विकल्प हुए, उनका माहात्म्य आया, वह इसने आत्मा को स्वयं को पर्याय में बिगाड़ा। वैसे तो द्रव्य-गुण कहाँ बिगड़ते हैं? समझ में आया?

अपना आत्मस्वभाव, सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा को तो एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए। वे भी तीन काल-तीन लोक उन्हें ज्ञान में बिन्दु जितने लगे। यहाँ अभी कहेंगे। इसलिए जो जगत के ज्ञेय हैं... देखो! कितने? कि '**सर्वभावान्**'

है? नीचे पाँचवीं लाईन है। **जितने ज्ञेय वस्तु...** जगत में जाननेयोग्य जितने चीजें है, उनकी **अतीत...** भूतकाल की दशाएँ अर्थात् पर्यायें, **अनागत...** की ऐसी भविष्य की अनन्त काल की पर्यायें। आहाहा! **वर्तमान पर्याय सहित...** और वर्तमान अवस्था सहित **उनको अपने में प्रतिबिम्बित करता हुआ।** इतनी ताकत कि इसमें ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई, उसमें सब ज्ञात हो जाता है, ऐसा उसका पर्यायधर्म है। गुणधर्म की तो बात क्या करना? समझ में आया?

किसके द्वारा? देखो! अब आया। '**स्वरसविसरैः**' यह स्वरस अर्थात् **चिद्रूप गुण...** जो आत्मा का है। ज्ञानगुण... ज्ञानगुण... ज्ञान... जानन... जानन... स्वभाव, वह गुण। **उसकी... 'विसरैः' अनन्त शक्ति, उसके द्वारा।** उस ज्ञानगुण में अनन्त शक्ति है। उसके द्वारा एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक, अलोक आदि एक बिन्दु की भाँति ज्ञात हो जाते हैं। यह एक आत्मा की एक पर्याय की इतनी ताकत। आहाहा! समझ में आया?

स्वरस द्वारा अर्थात् चिद्रूप गुण, ज्ञानगुण... ज्ञानगुण-स्वभाव। राग नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं, मन नहीं, शरीर-कर्म नहीं। अन्दर में जो भगवान आत्मा का ज्ञानगुण है, उसके द्वारा जगत के तीन काल-तीन लोक के पदार्थ, हुए, होते हैं और होंगे; जिस समय जहाँ जो होगा, होता है और हो गया। एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में जानने की इसकी ताकत है। समझ में आया? यह इसकी ज्ञानलक्ष्मी इतनी है। शान्तिभाई! ज्ञानलक्ष्मी। इसमें यह पाँच-पचास लाख - धूल, करोड़-दो करोड़, यह तो धूल लक्ष्मी है। वहाँ कहाँ तेरी लक्ष्मी थी?

श्रोता : उसके बिना...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल, उसके बिना अनन्त बार चला है। एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य के बिना अनन्त काल से चलाया है। कहो, यह बात सत्य होगी? कैसे?

श्रोता : यहाँ कौन इनकार करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किस प्रकार? उसका न्याय देना चाहिए न! ऐ... वजुभाई! न्यालभाई! न्याय दो, लो! भाई! यह बुजुर्ग बड़े पुराने वृद्ध हैं। एक तत्त्व में

दूसरे अनन्त तत्त्व बिना अनन्त काल से चलाया है, लुढ़काया है, निभाया है। किस प्रकार कि एक तत्त्व में अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से स्वयं है और अपने अतिरिक्त के अनन्त तत्त्वों से नहीं है। इसलिए नहीं से चलाया है। उसमें नहीं से चलाया है। उसके कारण चलाया है, ऐसा नहीं है। न्यालभाई! बात समझ में आती है या नहीं इसमें?

श्रोता : अभी तक हमारी मान्यता...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मुफ्त का मूर्ख मानता है। मुझे इसके बिना नहीं चलता, इसके बिना नहीं चलता। इसने पर के बिना अनन्त काल चलाया है। मात्र नहीं चलाया किस प्रकार? भ्रमणा के बिना नहीं चलता, ऐसा इसने चलाया है। भ्रमणा के बिना नहीं चलता... भ्रमणा के बिना... क्योंकि भ्रमणा इसकी पर्याय में होती है। उसके बिना इसने नहीं चलाया। क्या कहा, समझ में आया कुछ? ऐ... छोटाभाई! समझ में आया इसमें कुछ? थोड़ा-थोड़ा ध्यान देना पड़ेगा। नहीं समझ में आता, नहीं समझ में आता, ऐसा नहीं करना पड़ेगा। बाबूभाई!

देखो! यह अंगुली है। इस अंगुली को देखो! ७६ वर्ष हुए। इस अंगुली ने इस अंगुली के बिना चलाया है। बराबर है? इस अंगुली ने इस अंगुली के बिना चलाया है क्योंकि इस अंगुली में इसकी नास्ति है और यह कदाचित् जाए तो भी यह जाए, ऐसा नहीं है। इसलिए इस चीज़ ने इस चीज़ के अभाव से चलाया है। अपने भाव से और पर के अभाव से (चलाया है)। बराबर है? इसी प्रकार भगवान आत्मा ने अपने अस्तित्व से चलाया है, पर के नास्तित्व से चलाया है। पर इसमें तीन काल में नहीं है। नहीं पर का इसमें इसे इस प्रकार से निभ रहा है। नहीं तो यह टिक नहीं सकता। समझ में आया या नहीं? न्यालभाई!

एक रजकण कर्म का शरीरादि अनन्त परमाणु और अनन्त आत्माएँ। एक आत्मा वह अपने द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; काल अर्थात् अवस्था और भाव अर्थात् शक्ति। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से चलाया है और दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल अनन्त से इसने रहित से चलाया है। बराबर है? पाटनीजी!

श्रोता : वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु भी ऐसी ही है, ऐसा। मात्र इसने मान्यता बिना चलाया नहीं। इसके बिना चलता नहीं... इसके बिना चलता नहीं... इसके बिना (चलाया नहीं)। इस मान्यता के बिना नहीं चलाया। इस मान्यता के बिना चले, तब सम्यग्दृष्टि होता है। समझ में आया? आहाहा! भ्रमणा। भगवान! मुझे टिकना है, हों! मुझे टिकना किस प्रकार? दूसरे साधन यह होवे न तो टिकूँ। यह होवे तो टिके? यह होवे तो वह टिके या यह होवे तो तू टिके? वह होवे तो यह टिके या वह होवे तो तो तू टिके? यह कहाँ से लाया ऐसा? समझ में आया? भाई! बात भारी गहरी। गहरी नहीं यह तो दो और दो=चार जैसी बात है।

प्रत्येक वस्तु स्वसत्ता से टिक रही है। पर अनन्त सत्ताओं का उसमें अभाव है, इससे पर के अभाव से टिक रही है। मात्र अन्दर भ्रमणा घुस गयी है। पर के बिना नहीं चलता... पर के बिना नहीं चलता... इसलिए इसका लक्ष्य पर में लगा है। स्व की दृष्टि होने पर (मैं) पर के बिना तो हूँ परन्तु राग के बिना मैं हूँ - ऐसी दृष्टि होने पर राग के बिना भी मैं चला सकता हूँ। समझ में आया?

यह आस्रव अधिकार है न! मैं तो आस्रव बिना चला सकता हूँ, ऐसा आत्मा हूँ। पर के बिना तो अनन्त काल से चलाया ही है। मान्यता में अन्दर ऐसा डाला है, विकार बिना चलता नहीं, भ्रमणा बिना चलता नहीं, इसके बिना टिकता नहीं। यह इसके बिना टिके, ऐसी जब तत्त्वदृष्टि होती है, वह आस्रव बिना टिका रहे—ऐसा तत्त्व है, तब इसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया या नहीं इसमें? न्यालभाई! सूक्ष्म पड़ता है? यह तो बहुत सादी बात है, बहुत सादी। आहाहा!

यहाँ आस्रव कहते हैं। इसने अपनी अनन्त शक्ति बिना कभी चलाये बिना रहा नहीं। अनन्त शक्ति से चलाया है। अनन्त... अनन्त... शक्ति। महान! कैसी है? - कि '**स्वरसविसरैः**' चैतन्यगुण जिसका है, उसका '**विसरैः**' अनन्त शक्ति है... अनन्त शक्ति है... एक शब्द। **कैसी है वे? स्फारस्फारैः...** अनन्त शक्ति, उससे भी अनन्तानन्तगुणी। आहाहा! यहाँ तो आस्रव की तुच्छता है, उसमें राग और द्वेष, पुण्य और पाप, दया और

दान में अटकना, वह तो बहुत तुच्छता है, कहते हैं। उसमें कोई महिमा नहीं है, उस चीज़ में कोई महिमा और माहात्म्य करनेयोग्य चीज़ नहीं है।

भगवान आत्मा इन पुण्य और पाप के आस्रवतत्त्व से आत्मतत्त्व जो कि अनन्त-अनन्त शक्तिवाला ज्ञान, वह आस्रव को तो जानता है, अपनेरूप मानकर नहीं,पृथक् रखकर (जानता है) परन्तु तीन काल-तीन लोक के पदार्थ को सर्वज्ञ तो पृथक् जानते हैं और श्रुतज्ञानी भी अपनी पर्याय में पर से रहित हूँ, आस्रव से रहित हूँ, अनन्त गुण से सहित हूँ, (ऐसा जानता है)। समझ में आया? यह बात... उसने आत्मा अर्थात् क्या? आत्मज्ञान अर्थात् क्या? इसकी उसे कीमत नहीं होती। ऐसा माहात्म्य (करे)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, कैसी है शक्ति? वह अनन्त शक्ति **अनन्तशक्ति, उससे भी अनन्तानन्तगुणी है।** लो! अनन्तानन्तगुणी शक्ति यहाँ तेरे पास पड़ी है। लोकालोक को तो बिन्दु समान जाने, इतनी तो तेरी ताकत ध्रुव में है। उसकी प्रगट एक समय की पर्याय में इतनी ताकत है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय की ताकत का चिद्रूप गुण है। समझ में आया? उसके बिना ऐसी माहात्म्य दृष्टि हुए बिना विकार से हटे नहीं और स्वभाव के माहात्म्य में एकाग्रता नहीं होगी। तीन काल-तीन लोक में परम सत्य यह है। यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। कहीं भगवान ने की है? भगवान ने तो जानी, वैसी कही है। समझ में आया? यह वाणी से कही है।

यहाँ कहते हैं **अनन्तानन्तगुणी है। भावार्थ इस प्रकार है-द्रव्य अनन्त हैं...** देखो! जगत में द्रव्य अनन्त हैं। द्रव्य अर्थात् अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। भले व्यापक पूरा परन्तु है द्रव्य एक आकाश। वह अनन्त द्रव्य। **उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे हैं...** जितने द्रव्य हैं, उनसे अनन्तगुणी उनकी पर्याय अर्थात् अवस्थाएँ हैं। अवस्था - हालत। **उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे हैं। उन समस्त ज्ञेयों से...** देखो! यह **ज्ञान की अनन्तगुणी शक्ति है।** आहाहा! अभी तो ज्ञेयों से भी जानने से अनन्तगुणी दूसरी शक्ति बाकी रह गयी है अन्दर। समझ में आया? यहाँ तो अभी उसे सर्वज्ञ जँचता नहीं। सर्वज्ञ सब जाने? ऐसा सब निश्चित जाने? निश्चित जाने? जिस समय में जहाँ होनेवाला है, जो वहाँ हुआ, उसे पहले से जाने? पहले से नहीं जाने तो क्या बाद से जाने?

सर्वज्ञ की पर्याय में तीन काल, तीन लोक समय-समय में जो पर्याय सहित है, गुण और द्रव्य, वह सब एक समय में सब ऐसा ज्ञान में आ गया है। वह सब ज्ञान में आने पर भी ज्ञान की शक्ति उससे अनन्तगुणी बाकी रह गयी है। इतनी ताकत है। समझ में आया? अभी लोगों को ऐसा हो गया है। भगवान ने सब जाना? सब जाना? तो अब जाना तद्नुसार हम तो पराधीन हो गये। पराधीन की कहाँ बात है?

श्रोता : भगवान के ज्ञान के आधीन हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके ज्ञान के आधीन है? कौन कहता है? उन्होंने तो जाना है। जाना इसलिए यह पराधीन हो गया? समझ में आया? स्वयं स्वतन्त्र है। यह जानने में आया... प्रश्न नहीं उठा था? भाई ने किया था न? भाई! यह जाना कि यह नेमीचन्द्र पाटनी है। ज्ञान ने जाना। अब ज्ञान ने जाना, इसलिए उसमें पराधीन है? अर्थात् ज्ञान के आधीन इसे रहना पड़ता है वहाँ? यह तो स्वतन्त्र है। इसके द्रव्य, गुण, पर्याय... इसी प्रकार लोकालोक ज्ञान में ज्ञात हुआ, भगवान के ज्ञान में, एक समय की पर्याय में; इससे लोकालोक कहीं ज्ञान के आधीन हो गये हैं? पराधीन हैं? समझ में आया?

श्रोता : ज्ञान ने जाना, ऐसा इसे परिणमित होना पड़ता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण परिणमना पड़ता है या स्वयं के कारण परिणमित होता है? वे तो मात्र जानते हैं इतना। यह पहेली बहुत कठिन है। समझ में आया?

अभी जगत को सर्वज्ञ की बात ही जमना कठिन पड़ती है। एक समय में ऐसे तीन काल-तीन लोक बिन्दु समान है। है न अपने कहीं? है या नहीं? ऐसा है कहीं, नहीं? यहाँ है। जिनके ज्ञान सरोवर में सर्व विश्व मात्र कमलतुल्य भासित होता है। चौका है। ऐसा भगवान श्री सीमन्धर आदि जिनेन्द्रदेव को परम भक्ति से वन्दन हो, बारम्बार वन्दन हो। चौका है, देखो! यहाँ तो पहले से सब चौके रिजर्व कर दिये हैं। समझ में आया?

सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकररूप से विराजमान हैं। उनके एक ज्ञानगुण की एक पर्याय, हों! एक ही पर्याय। कहते हैं कि उसमें लोकालोक और उसके जितने लोकालोक के सब भेद। धर्म, अधर्म, आकाश, काल,

अध्यवसाय, उसके अनुभाग, कषाय के रस, उसके अविभाग प्रतिच्छेद, एक-एक पर्याय और एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद-अंश, वे सब भगवान को एक समय में जानते एकतुल्य, बिन्दुतुल्य लगते हैं। अरे! इसे चैतन्य के धन का और चैतन्यलक्ष्मी का माहात्म्य नहीं...

श्रोता : थोड़ा जाने वहाँ सिर दुःखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो सिर हल्का हो जाए या दुखे। ए... राजमलजी! अरे..! भगवान! यह सिर तो जड़, मिट्टी, धूल है। इसमें कहाँ जानना था? और विकल्प उठता है, वह आस्रव है, उसमें ज्ञान है? आस्रव में ज्ञान है? ज्ञान तो आत्मा में है। उस ज्ञान की ताकत इसकी एक समय की पर्याय सम्पूर्ण ज्ञेय को जानने की शक्ति से भी अनन्तगुणी शक्ति है। यह जो कुछ बात है...! तीन काल, तीन लोक, पूरा अलोक, उसे भी जाने, उससे भी ज्ञान की एक समय की पर्याय उससे अनन्तगुणी शक्ति को जानने की ताकत है। ऐसी पर्याय की अनन्त शक्तियाँ, अनन्त पर्यायें आत्मा के एक ज्ञानगुण में पड़ी है। एक ज्ञानगुण में! ऐसे गुण का धारक भगवान! उसे दृष्टि में लेने पर इस आस्रव की रुचि छूट जाती है। इसके बिना किसी प्रकार से आस्रव की रुचि नहीं छूटती। ज्ञानगुण की महत्ता भासित हुए बिना आस्रव की महत्ता दृष्टि में से नहीं टूटती। समझ में आया? हमने ऐसे परिणाम किये और हमने ऐसे परिणाम किये। जहाँ-तहाँ अभिमान फूंकता है! धूल में भी नहीं। सुन न अब! शुभाशुभ परिणाम तो तुच्छ बन्ध का कारण साधारण है। भगवान अबन्धस्वभावी है। जिसका एक ज्ञानगुण अबन्धस्वरूपी, उसका वह ज्ञानगुण अबन्धस्वरूपी है। एक गुण की एक समय की पर्याय में सर्व ज्ञेय हुए, होते हैं और होंगे। भगवान के ज्ञान में सब नोंध आ गयी है। उनकी समझ में कुछ बाकी नहीं है। बराबर होगा?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चोपड़ा रखा है अनन्त। तो फिर ऐसा कि सूची करके रखना थी दूसरे के पास। सुन न अब। ऐसे ज्ञान का जिसे माहात्म्य होता है, उसे अन्तर में दृष्टि जाने पर सम्यक्त्व होता है, उसने भगवान को माना और उसे अनन्त संसार नहीं होता।

भगवान को मानता नहीं, केवली को मानता नहीं और कहे कि हमें ऐसे होता है, हमारे ऐसे हो गया और हमारे भगवान ने हमारा सब देखा है। अरे! तीन काल, तीन... (लोक) देखा, सुन न। एक-एक समय की तेरी पर्याय शुद्ध या अशुद्ध जिस समय में जिस प्रकार से होनेवाली है, उस प्रकार से भगवान ने ज्ञान में एक समय में केवल (ज्ञान) हुआ तब से देखा है।

श्रोता : भगवान कब से होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से हैं या नये होंगे केवली? अनादि से केवली हैं? और एक व्यक्ति ने ऐसा तर्क किया न कि सिद्ध अनादि से नहीं होते! अपने ईश्वर अनादि नहीं होते! वे अन्य ईश्वर। अरे! ईश्वर सिद्ध अनादि के अनन्त हैं। अब सुन न! अनादि के अनन्त सिद्ध-केवली परमात्मा अनादि के हैं। पहला संसार और फिर सिद्ध, ऐसा था कब? यह तो एक व्यक्ति आदि के समक्ष पूछना पड़े या व्यक्ति की बात हो। समझ में आया? उस स्वभाव की बातें उसे नहीं बैठें, तब तक उसे विकार का प्रेम और रुचि नहीं छूटती। पर का प्रेम नहीं छूटता और स्व का प्रेम नहीं आता। ऐसा कर देंगे या तो कोई तार देगा, देव तार देंगे, गुरु तिरा देंगे। गुलाम भिखारी है अनादि का? इसलिए (ऐसा मौन है कि) यह तार देंगे। सम्मेदशिखर तार देगा।

श्रोता : परन्तु शास्त्र में आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार की भाषा आती है, आता नहीं? गुरु बिना ज्ञान नहीं और गुरु से ज्ञान नहीं! सुनते समय, समझते समय ऐसा एक होता है परन्तु उसके लक्ष्य से आत्मा का ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वह ज्ञेय में जाता है। देव-शास्त्र-गुरु... लोकालोक षट्द्रव्य में से कौन बाकी रह गया? उन सब ज्ञेयों को जानने की ताकत एक श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय में है। इससे अनन्तगुनी पर्याय की ताकत सर्वज्ञ में है। उससे अनन्तगुनी जानने की ताकत पर्याय में अभी बाकी रह गयी है। आहाहा! अब ज्ञेय बाकी नहीं तो भी? दृष्टान्त दिया है न, परमात्मप्रकाश में? मण्डप है, मण्डप। बेल, ऊपर बेल डालते हैं न? यह बाँस का मण्डप बनाते हैं न? वह बेल जहाँ तक बाँस का कोना हो, वहाँ तक बेल जाती है, फिर ऐसे वापिस मुड़ती

है परन्तु उसमें कहीं आगे जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। वापस ऐसे घूमती है और ऊपर-ऊपर मण्डप में पड़ती है न यह बेलड़ियाँ? इसी प्रकार लोकालोक का मण्डप और तीन काल का मण्डप ज्ञान ने जाना परन्तु फिर भी उसमें उतनी ही ताकत हैए ऐसा नहीं है। क्या विवाद है?

श्रोता : अटक गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अटक कब गया था?

ज्ञान सबको जानता है। अनादि को अनादि; आदि को आदि; अनन्त को अनन्त; क्षेत्र के अनन्त को अनन्त; काल को अनन्त में अनन्त। अनन्त को जाना, इसलिए वहाँ अन्त आ गया? क्षेत्र अनन्त है, (ऐसा) यहाँ ज्ञान आया, इसलिए वहाँ अन्त आ गया? जैसे अनन्त है, द्रव्य अनन्त है, क्षेत्र अनन्त है, काल अनन्त है, उससे अनन्तगुने भाव अनन्त हैं। समझ में आया? अनन्तगुने गुण / भाव हैं। अपने गुणों की संख्या अनन्तगुनी है।

यहाँ और ऐसा आया कि एक आकाशादि सब और फिर यह जो द्रव्यादि हैं और एक-एक द्रव्य में वापिस अनन्तगुने गुण हैं, वे अनन्तगुने गुण आकाश से अनन्तगुणे हैं। ऐसे सब गुणों को ज्ञेय कहा जाता है। उन्हें ज्ञेय कहा जाता है या नहीं? उस ज्ञेय को ज्ञान की पर्याय जानती है तो भी अनन्तगुणी शक्ति रह जाती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वे दो शब्द आये न '**विसरैः**' '**स्फारस्फारैः**' आहाहा! भगवान! तेरा पार क्या? बापू! तू क्षेत्र से मत देख। समझ में आया? क्षेत्र से मत देख। प्याज या लहसुन हो। (गुजराती में) डुंगली कहते हैं न? क्या कहते हैं? प्याज। प्याज में कितने जीव हैं? इतने जीव हैं कि अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे, परन्तु ऐसे क्षेत्र में यह दृष्टान्त मुट्ठी में आ जाता है।

प्याज। प्याज का टुकड़ा, प्याज का टुकड़ा या लहसुन की कटकी, कटकी समझे? टुकड़ा। परन्तु वह तो क्षेत्र में तुझे ऐसा लगता है परन्तु उसका एक-एक शरीर जो निगोद का है, उसके इतने अनन्त जीव हैं कि सिद्ध की अपेक्षा अनन्तगुने। इस प्रकार क्षेत्र में वह माप लिया, इसलिए भाव का माप उसमें आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बात समझ में आयी? परन्तु कितने हैं, यह खबर है संख्या से? ऐसे तो इसे

आ गया, यह तो क्षेत्र छोटा हुआ परन्तु इसका भाव? कि जो यहाँ आकाश के इस क्षेत्र के जो असंख्य प्रदेश हैं, वे असंख्य प्रदेश हैं इतने में तो? इसमें। इन असंख्य प्रदेश में जो अनन्त जीव रहे हैं, वे अनन्त जीव जो हैं, उनमें एक-एक जीव के जो गुण हैं, वे आकाश तो असंख्य प्रदेश में ऐसे रहे परन्तु अनन्त आकाश के प्रदेश से एक-एक जीव में अनन्तगुने गुण हैं। वे तेरे इस हाथ में नहीं आते, वे ज्ञान में आते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान उन्हें पकड़ता है। हाथ उन्हें क्या पकड़े? धूल।

आत्मा का स्वभाव वह चैतन्यरत्न कौन है और कितनी ताकतवाला है, यह बैठे बिना इसे आत्मज्ञान और आत्मदृष्टि नहीं होती। जहाँ-तहाँ रुक पड़ा, ऐसा है और माहात्म्य और यह धूल-धाणी। भगवान आत्मा...! सवेरे द्रव्य का आया था, यह और अभी यह आया। आहाहा!

श्रोता : अलग प्रकार की पाठशाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठशाला, यह आत्मा की जाति की पाठशाला है। अलग जाति की नहीं। दुनिया से अलग परन्तु इस आत्मा की पाठशाला है। भगवान के ज्ञान से भिन्न जाति की नहीं; दुनिया के अज्ञान से भिन्न जाति की है। आहाहा! एक समय का और उसे यही अभी ऐसे एक केवलज्ञान, एक गुण जो आत्मा में ध्रुव है, एक ही ज्ञानगुण, हों! ऐसे तो अनन्त-अनन्त गुण कि जो आकाश के प्रदेश से भी, लोकाकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण हैं, उनका एक गुण, उसकी एक पर्याय में ज्ञेयों को जानने की शक्ति से अनन्तगुणी शक्ति है। ऐसी पर्याय का सागर / समुद्र... यह शब्द इसमें है, भाई! हों! इसमें जरा देखा था न! वह क्या कहा यह? ज्ञान शब्द है, देखो! भाई आज नहीं आये। देखो! यहाँ है।

'**विसरैः**' का अर्थ... प्रयोग किया है। '**स्फारस्फारैः**'... '**स्फारस्फारैः**'... '**आकाशात्**' आकाश से भी जिसके ज्ञानगुण का विस्तार अनन्तगुणा है।... ज्ञान की शक्तिरूपी समुद्र यह भगवान है। ज्ञान की शक्तिरूपी अर्णव-समुद्र है।... बिन्दुवत् '**अल्पत्वात्**' एक शून्य पड़ा हो, पूरे लोकों में एक राई पड़ी हो, वह अभी बड़ी कहलाती है। यह तो पूरा अलोक। अलोक में लोक एक राई जितना। अलोक आकाश

में चौदह ब्रह्माण्ड एक राई जितना। राई समझे ? छोटी-छोटी... आहाहा! खाली भाग में अनन्तगुने में एक राई जितना चौदह ब्रह्माण्ड। यह चौदह ब्रह्माण्ड और आकाश इस ज्ञान में एक राई जितना। शान्तिभाई! आहाहा!

अरे..! भगवान! जिसका स्वभाव, उसे हद क्या? जिसका स्वरूप ज्ञान, उसे मर्यादा क्या..? मर्यादारहित की चीज़ को भी राग बिना जाने।... मर्यादित चीज़ को भी राग बिना जाने, ऐसी इसकी ताकत है। एक समय की ताकत उसकी यहाँ बात की है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त, देखो! ....एक ओर .... अर्थात् एक ओर ... इन सबके अविभागप्रतिच्छेद एक-एक पर्याय के तीन काल-तीन लोक की। एक-एक पर्याय के अनन्त अविभागप्रतिच्छेद कषाय के, ज्ञान के इस ज्ञान की पर्याय के, केवलज्ञान के ये सब पर्यायें एक केवलज्ञान की पर्याय में अनन्तवें भाग आ जाती है। अरे भाई! समझ में आया?

यह वस्तु जो स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... उसे क्या हद? आकाश का एक प्रदेश इतनी ताकत रखता है कि यह पूरा लोक यदि सूक्ष्म परिणमन में आ जाए तो एक प्रदेश में समाहित हो जाए। एक आकाश का प्रदेश अवगाहना का ऐसा स्वभाव रखता है, अजीव अवगाहन-स्वभाव। चौदह ब्रह्माण्ड है, वह यदि सूक्ष्म परिणमन कर जाए तो एक प्रदेश में समाहित हो जाए, इतनी ताकत है। यह मेरुपर्वत जैसे अनन्त मेरु हों, परन्तु यदि सूक्ष्म परिणमन कर जाए तो आकाश में एक प्रदेश में समाहित हो जाएँ, इतनी ताकत प्रदेश में है। इतनी ताकत वह धर्मास्ति के एक प्रदेश में है कि जितने सूक्ष्म अनन्त उसके पास हों तो अनन्त को निमित्तरूप हो, ऐसी ताकत एक प्रदेश में है। ऐसे एक अधर्मास्ति के प्रदेश में स्थिर होने का निमित्त है। पूरे लोकालोक के प्रदेश सूक्ष्म होवे तो।

इसी प्रकार एक आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश... काल। एक काल में परिणमन की इतनी ताकत एक द्रव्य में है कि अनन्त द्रव्य सूक्ष्म होकर एक आकाश के प्रदेश में आ जाएँ तो सबको परिणमन में निमित्त हो, इतनी उसमें ताकत है। यह स्वभाव का वर्णन चलता है। एक-एक प्रदेश का ऐसा स्वभाव। ऐसे भगवान आत्मा के ज्ञान में एक समय की पर्याय का स्वभाव है।

वस्तु ही ऐसी है। परमाणु में ऐसी ताकत एक समय में। अनन्त गुण दूसरे की

सहायता बिना अर्थात् प्रेरक बिना एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चला जाए। सातवीं नरक में हो वह परमाणु अपने एक समय के गति के स्वभावरूप से पहले समय में भले स्थिर था, दूसरे समय में गति की, कारण कौन? कारण क्या? वह कालकरण अर्थात् निमित्त काल। परन्तु अपना स्वभाव ऐसा है कि चौदह ब्रह्माण्ड चला जाए। प्रदेश-असंख्य चौबीसी के जितने आकाश के प्रदेश (हैं उन्हें) उल्लंघकर एक समय में चला जाए। जड़ का ऐसा स्वभाव है। समझ में आया इसमें? बात स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... क्या स्वभाव है, इसकी खबर नहीं और इस स्वभाव का माहात्म्य आये बिना इस विभाव का माहात्म्य मिटता नहीं। यह आस्रव है न, इसलिए आचार्य ने अन्तिम गाथा में यह अधिकार लिया है। ओहोहो! भगवान! तेरी पर्याय का कितना माहात्म्य? भाई! उसे तू अधिक रूप मान? या विकार को अधिक रूप मान? समझ में आया?

कहते हैं, पुद्गल ले लिया। पूरण-गलन। दूसरे प्रकार से लो तो एक परमाणु में एक समय में एक स्पर्श नाम का गुण, चिकना एक गुण हो, वह दूसरे समय में अनन्तगुणा हो जाता है।

यह तो एक की बात ली है न! चिकना हो, उसका अनन्तगुणा हो जाता है। कारण क्या? कारण क्या? ऐसे अनन्त गुण में से जो गुण है, एक गुण ऐसे काला हो, एक परमाणु एक गुण एक अंश पर्याय में काला हो, हों! वह दूसरे समय में अनन्तगुणा हो जाए। कारण क्या? कारण क्या? स्वभाव है कारण। समझ में आया? तथापि ऐसा कहो कि सब परमाणु एक साथ रहते (हों), तथापि एक को वर्तमान चिकनाई का एक गुण से अनन्तगुणा हुआ। दूसरे परमाणु का एक रूक्ष गुण का अनन्तगुणा हुआ। साथ में रहे हुए काल तक आया। यदि द्रव्य-गुण कारण कहो तो द्रव्य-गुण तो सबके समान हैं। द्रव्य-गुण कारण कहो तो द्रव्य-गुण तो सबके समान हैं। काल कहो तो निमित्त तो सबको काल है। क्या कहेंगे इसमें? बात समझ में आती है कुछ? एक रजकण, अनन्त रजकण वर्तमान... वर्तमान है। सब वर्तमान-वर्तमान है न, परिणमन तो सबका? उसमें अनन्त परमाणु का यह एक वर्तमान परमाणु अभी हरे रंगरूप एक गुणरूप से परिणमित है और दूसरा परमाणु अभी कालेरूप परिणमित हैं। इसका कारण क्या? कि द्रव्य। तो द्रव्य तो सबका समान है। गुण? तो गुण भी समान है। काल? तो काल निमित्त समान

है। बापू! उस पर्याय का ऐसा धर्म है कि एक गुण का काला अनन्त गुण दूसरे समय की पर्याय में हो जाएँ, ऐसा उसका पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? यह भी जाना किसने यह सब? यह भगवान ज्ञान में यह सब पर्याय में आत्मा ने सब जीव की ऐसी ताकत, ऐसा स्वभाव, जिसका माप जड़ को नहीं आता। उसका माप उसे नहीं खबर। है उसे खबर? परमाणु में ऐसा होता है और ऐसा होता है तथा एक गुण का अनन्तगुणा हो जाता है। और अनन्तगुणा काला हो, वह दूसरे समय में अनन्तगुणा सफेद हो जाता है। यह क्या?

हमारी चर्चा बहुत चलती थी। एक व्यक्ति (कहे) यह तो परमाणु पलट गया। द्रव्य दूसरा हो गया। कहा, (ऐसा) नहीं होता, सुनो तो सही। वे तो ऐसा मानते थे कि जिस समय में जिस परमाणु का काला एक गुण, वह एक गुण ही रहता है। अनन्तगुणा होवे तो अनन्त गुण रहते हैं। नहीं तो परमाणु पलट जाता है। अरे... भाई! तुझे पर्यायधर्म की खबर नहीं। मूलचन्दजी के साथ बड़ी चर्चा चलती थी। यह तो चालीस वर्ष पहले की बात है, हों!

ऐसा कहते हैं, यह अनन्त परमाणु हैं। वह परमाणु जो काले रंगवाला है, वह हरा यदि हो जाए तो द्रव्य पलट जाए। अरे भाई! वह पर्याय का धर्म है। काला एक समय में दूसरे समय अनन्त गुणा हरा हो जाता है। रंग गुण है, वह गुण है। रंग की पर्याय गुलांट खाती है। गुलांट अर्थात् परिणमित होती है। एक समय में काला पलटकर हरा (हो जाए)। (उसका) कारण कौन? एक दूसरा परमाणु है एक गुण हरा है और दूसरे समय में दो गुण होता है। यह अनन्त गुण होता है। कारण कौन? उसका पर्याय धर्म है। यह तो परमाणु के पर्याय की ताकत इतनी है। तो भगवान! उसकी ताकत का माप करनेवाला तो तेरा ज्ञान है। उसे तो खबर भी नहीं। समझ में आया? यह तो एक वर्ण का दृष्टान्त दिया। (इसी प्रकार) गन्ध का, रस का, स्पर्श का सब में ले लेना।

यह वस्तु ही कोई ऐसी है। द्रव्य **स्वभाव,** गुण **स्वभाव,** पर्याय **स्वभाव। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव...** निर्विकल्परूप से निर्णय हो, ऐसा इसका स्वभाव है। अपना ज्ञान हो कि सब इस प्रकार से है। ऐसा इस राग के अवलम्बन बिना ज्ञान की सामर्थ्य से निर्णय करे, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसके घर

की खबर (हो)। इस घर की चार दिशा बाँधी हो, उसकी खबर हो। पूरब में यह रहेगा, पश्चिम में यह रहेगा, चार दिशा बाँधते हैं न, न्यालभाई! यह मकान बेचते हैं तब?

चतुर्सीमा। ऐसा कहते हैं। यह घर अस्तिवाला है, ऐसा कहते हैं। लखितंग मफतलाल के अध्धर का मकान, ऐसा नहीं। यह मकान यहाँ है। उसकी चार और दिशा है, वह अस्ति है और देनेवाला मफतलाल नहीं परन्तु उसका धनी है। उसका धनी कि भाई! अमुक ने इसे दिया। इसी प्रकार ये जगत के तत्त्व मुफ्त नहीं है, अध्धर के नहीं हैं, सब सत्स्वरूप से हैं और उनका जाननेवाला भगवान सर्वज्ञ एक समय की पर्यायवाला धनी जाननेवाला है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अन्तिम यह रखा है न! कि आस्रवरहित हो अथवा आस्रवदृष्टिरहित हो तो उसका ज्ञान इतना प्रगट होता है। आस्रव के विकल्प में अटका हुआ ज्ञान हीन हो गया है और जहाँ पुण्य-पाप का प्रेम तथा रुचि छूटकर भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति प्रभु ध्रुव की शक्ति होने पर, ध्रुव की शक्ति की प्रतीति होने पर उसे पुण्य-पाप का प्रेम अन्दर से उड़ जाता है। भले हो, भले परन्तु रुचि उड़ जाती है और ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि होने पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आचरण और अंश उस आनन्द के साथ वह ज्ञान प्रगट होता है। उस ज्ञान की पर्याय में इतनी ताकत! ऐसी एक श्रद्धा की पर्याय में इतनी ताकत! ऐसी शान्ति अर्थात् चारित्र की पर्याय की इतनी ताकत! इतने आनन्द की पर्याय की इतनी ताकत! इतनी स्वच्छता, विभुता, प्रभुता एक-एक पर्याय में इतनी अनन्त गुणी ताकत है!! समझ में आया?

वस्तु तो सामने आवे, तब (बात आवे)। सवेरे द्रव्य आया, पर्याय ऊपर द्रव्य, ऐसा आया। यहाँ कहते हैं, बापू! तेरी एक समय की पर्याय, प्रभु! क्या कहें? क्या कहें? कहते हैं। कितनी भाषा में आवे! पश्चात्... **'विसराः' 'स्फर' 'स्फार'** अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को बताने के लिये ये शब्द इतने कहे हैं। कहते हैं, भगवान! अरे! तेरे तत्त्व की तुझे रुचि नहीं हुई। वह रुचा नहीं और ऐसा सुहाता नहीं। उसे हीन होना सुहाता है। पुण्यवाला, पापवाला, आस्रववाला, आस्रववाला तो अच्छा। ऐ.. यह गाली है। आस्रववाला आत्मा, यह तो गाली है। अनन्त गुणवाला आत्मा, आस्रववाला नहीं। यह गुण है इसमें; उसमें गाली है। समझ में आया?

श्रोता : पुण्यशाली कहे, वहाँ प्रसन्न हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रसन्न हो जाए। पुण्यशाली कहे, वहाँ प्रसन्न हो जाए। गाली दी है। अर..र..! विकारवाला आत्मा, विकार का स्वामी आत्मा। अरे! प्रभु! शर्म नहीं आती तुझे? ऐसे पवित्र धर्म का स्वामी भगवान! उसे विकारवाला कहना! आहाहा! दृष्टि का कलंक है। समझ में आया? क्या होगा? यह तो कहीं भगवान का मार्ग कोई अलग कहीं अध्धर से आता होगा? आहाहा! अन्याय.. अन्याय.. सुहाता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसमें एक कथा आयी है, कथा। क्या कहलाता है यह? इंग्लिश में। किसी राजा ने। राजा के दीवान ने गुनाह किया। साहूकार माल लेकर आया था, उसमें स्वयं राज के कुँवर ने लूट लिया। राजा के पास फरियाद आयी। बड़ा राजा, बड़ा योगी, योगराज नाम का कोई राजा होगा। फरियाद आयी। अन्नदाता! आपके कुँवर ने यह किया है। ओहो..! राजा कहता है, अहो! राजा का कुँवर जब प्रजा को लूटेगा, राजपने को कलंक लगेगा। यह राज को शोभा नहीं देगा। तो क्या करना? मन्त्रीजी! मन्त्रीजी कहते हैं, इसमें क्या करना? मेरा विचार तो ऐसा है कि उस कुँवर को दण्ड देना। साहेब! वह राज का मालिक है। राज का मालिक, भविष्य का स्वामी है, उसे दण्ड? दूसरा अन्याय हमारे राज में नहीं हो सकता। दण्ड ही देना पड़ेगा। क्या दण्ड? दण्ड तो मृत्यु का ही होगा। ऐसा! हम राजा, हम सबके पिता, हमारी प्रजा पुत्र। हमारे पुत्र की वह पुत्र? यह लूटे, वह तो पुत्र के पुत्र सब लूटेरे हुए हैं। नहीं, अन्याय सहन नहीं होगा। राजा हुकम करता है-मृत्युदण्ड! प्रजा की पुकार आती है। पुकार... पुकार... अरे! महाजन लोगों! यह राज की शोभा नहीं रहेगी, हों! राज की शोभा तो वह पुत्र हो या प्रजा हो, जो जिसे गुनाह, उसके प्रमाण में दण्ड भोगना पड़ेगा।

मुझे तो ऐसा लगता है कि उस पुत्र का दण्ड उसे मृत्यु का वह भी अब नहीं। अब तो मेरी देह की ही मृत्यु करना पड़ेगी। दूसरा... आहाहा! अरे! राज की नीति में यह होगा? अरे! राज की शोभा में यह होगा? यह प्रजा का, वह मेरा पुत्र, वह प्रजा भी पुत्र है और यह भी पुत्र है। मेरा हृदय अन्याय सहन नहीं कर सकता। तब वह भले भावी का (राजा) होवे तो उसके लिये मैं देता हूँ। यह चन्दन की चिता इकट्ठी की। यह

क्या कहते हैं ? चिता। सवेरे जहाँ बैठता है और ऐसे प्रजा देखती है, प्रजा रोती है। करोड़ों प्रजा रोती है। अन्नदाता! यह हमसे सहन नहीं होता। राज का अन्याय मुझसे सहन नहीं होता। राज का अन्याय! यह स्थिति ? आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ सर्वज्ञ भगवान को अन्याय मिले ? एक समय की पर्याय तीन काल तीन लोक को निश्चितरूप से जाने। ऐसे सर्वज्ञ की पर्याय को ऐसा कहे कि भविष्य में होगा, तब जाने अथवा अनिश्चित जाने, वह अन्याय ज्ञान में सहन नहीं होगा। समझ में आया ? पढ़ते हुए... आहाहा! सर्वज्ञ के राज जहाँ पड़े हैं, एक समय का तीन काल-तीन लोक का बादशाह केवली प्रभु! जिनकी ज्ञान की पर्याय में यह अनन्त कम पड़ता है। जिनकी ज्ञान की पर्याय में अनन्त कम पड़ता है, आहाहा! ऐसे केवलज्ञान का साम्राज्य, उसके लिये कहते हैं कि ऐसा नहीं, होगा तब जानेंगे। भविष्य का अनिश्चित और निश्चित को जाने। भगवान! अनिश्चित कहना किसे ? आहाहा!

अरे! ज्ञान ने तीन काल तीन लोक समय-समय की स्थिति, जहाँ जैसी है, वैसी उसे ज्ञान ने जानी है। इससे अनन्तगुनी ताकत रह गयी है। ऐसे ज्ञान को ऐसा अन्याय दे, वह दृष्टि में सहन नहीं होता। राज लुटेगा, इस प्रकार से तो जैनधर्म में धर्म नहीं रहेगा। राजमलजी! आहाहा!

श्रोता : प्रभु! जय पुकारता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुकार... पुकार...। यह आत्मा ऐसा है, उसे तुम इतना करते हो ? प्रभु! यह नहीं शोभा देता। वीतरागमार्ग के अन्दर दूसरा नहीं हो सकता। समझ में आया ? एक समय का भगवान आत्मा केवल (ज्ञान) की पर्याय में तीन काल-तीन लोक को जहाँ, जिस प्रकार से उस प्रकार से उसे उस तरह जानता है। उसमें जाना, इसलिए पराधीन नहीं और जाना, इसलिए वहाँ होता है, ऐसा (नहीं), उसके कारण से वह होता है। ऐसी अनादि वस्तु को भगवान ने स्वभाव देखा है, इससे भी अनन्त गुणा बाकी रहा। ऐसी पर्याय की ताकत रखनेवाला ध्रुव, ऐसे अनन्त ध्रुव की ताकत रखनेवाला द्रव्य, उसे अन्याय नहीं हो सकता। राग नहीं चलता, वीतरागमार्ग दूसरे प्रकार से नहीं चलता। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, भाई! प्रभु! तेरी पर्याय की प्रभुता को कम न कह, कम न कर। उस कम न कर। कम न कह, कम न मान। आहाहा! और तेरी कम मानने से उस पूर्ण भगवान को तू नहीं मान सकेगा। पूर्ण परमात्मा सर्वज्ञ अनन्त सिद्धरूप से विद्यमान हैं। लाखों केवली, अनेक तीर्थंकर साक्षात् महाविदेहक्षेत्र में विराजमान, जिनका-सर्वज्ञ का शासन है। समझ में आया? ऐसी एक समय की पर्याय सब जानने की ताकत रखती है, तथापि उससे अनन्तगुनी शक्ति है। यह उस पर (बात) अभी तो चलती है। आहाहा! समस्त ज्ञेय हैं। ज्ञान की अनन्तगुनी शक्ति है। समझ में आया? शान्तिभाई! आहाहा!

ऐसा आत्मा! **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** देखो! अन्तिम ले लिया, भाई! आहाहा! **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** उस स्वभाव की बात यहाँ करते हैं। वस्तु का ऐसा स्वभाव है, भाई! उसमें तेरा ज्ञातापना, दृष्टापना प्रगट होता है, इस पन्थ से तुझे केवलज्ञान होगा, दूसरे प्रकार से नहीं होगा। समझ में आया? देखो! तीन बोल में अन्तिम सार यह लिया वापस। आहाहा! उसका ज्ञानस्वरूप ही है, प्रभु! अकेला। जिसका ज्ञ-स्वभाव, उसकी पर्याय की ताकत कि तीन काल-तीन लोक की पर्याय की व्यवस्था जिस प्रकार से है, उसे जाने, ऐसी उसकी अवस्था है। इससे अनन्तगुनी ताकत पर्याय में रह जाती है, तो उससे अनन्तगुनी एक-एक अनन्त पर्यायें उस गुण में पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण का रूप, वह भगवान द्रव्य है। ऐसे द्रव्य के स्वभाव का भान करने पर उसे आस्रव की रुचि नहीं रहती। समझ में आया?

यह व्यवहाररत्नत्रय भी विकल्प और बन्ध का कारण है। अबन्धस्वभावी द्रव्य-गुण की दृष्टि होने पर अबन्धपरिणाम प्रगट हुए। अबन्धपरिणाम! मोक्षमार्ग कहो या अबन्धपरिणाम कहो। सम्यग्दर्शन वह अबन्धपरिणाम है। द्रव्य त्रिकाल, उसके अनन्त गुण त्रिकाल, उसकी प्रतीति करने पर परिणाम अबन्धपरिणाम प्रगट हुए। इन बन्ध के परिणाम का नाश करने के लिये प्रगट हुए हैं। समझ में आया? उसे आस्रवरहित सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। ओहोहो! **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** पण्डितजी इसका अर्थ करते थे न...! ऐसे के ऐसे अनन्त... अनन्त... बात सत्य। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... इसका विस्तार का...

श्रोता : दर्पण में जैसे महावीर भगवान दिखते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान दर्पण में दिखायी दें, उसमें पार नहीं। दर्पण में दिखायी दे न? वहाँ पार होगा अन्तिम? यह तो इसका लक्ष्य पहुँच नहीं सकता, वह तो अपार... अपार... अपार... है। तथापि ज्ञान में आवे कि इसमें अपार है। समझ में आया? ऐसे आकाश का पार नहीं, वह ज्ञान में आ सकता है कि अपार है। ऐसे एक-एक जीव के, एक-एक परमाणु के अनन्त गुण ख्याल में आवें, ऐसा वह ताकतवाला भगवान आत्मा है। समझ में आया? **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** आहाहा! अरे! इसने आत्मा कभी सुना नहीं, हों! आत्मा पढ़ा नहीं, आत्मा सुना नहीं। आता है न? भाई! उसमें बहुत बोल योगसार में आते हैं। ग्यारह या तेरह बोल आते हैं। आत्मा सुनना, आत्मा परिचय करना, आत्मा को पूछना, यह करना - ऐसे बोल आते हैं। योगसार अमितगति आचार्य (कृत) है न? बहुत सरस योगसार है। वास्तव में समयसार की शैली है।

द्रव्य का स्वभाव। भगवान! यह धर्मकथा चलती है। समझ में आया? धर्म अर्थात् स्वभाव। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... भगवान आत्मा। आठ वर्ष की बालिका / लड़की हो, वह भी ऐसे स्वभाव की दृष्टि करती है, सम्यग्दर्शन और आत्मा का साक्षात्कार करती है। आहाहा! उसकी ताकत है या नहीं? शरीर भले स्त्री का हो या देह हो, वह तो जड़ में रही। उसमें आत्मा को क्या है? समझ में आया? आत्मा है न! उसे हीन न देख, हों! वह तू हीन तुझे देखेगा तो सब तुझे हीन देखेंगे, सब पूरे भगवान हैं। वह भगवान उसका वह सब पूरा है। तू भी पूरा और वह भी पूरा, ऐसी दृष्टि किये बिना आस्रव की रुचि छूटेगी नहीं।

और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'आलोकान्तात् अचलं' 'आलोकान्तात् अचलं' सकल कर्मों का क्षय होने पर जैसा उत्पन्न हुआ, वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा... यह पर्याय ऐसी की ऐसी रहेगी। आहाहा! यह तो ऐसा भगवान! जैसे चमकता रत्न हो, वैसा का वैसा चैतन्यरत्न पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त (रहेगी)। समझ में आया?

और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'आलोकान्तात् अचलं'.. अर्थात् **सकल कर्मों का**

क्षय होने पर जैसा उत्पन्न हुआ, वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा, कभी और-सा नहीं होगा। वस्तु का स्वभाव ही जहाँ पुण्य-पाप के आस्रवरहित होकर दृष्टि की और उसमें स्थिर हुआ और जो पर्याय में अन्दर में से प्रगट हुई, वह ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त रहनेवाली है। जब से मुक्ति हुई, भले पर्याय वह न रहे, परन्तु वैसी की वैसी पर्याय अनन्त काल रहेगी। वह नहीं रहेगी क्योंकि परिणमन समय-समय का है न! जो पहले समय में मुक्तदशा प्रगट हुई, वह दशा पर्याय है, वह पर्याय दूसरे समय में नहीं रहेगी परन्तु वैसी की वैसी दूसरे (समय में), वैसी की वैसी तीसरे (समय में), ऐसे अनन्त काल रहा करेगी। उसमें कुछ हीनाधिकता फेरफार नहीं होगा। कहो, समझ में आया?

और-सा नहीं होगा। आहाहा! अनन्त काल पहले कोई केवली हुए होंगे, उनकी ज्ञान की पर्याय तो बड़ी होगी न? और अनन्त काल पश्चात् केवली होंगे, उनकी ज्ञान की पर्याय कुछ हीन नहीं होगी? बहुत काल अशुद्ध में रहा, अनन्त गुणे काल में अशुद्ध में रहा तो भी शुद्धता की पर्याय इतनी की इतनी? बापू! इतनी की इतनी। समझ में आया? सोना तो ऐसा का ऐसा है। लोहे का क्या लोहा? लोहा सड़ता होगा? भगवान आत्मा तो कहते हैं कि जैसी पर्याय जब से प्रगट हुई... **अनन्त कालपर्यन्त रहेगा, कभी और-सा नहीं होगा। और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'अतुलं' तीन लोक में जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है।** देखो! यहाँ लिखा। अब आनन्द साथ में डाला। ज्ञान और आनन्द दो की बात प्रधानता से की।

तीन लोक में जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है। इस ज्ञान के साथ जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, उसके सुख की जगत में कोई उपमा नहीं है। **ऐसा शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ।** इस प्रकार आस्रव की अन्तिम गाथा में महामांगलिक किया है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्ञान कल्याणक

(दिनांक 24-01-2024)

प्रवचन नं. १

आज केवलज्ञान के महोत्सव का दिन है अभी। इन्द्रों ने, भगवान को केवलज्ञान हुआ, इसलिए स्तुति की। यह तो एक उस प्रकार का सम्बन्ध बताते हैं। कहीं स्तुति करे, इसलिए उपदेश निकले, ऐसा है नहीं, परन्तु भगवान को केवलज्ञान हो तो दिव्यध्वनि खिरे बिना रहती नहीं। दिव्यध्वनि अर्थात् क्या? दिव्य अर्थात् प्रधान, उत्कृष्ट ध्वनि अर्थात् आवाज। सर्वोत्कृष्ट आत्मतत्त्व को बतलानेवाली वाणी। वह सर्वज्ञ भगवान आत्मा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे तो वाणी तीर्थंकरदेव को खिरती है। उस उपदेश में ऐसा आया कि भगवान ने केवलज्ञान द्वारा जो जाना, उसका उपदेश वाणी द्वारा आया। उस दिव्यध्वनि की बात बहुत बार हुई है कि जब तक आत्मा में राग और द्वेष आदि भाव होते हैं, तब तक.... आत्मा में अत्यन्त ज्ञान अभेद अर्थात् अखण्ड स्वरूप हो जाता है तब... समझ में आया?

उस वाणी में भेदवाली वाणी कैसे आती है? कि आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड है, उसमें जितने अंश में राग और द्वेष में ज्ञान अटके, तब तक उसकी अभेद एकाक्षर वाणी सहज नहीं निकलती। इसलिए जब सर्वज्ञदशा आत्मा में होती है, अज्ञान टलकर राग-द्वेष पूर्ण जब टलते हैं, तब ज्ञान और वीतरागता पूर्ण होने के पश्चात् जो वाणी निकले, उसमें भेद नहीं होता। एक अखण्ड पूरे शरीर में से ॐ ऐसी ध्वनि एकाक्षरी अभेद निकलती है। उस वाणी में पूरे जगत के रहस्य पूरे एक-एक समय के अन्दर पूर्ण-पूर्ण उपदेश आता है। श्रवण करने की जिनकी जैसी योग्यता हो, उसे उतना समझ में आ जाता है। भगवान की वाणी में अल्प-अधूरा होता नहीं। क्योंकि वह तो आत्मा। विकल्प अर्थात् इच्छा और द्वेष बिना अकेला आत्मस्वभाव जहाँ परिपूर्णता को प्राप्त

हुआ है, ऐसी दशा में जो वाणी निकले, उस वाणी में कुछ अन्तर भेद आदि होता नहीं। वह तो परिपूर्ण भेद अर्थात् कि एक क्रमसर कहना, ऐसा भी उसमें होता नहीं। एक साथ पूर्ण उपदेश आता है।.... समझ में आया?

यह आत्मा के अन्दर में राग और द्वेष की इच्छा सर्वथा टूट गयी और सर्वथा स्वरूप अभेद अखण्ड हुआ। फिर वाणी में कम आवे, क्रम आवे, ऐसा नहीं हो सकता। पूर्ण एक साथ आता है। वे जीव उनकी योग्यता प्रमाण समझते हैं। उसमें मूल बात यथार्थ गणधरदेव उस वाणी को उत्कृष्टरूप से समझने के योग्य उस समय उपस्थित होते हैं। भगवान की वाणी निकले और गणधरदेव न हो, ऐसा कभी नहीं होता। उस वाणी को समझनेवाले उत्कृष्ट योग्यतावाले वे समझते हैं। अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग का ज्ञान उन्हें हो जाता है। दूसरे जीवों को उनके क्षयोपशम और योग्यता प्रमाण होता है। परन्तु उन्हें इतना क्षयोपशम होता है, है तो उन्हें क्षयोपशम की योग्यता प्रमाण, परन्तु उनकी योग्यता इतनी ऊँची सर्वोत्कृष्ट जो स्वभाव। उस स्वभाव में सर्वोत्कृष्ट यदि व्यक्ति हो तो गणधर है। उन्हें एक साथ इतना सब ख्याल में आ जाता है कि भगवान ने जो कहा, छह द्रव्य। भगवान ने केवलज्ञान में अनादि-अनन्त छह पदार्थ देखे हैं। उन छह पदार्थों के भेद करने से नौ तत्त्व होते हैं। एक जीव और पाँच जो अजीव हैं, वे अजीव तत्त्व में समाहित हो जाते हैं। उसका सब भेद करने से भगवान ने केवलज्ञान में बतलाया है कि जिसे आत्महित करना है, उसे हित करनेवाला जीव जो इस जगत में न हो तो हित करे कौन? और हित करनेवाला जीव वर्तमान दशा में उसकी मलिन अवस्था यदि न हो तो मलिन अहित को टालकर हित करने का रहता नहीं। इसलिए भगवान ने जीवतत्त्व है, ऐसा त्रिकाल सिद्ध किया है। उस जीवतत्त्व की अवस्था में मलिनता है। मलिनता है, वह मलिनता पुण्य, पाप और आस्रव और बन्ध, यह चार मलिनता के प्रकार पड़ते हैं। समझ में आया?

जीवद्रव्य है और ऐसा निर्णय करने का जब सूचित करते हैं, तब निर्णय करनेवाला कोई जीवद्रव्य जैसा है वैसा वह मानता नहीं, इसलिए उसकी वर्तमान दशा में मलिनता है, ऐसा सूचित होता है। और उस मलिनता के भगवान ने चार प्रकार करके विशेष समझाये हैं। एक दया, दान, भक्ति, वह पुण्यतत्त्व है। वह हिंसा, झूठ आदि पापतत्त्व है। ....उसे भान वर्तता हो तब तो उसे उपदेश करना, उसे सुनना, यह कुछ रहता नहीं।

इसलिए आत्मा है, ऐसा उपदेश करने से कोई अद्वैत अकेला आत्मा कहनेवाला है, उसकी बात भी यथार्थ है नहीं। इस जगत में अकेला पुद्गल ही है, ऐसा कहते हैं, उसकी बात भी यथार्थ नहीं। जो कोई आत्मा है, ऐसा कहकर उसकी अवस्था में मलिनता बिल्कुल ही नहीं, तथापि उसका अभिप्राय यथार्थ है नहीं। मलिनता टलकर आत्मा में निर्मल क्रम-क्रम से निर्मलता के अंश संवर और निर्जरा इतनी मलिनता का टलना, निर्मलता का आंशिक उत्पन्न होना और उस निर्मलता में उग्ररूप से विशुद्धता का बढ़ना, ऐसी यदि दशा न हो तो आगे आत्मा पूर्ण दशा को साधने के साधकरूप से रहता नहीं। इसलिए संवर और निर्जरा दो तत्त्व न माने, उसे एक भी तत्त्व सिद्ध नहीं होता और संवर-निर्जरा अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द, चिदानन्द शुद्धस्वरूप हूँ, उसका आश्रय करके बन्ध को अपना स्वरूप मानता था वह सम्यग्दर्शन के स्वरूप से मैं त्रिकाल चैतन्य हूँ, ऐसा मानने लगा, तब उसे संवर, निर्मलता दशा की उत्पत्ति हुई और उस निर्मल दशा में शुद्धि की वृद्धि होने लगे, उसे भगवान निर्जरा कहते हैं। उस पूर्ण शुद्धि की दशा को भगवान मोक्ष की दशा कहते हैं। यह नव तत्त्व जो यथार्थरूप से जैसे जगत के सद्भाव तथापि....

यह भगवान की दिव्यध्वनि में छह द्रव्य और नौ तत्त्व का स्वरूप आया। यदि वह छह द्रव्य और नौ तत्त्व भगवान ने कहे, इसलिए हैं, ऐसा नहीं। इस जगत में हैं, इसलिए जाने और जाने वैसे कहे। भगवान की ध्वनि में आया छहों पदार्थ स्वतन्त्र हैं। कोई पदार्थ किसी पदार्थ का कर्ता नहीं। अपने अधिकार भी यह चलता है। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का तीन काल, तीन लोक में कर सकता नहीं। वह पर का करने का जो अहंकार करे, वह अज्ञानभाव और मिथ्यात्वभाव से अपने स्वभाव की विराधना करता है। विराधना करे, उसे मिथ्यात्व और अज्ञान और अचारित्र कहा जाता है। ....शुद्ध हूँ, पर के एक रजकण की क्रिया मैं कर सकता नहीं। क्योंकि छह द्रव्य स्वतन्त्र हैं। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता नहीं। द्रव्य अर्थात् समझ में आता है ? द्रव्य अर्थात् पदार्थ, द्रव्य अर्थात् वस्तु, द्रव्य अर्थात् पदार्थ क्षण-क्षण में द्रवे-प्रवहे, परिणमता है, उसे द्रव्य कहा जाता है। वह द्रव्य स्वयं स्वतन्त्रता सिद्ध करता है कि प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने-अपने स्वभाव या विभाव में अपने ही कारण से द्रवता और परिणमता है। उसमें किसी का कोई करे और किसी का कोई बनावे और किसी का कोई तोड़े, यह

वस्तु के स्वभाव में है नहीं। ऐसा उपदेश भगवान की दिव्यध्वनि में गणधर और इन्द्रों आदि की स्तुति होने पर अथवा दूसरे मुनि आदि की अथवा साधारण जनता की स्तुति होने पर उन भगवान की वाणी में यह दिव्यध्वनि का उपदेश निकला, वह जगत के जैसे पदार्थ हैं, तत्प्रमाण ऐसा उपदेश निकला। उस पदार्थ में नौ यथार्थरूप से जो न समझे, उसे वास्तविक एक भी कल्याण साबित नहीं होता। क्योंकि जीव यदि न हो तो कल्याण करना किसका ? अजीव यदि न हो तो दूसरे की सत्ता में अपनी सत्ता मानता है, यह भूल हो नहीं। और यदि पुण्य-पाप का आस्रव और विकार यदि न हो तो विकार टालकर निर्विकारी पर्याय-अवस्था प्रगट करना, वह भी रहता नहीं और निर्विकारी पर्याय में परिणमन यदि न हो, बदलना न हो तो आगे बढ़कर साधकरूप से शान्ति और आत्मा की वीतरागता बढ़ाना रहता नहीं और पूर्ण वीतरागता में यदि परिणमन और बदलना न हो तो आत्मा पूर्ण होने के पश्चात् भी पूर्ण का उसे अनुभव रहता नहीं।

इसलिए भगवान कहते हैं कि एक-एक आत्मा परिपूर्ण प्रभु है। वह प्रत्येक आत्मा अपनी शक्ति से प्रभु है। परमाणु भी प्रभु है, आत्मा भी प्रभु है। क्यों प्रभु! प्रभु अर्थात् शक्ति सम्पन्न। वह परमाणु भी स्वतन्त्र शक्ति सम्पन्न है। वह कहीं आत्मा हो तो बदले, ऐसा वह पदार्थ है नहीं। वह भी एक-एक परमाणु स्वतन्त्र अनन्त शक्ति का भण्डार है और आत्मा को भी कुछ परमाणु की मदद मिले और शरीर की मदद मिले और दूसरे पदार्थ की सहायता हो तो कल्याण कर सके, ऐसा आत्मा है नहीं।

आत्मा प्रभु है। आत्मा अनन्त शक्ति का भण्डार है। आत्मा स्वाश्रय से अपना कल्याण कर सके, ऐसी सामर्थ्यवाला है। वह अपने को भूलकर जो पर का आश्रय करके स्वयं भूला है और पराधीन अपने कारण से हुआ है। उसे किसी ने पराधीन किया नहीं। किसी ने किया नहीं कि कर्म ने पराधीन किया है और शरीर ने किया है और काल ने किया है। यह तीन काल में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को पराधीन नहीं कर सकता। ऐसी प्ररूपणा भगवान की वाणी में स्वतन्त्रपने के दिव्यध्वनि में ढिंढोरा पिटा गया है और उसमें जो दिव्यध्वनि में आया, उसमें दुन्दुभि देव बजाते हैं। उस दुन्दुभि में देव ऐसा कहते हैं कि अरे, लोगों! तुम्हारा हित करना हो तो भगवान का उपदेश वाणी का सुनो। इसके अतिरिक्त कहीं हित है नहीं।

भगवान के समवसरण में साढ़े बारह करोड़ बाजा बजते हैं। उसमें यह उपदेश आता है कि .... उसे आत्मा का कल्याण करना हो, वह भगवान की दिव्यध्वनि सुनने आओ। यह दुन्दुभि का नगाड़ा ऐसा कहता है, ऐसा अलंकार इन्द्र उतारते हैं। वह दुन्दुभि तो अतिशय के कारण होती है, परन्तु इन्द्र कहते हैं, हे नाथी! तेरी दुन्दुभि बजती है, उसका अर्थ तो हम ऐसा करते हैं। जगत के जीवों को नगाड़ा पीटकर बोलते हैं, 'अरे! जीवों! हित करना हो तो भगवान की वाणी सुनो, कल्याण करना हो तो भगवान की दिव्यध्वनि को सुनो। इसके अतिरिक्त कल्याण तीन काल-तीन लोक में कहीं होनेवाला नहीं है। इन भगवान की ध्वनि में यह आया है।'

प्रत्येक वस्तु अनादि-अनन्त स्वतन्त्र है। सर्व वस्तु असहाय। असहाय। कोई किसी को सहायता करने में कोई समर्थ नहीं। यह भटके तो भी अपनी भूल से और भगवान को भूल मिटाकर परमात्मा हो तो भी अपनी स्वतन्त्रता से। परन्तु कोई किसी का कुछ कर सकने में समर्थ नहीं। यह अधिकार मौके से अपने कर्ता-कर्म का है, ऐसा अधिकार अभी भरतक्षेत्र में जैसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने भगवान की दिव्यध्वनि... कुन्दकुन्दाचार्य वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ जाकर, आठ दिन रहकर साक्षात् समवसरण में केवलज्ञान की ध्वनि आठ दिन वहाँ रहकर साक्षात् सुनकर स्वयं इस भरतक्षेत्र में संवत् ४९ के लगभग वर्ष में इस भरतक्षेत्र में यह रचना और यह बनाव बन गया है। यह वहाँ से दिव्यध्वनि सुनकर यहाँ आये और आकर समयसार आदि रचना की और कहते हैं कि भगवान ने ऐसा कहा हमको कि हम सिद्ध हैं, तुम सब सिद्ध हो। समझ में आया?

देखो, नौ तत्त्व और छह द्रव्य की तो सिद्धि की, परन्तु अब नौ तत्त्व अकेले नहीं। हम सिद्ध हैं, तुम सिद्ध हो। हम परमात्मा हैं, तुम भी परमात्मा हो। ऐसी पहले प्रस्तावना करते हैं। प्रस्थाना नहीं रखते, प्रस्थाना? भगवानभाई! किसी एक गाँव से दूसरे गाँव जाये तो प्रस्थाना रखते हैं न! पहली गाथा में यह कहा है।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुदकेवली-भणिदं॥१॥

हे जीवों! यह आत्मा चिदानन्द आनन्दकन्द सिद्ध समान शक्ति से है। ऐसा ही

तुम्हारा सबका आत्मा सिद्ध समान है। इस सिद्ध समान का हम प्रस्थाना रखते हैं। प्रस्थाना अर्थात् ? एक गाँव से दूसरे गाँव जाना हो तो दो-चार दिन की देरी हो तो निकट में प्रस्थाना रखते हैं और फिर दिन, वार-कवार हो तो दूसरे दिन लेकर जाते हैं। अभी पंचम काल जरा वार-कवार है, परन्तु पंचम काल में हम प्रस्थाना रखते हैं। पण्डितजी! यह वार-कवार में रखते हैं, आता है ? पंचम काल का विषय केवलज्ञान और मुक्तदशा प्राप्त करने की बराबर पूर्ण योग्यता नहीं, तथापि हम कहते हैं कि भगवान आत्मा सिद्ध समान है। समझ में आया ?

'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्धसमान सदा पद मेरो.. 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्धसमान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो। ज्ञानदशा मोकूं प्रगटी कहूं गुण नाटक आगम केरो, तासु प्रसाद सधै शिवमारग, वेग मिटै घट वास वसेरो।' बनारसीदास कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, 'चेतनरूप अनूप अमूरत' भगवान चैतन्य अनूप—उसे कोई उपमा दी जा सके, ऐसा जगत में आत्मा के लिये कोई पदार्थ नहीं है। 'चेतनरूप अनूप अमूरत' उसे कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो।' किसे कहते हैं ? देखो, यहाँ बनारसीदास अपने को कहते हैं।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि हम और तुम सब सिद्ध समान हैं। मात्र जो सिद्ध परमात्मा का जो वीतरागी केवलज्ञान, दर्शन चतुष्टय का स्वभाव और तेरे आत्मा की शक्ति के स्वभाव में किंचित् अन्तर नहीं है। यह श्रद्धा और ज्ञान की बात में, दृष्टि में अन्तर से यह शक्ति रुक गयी है। बाकी कुछ अन्तर है नहीं। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो।' त्रिकाल मेरा आत्मा का स्वभाव सिद्धसमान है। तब हुआ क्या ? सिद्धसमान हो तो यह हुआ क्या ? 'मोह महातम आतम अंग कियौ परसंग महातम घेरौ।' परन्तु मोह अर्थात् स्वरूप की असावधानी करके जीव ने अपने स्वभाव को अपने आप भूला है, जिससे मोह का स्वयं ने परसंग किया नहीं। उस संग के कारण स्वयं मोह महातम अर्थात् अज्ञानदशा में आ गया है। यह पर्याय में, अवस्था में अज्ञान है, उसके त्रिकाल स्वभाव में अज्ञान नहीं। समझ में आया ? यह 'ज्ञानदशा प्रगटी अब मोकूँ' मैं तो ज्ञान-चैतन्य हूँ। यह राग नहीं, विकार नहीं, शरीर नहीं, मेरा यह स्वरूप नहीं। 'ज्ञानदशा

प्रगटी अब मोकूँ, कहो गुण नाटक आगम केरो।' ऐसे चैतन्य के आगम को मैं कहूँगा। ऐसा बनारसीदास कहते हैं।

परन्तु भगवान समयसार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम सिद्ध के स्वरूप को कहेंगे। हम सिद्ध हैं, तू भी सिद्ध भगवान है। अब श्रवण करते-करते लक्ष्य रखना कि सिद्ध होंयेंगे... होंयेंगे... होंयेंगे। अपूर्ण और विकार नहीं, निमित्त के झुकाव में नहीं। सिद्ध हूँ... सिद्ध हूँ... सिद्ध हूँ... सिद्ध हूँ... ऐसे परिपूर्ण स्वभाव की ओर लक्ष्य करने से, श्रवण करते-करते जो अपूर्णता और सदोषता है, उसे टलकर पूर्णता और निर्दोषता प्रगट हो जायेगी, ऐसा कोल-करार से भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पहली गाथा में जो भगवान की दिव्यध्वनि में आया, वह कहा गया है। उस दिव्यध्वनि में ऐसा आया था, ऐसा नहीं आया था कि तू रंक है और पामर है और मर जायेगा, भटक जायेगा चौरासी में। एक... परमात्मा जैसा है। अज्ञान के कारण तूने परसंग का परिचय किया है। वह परसंग छोड़ और स्वसंग कर। स्वसंग कर। आत्मा ज्ञानानन्द अखण्ड परिपूर्ण शुद्ध हूँ, उसका परिचय करने से, वह परिचय करने से रुचि और श्रद्धा, ज्ञान स्थिर होने से तेरी शक्तिरूप जो सिद्ध समान दशा है, शक्तिरूप से, वह व्यक्त अर्थात् प्रगटरूप परमात्मदशा तेरी हो जायेगी। उसमें अन्तर पड़ेगा नहीं।

देखो, यह बात किसे जँचे? कि जिसे पात्र होकर ऐसा हुआ कि ओहोहो! यह हमारी बात करते हैं। भगवान ने दिव्यध्वनि में हमारी बात की है। यह आत्मा की मुक्ति की बात की, वह मुक्ति पाये केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य। अनन्त चतुष्टय को जो शक्तिरूप से थे, वह व्यक्तरूप से प्रगट किये हैं। वह प्रगट करने का उपदेश भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि सदा सिद्ध समान तू है। तुझमें और मुझमें कोई परमार्थ से अन्तर नहीं। किसे बैठे यह बात? वह यह पर्यायबुद्धि हो, उसे यह बात बैठती नहीं। इसलिए भगवान वहाँ द्रव्यबुद्धि कराना चाहते हैं कि त्रिकाल तेरे स्वभाव में विकार क्षणमात्र भी त्रिकाल में नहीं। वह विकार हो, वह वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था में एक समय जितना संसार है। वह संसार त्रिकाल स्वभाव में हो, ऐसा नहीं। एक समय मात्र का विकार और संसार, वह कहीं आत्मा का त्रिकाली पद नहीं। उस त्रिकाली पद को देखकर... को मान तो त्रिकाली दशा हुए बिना तेरी रहेगी नहीं। ऐसा

भगवान की दिव्यध्वनि के उपदेश में तो ऐसा आया कि मैं वीतराग हुआ, मैं सर्वज्ञ हुआ, वह पूर्व में मेरे पुरुषार्थ से जो वीतरागता मैंने प्राप्त की, ऐसा ही भगवान ने उपदेश किया।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥ ८०॥

जिसने अरिहन्त भगवान का आत्मा, उनके गुण निर्मल और उनकी पर्याय निर्मल, इस प्रकार जिसने आत्मा को अपना जाना कि यह आत्मा ऐसे द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् दशा। ऐसी परिपूर्णता को प्राप्त हुए, उस जाति का मैं हूँ। उस जाति का जिसने निर्णय किया और आत्मभान से वह निर्णय किया। आचार्य कहते हैं '**सो जाणदि अप्पाणं**' वह आत्मा को जान सकता है और 'मोह खलु जादि तस्स लयम्' उसका मिथ्यात्व-मोह नाश हुए बिना नहीं रहता। और तत्प्रमाण भगवान अरिहन्तों ने मोह का नाश करके —मिथ्यात्व का (नाश करके) पश्चात् क्रम-क्रम से स्वभाव की स्थिरता द्वारा राग-द्वेष का नाश किया और वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट किया। और.... जैसा भगवान ने अपने आत्मा को जाना, वैसा ही उपदेश जगत को किया कि मैंने किया, वह तू कर। तो तू भी परमात्मा होने के योग्य है, न हो यह बात शास्त्र में है नहीं। तब कहे, अभव्य है न! अभव्य है न! यह बात यहाँ नहीं। अभव्य भगवान के समवसरण में बैठ नहीं सकता। बात समझ में आती है।

भगवान का जहाँ समवसरण रचा गया हो। देखो, यह है उसमें। अपने वहाँ तो प्रत्यक्ष है। अमुक प्रत्यक्ष है, हों! कहीं सब प्रत्यक्ष नहीं। यह तो यहाँ की अपेक्षा से वहाँ मानस्तम्भ आदि है तो अभव्य मानस्तम्भ के पास आकर खड़ा रहे, परन्तु उस अभव्य को अन्दर में जाने की इच्छा होती नहीं। चारों ओर चार रास्ते होते हैं न जाने के, वहाँ मानस्तम्भ होता है। वह मानस्तम्भ होता है बड़ा, वहाँ आगे आकर अभव्य खड़ा रहता है। उसे कोई रोकता नहीं, परन्तु उसकी स्वयं की योग्यता नहीं, इसलिए अन्दर नहीं जा सकता। इसलिए ऐसी बात को समवसरण में जो आये वह भव्य ही होते हैं। वे अभव्य कभी हो सकते ही नहीं।

उसके लिये भगवान उपदेश करते हैं कि तुम आत्मा सिद्ध समान हो उसे

पहिचानो, उसकी श्रद्धा करे और स्वरूप में रमणता करे तो मुक्ति पाये बिना रहोगे नहीं। परन्तु मैंने जो पुरुषार्थ से काम किया, वह पुरुषार्थ से तुम करो, तो जैसे मुझे कार्य हुआ, ऐसे कारण से तुमको भी कार्य हुए बिना रहेगा नहीं। इसलिए कितने ही ऐसा कहते हैं कि हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं, परन्तु बराबर फल आता नहीं। झूठी बात है। आत्मा में जितने प्रमाण में पुरुषार्थ हो स्वभाव का, उतने प्रमाण में कार्य न आवे—ऐसा तीन काल में नहीं होता। इसलिए चैतन्य के अन्दर बहुत पुरुषार्थ करते हैं, फल बहुत कम आता है। यह सिद्धान्त ही नहीं है। क्योंकि स्वभाव सन्मुख के पुरुषार्थ का कारण करे और उसका कार्य न आवे, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

संसार की बात अलग है। संसार में तो पुरुषार्थ बहुत करना चाहे और मिले नहीं। क्योंकि पूर्व के पुण्य-पाप के आधीन है। परन्तु आत्मा का स्वभाव है, उसे भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा यह कहा। अकेले आत्मा के पुरुषार्थ से ही मुक्ति होती है। पुरुषार्थ बिना मुक्ति तीन काल में होती नहीं और जिसे आत्मा में पुरुषार्थ सूझा, उसे काललब्धि और दूसरे कोई अवरोधक हैं, यह बात तीन काल में है नहीं। ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि में प्रत्येक आत्मा की द्रव्य से अर्थात् वस्तु की स्वतन्त्रता का तो ढिंढोरा पीटा, परन्तु उसकी त्रिकाली शक्तियाँ भी स्वतन्त्र है, ऐसा ढिंढोरा पीटा है और शक्ति तो स्वतन्त्र है, परन्तु उसकी वर्तमान स्वतन्त्र अवस्था—पर्याय समय-समय की, समय-समय की सत् स्वतन्त्र है। जैसे त्रिकाल स्वयं सत् स्वतन्त्र है, वैसे वर्तमान पर्याय विकारी या अविकारी। उसे करे तो हो और न करे तो न हो, ऐसी उसकी स्वतन्त्रता है। वह स्वतन्त्रता किसी पदार्थ ने लूटी नहीं। ऐसे भगवान के उपदेश में, दिव्यध्वनि में ऐसा आया था। अज्ञानी अपनी कल्पना करके शास्त्र में से ऐसा निकाले। हमारे अभी काललब्धि पकी नहीं, अभी हमारे मोक्ष की अथवा समझने की धर्म की तैयारी नहीं और काललब्धि कहाँ थी परन्तु? वह आत्मा के समझने की पुरुषार्थ की दशा कर, उस समय को काललब्धि कहा जाता है। काललब्धि कोई जगत की दूसरी चीज़ नहीं है। आत्मा के स्वभाव का भान करके उसमें रुके और स्थिर हो, ऐसे वर्तमान पर्याय के काल को काल की लब्धि कहा जाता है अर्थात् भगवान ने उपदेश करते हुए ऐसा कहा। सब पदार्थ और उनकी वर्तमान स्वतन्त्र पर्याय स्वतन्त्र है। वह कोई किसी के आधीन नहीं

है। वह अवस्था किसी के कारण से रुके, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। कि कर्म के कारण आत्मा भटकता है और आत्मा दूसरे का कुछ भला-बुरा कर दे। ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि में तीन काल, तीन लोक में आया नहीं।

इसलिए यह कर्ता-कर्म का अधिकार, यह जीव का कोई कर्ता है, ऐसा कहे तो वस्तु सिद्ध नहीं होती। कर्ता कहो तो वस्तु अनित्य और कृत्रिम हो जाती है। इसलिए अकृत्रिम त्रिकाल पदार्थ का कोई कर्ता जगत में हो नहीं सकता और उस पदार्थ का जब स्वतन्त्र सिद्ध होकर कोई कर्ता नहीं, तो उसकी वर्तमान अवस्था का फिर कर्ता कौन होगा? वर्तमान पर्याय का कर्ता कौन हो? कर्म करावे? ईश्वर कर्ता नहीं, पश्चात् कर्म करावे। जैन में तो ऐसा है कि भाई! जैन तो कहे, हम कर्म को माननेवाले हैं। ऐसा होगा? यह कर्म-बर्म आत्मा को कुछ कराता नहीं। ऐसा भगवान के उपदेश में तो आया कि स्वयंसिद्ध तेरी अवस्था का तू कर्ता है। विकार करके विकार मुझे, ऐसा माने, वह अज्ञानभाव है। समझ में आया? आत्मा अनादि-अनन्त है। उसकी पर्याय में राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया यह आदि, कपट आदि का भाव करके 'यह विकारी कार्य मेरा है, इसका कर्ता मैं हूँ'—इतना स्वीकार अभी न करे तो उसकी तो वर्तमान अवस्था स्वतन्त्र साबित नहीं होती।

इस अधिकार—चलते अधिकार में तो अपने ऐसा है कि करनेवाला अज्ञानी जो कुछ आत्मा में राग और द्वेष के भाव करता है, वह स्वयं अज्ञानी करता है, उसे दूसरा कोई पदार्थ कराता नहीं। वह विकार कार्य का वास्तव में मैं कर्ता और मेरा कार्य है। ऐसा यदि स्वीकार करे तो भगवान तो उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। बात समझ में आती है? तब वह विकारी कार्य स्वयं न करे, तब कोई उसे कर्ता तो ठहराना पड़ेगा या नहीं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी भूल? भूल तो बात की कि आत्मा में जो भूल होती है, वह अवस्था की भूल आत्मा करता है, कोई कराता नहीं। वह कर्तापना आत्मा का—अज्ञानी का है, वह दूसरे पर डाले तो वह तो पहली भूल करता है। कोई आत्मा को... विकार करने को भी आत्मा स्वतन्त्र है। अब विकार जो हुआ, वह विकार... आत्मा

त्रिकाली नहीं। 'वह क्षणिक विकार, वह मेरा' कार्य करके दृष्टि में जो रुक जाये, उसे भी भगवान मिथ्यादृष्टि अपनी दिव्यध्वनि में पुकारते हैं। ....कहते नहीं।

दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि के परिणाम जो पुण्य के होते हैं, वे परिणाम भी विकार हैं, वह वास्तव में मैं उनका जाननेवाला हूँ, उस विकार का भोगनेवाला मैं हूँ नहीं। ऐसा जो न जाने, उसे भगवान सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी कहते नहीं, देखो, यह वीतराग की दिव्यध्वनि का यह ढिंढोरा! दूसरे का तो करे नहीं, दूसरे की दया नहीं, दूसरे की हिंसा नहीं, दूसरे का कुछ भला-बुरा करने का तो आत्मा में कुछ है नहीं। स्वतन्त्र सब पदार्थों की अवस्था का पलटना उसके कारण से होता है। इसलिए दूसरे का तो करे नहीं, परन्तु अपने में पर को करने का जो भाव, अहंकार और अज्ञान और राग-द्वेष, वह क्षणिक विकार है, वह क्षणिक विकार है। उस क्षणिक विकार का कर्ता आत्मा त्रिकाली स्वयं। उस क्षणिक का ही कर्ता स्वीकार कर ले तो उसे त्रिकाली शुद्ध द्रव्यस्वभाव की भी खबर नहीं। ऐसी बात भगवान ने दिव्यध्वनि में ढिंढोरा पीटकर (कही है)।

यहाँ कहते हैं कि अभी तो हम पर की दया कर देते हैं, पर की सेवा कर देते हैं। तीन काल-तीन लोक में एक तिनके के तोड़ने के टुकड़े करने का सामर्थ्य आत्मा में है नहीं। एक पलक फिराने की सामर्थ्य चैतन्य में तीन काल, तीन लोक में नहीं। एक परमाणु और जड़ की अवस्था वर्तमान होनेवाली हो तो होती है, वह कहीं चैतन्य के अधिकार की बात नहीं, तथापि मूढ़ जीव अनादि से आत्मा का अधिकार स्व में है, ऐसा छोड़कर पर में, शरीर में, वाणी में पर जीव में भला-बुरा कर दें, ऐसी मान्यता है, वह अज्ञान है, ऐसा भगवान कहते हैं। यह भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने ऐसा देखा है। अब अज्ञानी उसकी कल्पना में से कुछ नया निकाले तो उसके घर में जाये, ऐसा है, परन्तु भगवान का मार्ग वह है नहीं। भगवान ने तो ऐसा कहा, प्रभु! स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है।

'सर्व द्रव्य जग में असहाई।' कोई द्रव्य किसी को सहायता करे, ऐसा तीन काल-तीन लोक में स्वभाव नहीं। कब? केवलज्ञान हो तब न? तीनों काल में और तीन लोक में। सर्व त्रय जगत में असहाई। कोई द्रव्य किसी को तीन काल में सहायता-मदद करे, ऐसी तीन काल, तीन लोक में किसी की शक्ति नहीं। जिसमें जो शक्ति न हो, उसे

दूसरा दे, ऐसा तीन काल में नहीं होता और अपने में शक्ति न हो और दूसरे की स्वयं ले, ऐसी भी सामर्थ्य किसी पदार्थ की नहीं है। ऐसा भगवान का उपदेश दिव्यध्वनि द्वारा आया। ऐसा स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र समझकर बहुत जीव भगवान के समवसरण में उस समकित को प्राप्त हुए। उस आत्मज्ञान को प्राप्त हुए उस समवसरण में। यहाँ तो अभी शान्तिनाथ भगवान विधिनायकरूप से केवलज्ञानी हुए, ऐसी बात की। परन्तु जहाँ-जहाँ केवलज्ञान प्राप्त हुए भगवान, वहाँ-वहाँ यह उपदेश उनका जब हुआ, तब वे (जीव) धर्म प्राप्त किये बिना रहते नहीं।

महावीर भगवान को जब वैशाख शुक्ल दसवीं को केवलज्ञान हुआ और समझनेवाले की योग्यता जगत के जीवों की उस समय थी नहीं और वाणी निकलने की योग्यता भी वाणी में थी नहीं। भगवान की वाणी निकलने के (काल में) समझनेवाला समझने की योग्यतावाला जीव न हो, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया? एक पक्ष कहता है कि भगवान की वाणी निकली, परन्तु देव थे और मनुष्य नहीं थे, इसलिए धर्म नहीं पाये। यह बात तीन काल में सच्ची नहीं है। क्योंकि भगवान की वाणी अपने स्वभाव में स्थिर होने से कुछ राग पूर्व में रह गया, वह स्थिरता के लिये निकली हुई, वह राग की वाणी जब ध्वनि उठे तब धर्म के समझनेवाले न हों, ऐसा तीन काल में नहीं होता। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। इसलिए भगवान को मानो वाणी नहीं निकली, यह दो महीने और छह दिन तक। वैशाख शुक्ल दसवीं को केवलज्ञान हुआ, श्रावण कृष्ण एकम् को दिव्यध्वनि खिरी। क्योंकि वाणी निकले और जीव योग्य समझनेवाले न हों, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक मेल टूटे, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया?

अब क्या कहलाता है यह? कि भगवान की दिव्यध्वनि निकले और धर्म समझनेवाले न हों, ऐसा कभी होता नहीं, ऐसे धर्म समझनेवाले उस दिव्यध्वनि के कारण समझें, ऐसी पराधीनता भी नहीं होती। क्या कहा? शिवलालभाई! वाणी निकले, जब तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि (खिरे), वह पूर्व में आत्मा के स्वरूप में स्थिर होते-होते कुछ बाकी रहा हुआ राग, उसमें वह बँध गयी भाषा है। वह राग में निमित्त पाकर परमाणु बँधे, उन परमाणु की जब आवाज और ध्वनि निकले, तब वह स्वयं उस क्षण में धर्म प्राप्त करने के अन्दर की भूमिका में रमणता करते हुए, उस भूमिका में राग था।

इसलिए राग में जो परमाणु बँधे, राग का निमित्त पाकर, वे परमाणु जब दिव्यध्वनिरूप से खिरे, धर्म समझनेवाले सभा में न हों, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया? वह तो नहीं होता, परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, हम यह जो वाणी समयसार की करते हैं और इस काल में समझनेवाले न हों, ऐसा नहीं होता। क्योंकि यह पाँचवीं गाथा में कहते हैं। पाँचवीं गाथा में कहते हैं। समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा, मैं मेरे वैभव से कहूँगा। मेरे वैभव द्वारा कहूँगा। देखो, उसमें यह बात न्याय से आती है। बहुत बार यह कही जा चुकी है।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥ ५॥

मैं मेरे आत्मा के वैभव से स्वरूप की एकत्वता और विकार तथा संयोग से विभक्त अर्थात् पृथक् है, ऐसे आत्मा को मेरे वैभव से कहूँगा। '**जदि दाएज्ज**' यदि मैं दिखाता हूँ तो प्रमाण करना। प्रमाण करना, ऐसा आदेश करते हैं। '**जदि दाएज्ज पमाणं**' ऐसा कहते हुए वाणी निकली है हमारी और समझनेवाला न हो, ऐसा तीन काल में होता नहीं। प्रमाण करना। '**चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं**' कहीं विभक्त और शब्दों में अन्तर और स्खलना आवे तो वह बात खोजना नहीं। हम आत्मा की जो बात कहना चाहते हैं, उस बात को समझ। '**पमाणं**' प्रमाण करना, ऐसा कहते हैं। किसे कहते हैं? पात्र देखे हैं या नहीं? पाँचवीं गाथा में। '**जदि दाएज्ज**' मैं स्वयं प्रमाण से बात करूँगा, तो उस बात को प्रमाण करना। आत्मा पर से निराला स्वयं सिद्ध स्वतन्त्र है। उसे कोई रोकने में समर्थ नहीं है। अपनी भूल से रुकता है, स्वयं जब समझे तब निमित्त अपने आप उपस्थित होता है। निमित्तों को आत्मा मिला सके, यह बात तीन काल में होती नहीं। और समझने के समय निमित्त न हो, ऐसा भी तीन काल में होता नहीं। क्योंकि कहते हैं कि हम जब कहनेवाले हैं, तब उसे समझने के योग्य जीव न हो तो ऐसा भी नहीं होता। अरे! पंचम काल के मुनि भी जब कहते हैं कि प्रमाण करना, मेरी बात प्रमाण करनेवाला नहीं मिले, ऐसी बात पाँचवीं गाथा में कहते नहीं। समझ में आया?

इतना तो जोर दिव्यध्वनि के निकट लेकर आये हैं अंश वहाँ से। यह दिव्यध्वनि सुनकर आये हैं और उनकी वाणी सुनने में समझनेवाले न हों, ऐसा जब होता नहीं, तो

हम आठ दिन वहाँ से सुनकर आये हैं, ऐसे हमारे उपदेश को समझनेवाले भरतक्षेत्र में न हो, ऐसा भी नहीं होता। पण्डितजी! यह पाँचवीं गाथा में ऐसा ही कहते हैं। उसमें सन्धि ऐसी है। बात समझ में आती है? तथापि समझनेवाला समझनेवाले के कारण से समझता है, हों! कहीं निमित्त के कारण से नहीं, परन्तु जब समझानेवाले का यथार्थ निमित्त हो, ऐसा यह कहनेवाले का दिव्यध्वनि के पहलू से आया हुआ अर्थात् आचार्य पुकार करते हैं कि प्रमाण करना। अनुभव से प्रमाण करना। आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्द हूँ, विकल्पादि विकार है, शरीरादि पर है, कर्मादि संयोग भी पर है। ऐसे .... जो तुझे स्वरूप से एकत्व और विकार तथा पर से विभक्त कहते हैं। हाँ करना, ना करना नहीं। ऐसा कहते हुए आदेश करके क्या हुकम करते हैं? ऐसे जीव पात्र हमारे ऐसे संयोग में न हो, ऐसा होता नहीं, तो जिसकी वाणी दिव्यध्वनि त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान, उनका क्या कहना? जिनकी परिपूर्णता की दशा और वाणी में भी परिपूर्णता। एक समय में पूरा लेती आवे और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधा, उनकी वाणी में समझनेवाला सभा में न हो, ऐसा कभी नहीं होता। वह वाणी ऐसा कहती है कि हम जब निमित्तरूप से हैं। निमित्त किसका? जब समझनेवाला होता है, उसका। इसलिए समझनेवाले जीवों की योग्यता न हो, ऐसा होता नहीं। परन्तु जीवों को ऐसा हो जाता है कि ऐसी बात! यह तो बड़ी एल.एल.बी. और बी.ए. की लगती है। वह अपने आत्मा को स्वयं नकार में और नालायक हूँ, ऐसा करके वाणी का जो निमित्तपना समझने की योग्यतावाले को जो सन्धिवाला है, वह सन्धि तोड़ डालता है। समझ में आया? लालजीभाई! क्या कहा?

भगवान की वाणी में तो समझने की उसकी योग्यता है, ऐसा वह निमित्त है। उन दो की निमित्त-नैमित्तिक सन्धि है कि भगवान जो समझे और पूर्णता पाये, वह बात श्रवण करनेवाला न समझे, ऐसा होता नहीं। क्योंकि दिव्यध्वनि के बन्धन के समय, वाणी के बन्धन के समय राग ही उस प्रकार का हुआ था। तो समझनेवाले को ऐसा होना चाहिए कि आहाहा! ऐसी वाणी जब हमको मिली है, निश्चित हम पात्र होकर अल्पकाल में पूर्ण हो जायेंगे। ऐसी जिसकी योग्यता है, उसके लिये यह दिव्यध्वनि निमित्तरूप से कही जाती है। समझ में आया?

क्या कहा उसमें? भगवान तीर्थंकर की वाणी तो उपदेश ऐसा है, परन्तु

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि प्रमाण करना, प्रमाण करना अनुभव से आत्मा की बात। पर से भिन्न और स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध है। उसकी श्रद्धा कर, पहिचान और अनुभव कर। वह अनुभव कर ऐसा कहा, तब कर सकने की योग्यता देखकर कहा या ऐसा का ऐसा कहा? इसलिए कहते हैं। कौन? होता है वह। अब कौन होता है? वह कहे कि परन्तु हम नहीं। ऐ...! परन्तु तू किसलिए निकल जाता है? सामूहिक निमन्त्रण दिया। समझ में आया? वहाँ कन्दोरा बन्द या ऐसा नहीं दिया। कि सामूहिक निमन्त्रण। घर में बीमार पड़ा हो और खाने न आवे, वह अलग बात है। बाकी सामूहिक निमन्त्रण में कोई बाकी नहीं रहे। सामूहिक निमन्त्रण कहते हैं न? जीमणवाण कहते हैं न जीमणवाण। सबको जीमणवाण है। सबको... फिर कोई बीमार हो, रोगी हो और खाट में से न आवे, इससे कहीं उसे निमन्त्रण नहीं, ऐसा है? वह तो नालायक के कारण से आता नहीं। इसी प्रकार भगवान की दिव्यध्वनि में एकदम चौदह ब्रह्माण्ड के जीवों को निमन्त्रण दिया है।

अरे, जीवों! सिद्ध समान मुक्ति प्राप्त करने के योग्य समान तुम सब जीव हो। तुम्हारे में संसार और बन्धन एक समयमात्र है। एक समय की रुचि के कारण संसार टिका है। उस संसार का मूल लम्बा है नहीं। उस संसार का मूल लम्बा नहीं, परन्तु मोक्ष का मूल बहुत गहरा है। धर्म का मूल गहरा। क्योंकि आत्मा में से जो आत्मा का भान होकर जो श्रद्धा और दशा और ज्ञान की दशा प्रगट हो, वह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... भविष्य का काल है, उतना काल रहती है। उस काल के बाद पूर्ण दशा हुई, उसे वापस गिरना नहीं रहता और जितना संसार के काल की अवस्था का काल गया, उसकी अपेक्षा मोक्ष की अवस्था का काल अनन्त गुना है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... संसार की एक समय की अवस्था और मोक्ष की अनन्त पर्याय की अवस्था, ऐसा अनन्त गुना काल है। समझ में आया? क्योंकि भूतकाल से भविष्य काल अनन्त गुना है। ऐसा जो आत्मा, उसके अन्दर में संसार एक क्षणमात्र है, स्वभाव का भान कर तो वह मूल उसका लम्बा नहीं है। तेरा मूल लम्बा है कि जो तू निकाला निकले नहीं। चाहे जितना काल वह मलिनता सेवे और चाहे जितना काल उसे उसमें से अशुद्धता में जाये, परन्तु उसकी समय की मलिनता कोई पुष्टि हो जाये?

स्वभाव में तो मलिनता नहीं होती, परन्तु उसकी समय की मलिनता वह कहीं

गाढ़ी हो जाये या अनन्त काल-अनन्त काल फिर सिद्ध होगा। उसकी वर्तमान मलिनता सिद्ध होने के पहले की बहुत दृढ़ हो गयी हो, वह तो मलिनता तो एक समय की है वह है। प्राणभाई! समझ में आया? और अनन्त काल हुए मलिन अभी कोई पर्याय में समय-समय का किया करे और अन्दर शुद्धता जो है, वह कहीं हीन हो जायेगी? स्वभाव जो त्रिकाल द्रव्य-गुण है, वह हीन हो जायेगा? त्रिकाल द्रव्य-गुण जो है, वह तो शुद्ध ही है। और पर्याय चाहे जितने काल समय-समय की नयी बनावे तो वह अशुद्धता का काल लम्बाकर, परन्तु कहीं पर्याय की अशुद्धता की पुष्टि होकर बहुत उग्र हो जाये, ऐसा कभी होता नहीं, ऐसी बात भगवान ने दिव्यध्वनि में कही थी। तुझे और पर को कोई सम्बन्ध नहीं। तेरी अवस्था में तू भूला, इसलिए रुका है। यह संसार, वह विकार है और विकार वह मेरी अपनी अज्ञान की भूल है। उस अज्ञान का कर्ता कार्य है। अब वह संसार मेरे स्वभाव में नहीं। समझ में आया?

देखो, यह कर्ता-कर्म का अधिकार यह है। मेरे आत्मा में संसार क्रोध, मान आदि है ही नहीं न! मैं आत्मा संसारस्वरूप ही नहीं। यह ऐसा कर्ता-कर्म बताया कि जो संसार का पुण्य-पाप का भाव, वह क्षणिक है, वह अज्ञान का कार्य है। 'अज्ञान ही मैं नहीं न, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, चैतन्य निर्मल हूँ।' ऐसा बतलाकर पुण्य और पाप का विकार वह आत्मा का कार्य नहीं, परन्तु उस क्षण आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान करना, वह आत्मा का कार्य है। वह कर्ता कर्म की सन्धि भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने उस दिव्यध्वनि द्वारा बतायी है और वह बतायी है, उसे यह कुन्दकुन्दाचार्य कहना चाहते हैं और वह यहाँ अपने कही जाती है। यह कहीं दूसरी बात है नहीं। इसलिए भगवान आचार्य तीर्थंकरदेव की वाणी में स्वतन्त्र छह द्रव्य, नौ तत्त्व जैसे अनादि हैं, वैसे हैं। पहले-बाद में कुछ है नहीं। कि संसार पहले था और फिर कोई जीव का मोक्ष हुआ, मुक्ति जगत में बिल्कुल नहीं थी, ऐसा भी कुछ है नहीं। ऐसा सब है। यह समझे उसकी मुक्ति होती है और न समझे वह संसार में भटकता है। परन्तु समझने की यहाँ बात है इसलिए भटकने की बात तो यहाँ कहनी नहीं है।

दिव्यध्वनि में तो यह आया है कि तेरे आत्मा के स्वभाव का कार्य तो वास्तव में ज्ञाता और दृष्टा का कार्य है। जान और देख। इसके अतिरिक्त कोई तेरा कर्म ही नहीं न!

कर्म जड़ तो तेरा कर्म नहीं, परन्तु पुण्य और पाप के परिणाम विकारी हों, वह भी वास्तव में तेरा कर्म है नहीं। उजमभाई! क्या आता है इसमें? समझ में आया? देखो, यह बात है यहाँ। कल मान तक आयी थी। मान में आता है, वह जरा बात तीर्थंकरगोत्र की वाणी में जो दिव्यध्वनि आयी, वह दिव्यध्वनि बँधने का काल भी ऐसा होता है कि अत्यन्त वह निर्मान... निर्मान... निर्मान... होता है। समझ में आया?

अपने यहाँ मान आया है कि मान जो जरा आत्मा की पर्याय में हो, 'उस मान का कार्य भी मेरा है' ऐसा ज्ञानी मानता नहीं। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मेरा स्वरूप तो निर्मलानन्द है। यदि एक बार चिदानन्दी तीर्थंकरगोत्र कौन बाँधता है, इसकी जरा बात करते हैं। 'जब अन्तर मद भाव बहावे, तब त्रिभुवननाथ कहलावे।' अज्ञानी को क्षण-क्षण में जगत के पदार्थों का मान करके चैतन्य की निर्मल सत्ता के स्वभाव को भूल जाता है। तब ज्ञानी क्षण-क्षण में मेरा आत्मा ज्ञातादृष्टा है। और जरा रागादि हुआ, उसका स्वरूप मेरा वह नहीं। और जगत से मान लेना जो चाहता नहीं। 'जब अन्तर मद भाव बहावे' ज्ञानी मद को—मान को इतना शिथिल कर देता है। मेरे चैतन्य की सत्ता के बहुमान में जगत के किस पदार्थ का मैं मान लूँ और दूँ? मेरे स्वभाव का मान मेरे पास है। दूसरा मान ऐसा जगत में तीन लोक और तीन काल में नहीं है। ऐसा जब आत्मा मान के भाव को अन्तर में मोड़े अर्थात् मान को गलाकर निर्मान दशा हो, 'तब त्रिभुवननाथ कहावे' तब तीन लोक का नाथ तीर्थंकर होता है। क्योंकि मान जब गलाया और निर्मानदशा अन्दर से प्रगट हुई और मान का जरा भाग 'अरे! यह नहीं... मैं नहीं... मैं नहीं... मैं तो अखण्डानन्द शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द हूँ।' ऐसे मान को गलाकर निर्मान चैतन्यस्वभाव में नमे और कुछ राग बाकी रह गया, उसके फल में आया कि 'जब अन्तर मद भाव बहावे' मान को स्वरूप में बहावे कि 'मैं बड़ा, चैतन्य से बड़ा हूँ। मैं राग से, पुण्य से और शरीर तथा सम्पदा से बड़ा नहीं।' ऐसा जिसने मान को स्वभाव की ओर मोड़ा और राग बाकी रह गया, 'तब त्रिभुवननाथ कहावे।'

तीन लोक का नाथ तीर्थंकरगोत्र तब बाँधता है। वह तीर्थंकरगोत्रपने की उपार्जन अन्दर में मान जब गलकर निर्मानदशा होती है तब। मान चाहे, उसे मान मिलता नहीं। इसलिए इस अधिकार में अपने मान शब्द आया था। वह अज्ञानी जब मान करे, तब पर

का मान करता है। भगवान की वाणी में आया, अज्ञानी को परपदार्थ का अभिमान आता है। ज्ञानी को उस मान का अहंकार नहीं आता। किसकी वस्तु मेरी? मैं तो आत्मा हूँ। मेरी वस्तु का साधन भी मेरे पास, कर्ता भी मैं, मेरा कार्य भी मेरे पास और साधन भी मेरे आत्मा में है। तब मेरा साधन बाहर में नहीं और मुझे कुछ भी करके देना हो तो मेरा मैं करनेवाला और मैं लेनेवाला। मैं किसी को देनेवाला और लेनेवाला कोई दूसरी चीज़ है नहीं। सम्प्रदाय मैं, राग घटाकर निर्मान और अरागी दशा प्रगट करके मुझे दो। मेरे पास रखूँ परन्तु मुझे देने-लेने का कोई दूसरे के पास है नहीं। भारी स्वार्थ तब तो यह!

यह बहुमान आया न अपना? देव-गुरु-शास्त्र का मान करता ही नहीं। देव-गुरु-शास्त्र के बहुमान के समय भी अपना बहुमान करता है। पर का बहुमान करता है, ऐसा कहना वह व्यवहार का उपचार है। वास्तव में ज्ञानी... ध्यान रखना। ज्ञानी, वह केवली और देव तथा गुरु और शास्त्र को देखकर उनका बहुमान आता है, यह बात खोटी है। क्योंकि उन पदार्थों को देखकर बहुमान आवे तो पदार्थ तो कायम रहनेवाला है, तब तो उसे मान कभी टल सकेगा नहीं। यह पर्यायबुद्धि जीव को पर को देखकर मान आता है... मिथ्यादृष्टि... ध्यान रखना, हों!

यह देव, गुरु और शास्त्र यह सच्चे हैं। इन अच्छे के लिये मुझे बहुमान आवे, उसे भगवान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। ध्यान रखना। क्योंकि उसने राग का कारण तो इस चीज़ को माना। परन्तु राग मेरी निर्बलता के कारण हुआ है और स्वभाव की ओर स्थिर नहीं हुआ, इसलिए हुआ है। ऐसा उसे जानने में रहा नहीं। इसलिए अज्ञानी को परवस्तु को देखकर बहुमान आता है। ज्ञानी को अपने स्वभाव में स्थिर होने में देरी लगती है, इसलिए जरा बहुमान आये बिना रहता नहीं, परन्तु वह बहुमान वास्तव में तो पर का तो नहीं। सवाणी! लालजीभाई! समझ में आया? भारी उल्टी बात भाई जगत से! यदि पर के कारण बहुमान हो तो पर तो कायम चीज़ें रहनेवाली हैं। केवली कब जगत में नहीं? गुरु कब जगत में नहीं? शास्त्र कब जगत में नहीं? और वह तो पर्यायबुद्धिवाले का कथन मिथ्यादृष्टि का है। ज्ञानी का कथन है कि आत्मा स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र शुद्ध है, उसका बहुमान करते-करते जब राग रह जाता है तो अशुभराग टला है, यह इतना अपना बहुमान करता है और राग रहा इसलिए लक्ष्य पर में जाता है, इसलिए कहते हैं

कि मैं पर का बहुमान करता हूँ। वास्तव में कोई पर का बहुमान करता नहीं। पर का बहुमान करे तो वह हो, वहाँ तक पर हो तो वहाँ तक पर के लिये महत्ता का विकल्प रखा ही करना। अर्थात् विकल्प टालकर निर्विकल्प स्थिर होने की भावना रही नहीं। इसलिए यह है, तब तक मुझे राग करना... राग करना... राग की भावना हुई। राग की भावना का ज्ञानी ने तीन काल में कहा नहीं। एक भावना तो स्वभाव की कर, ज्ञानानन्द स्वभाव है। स्थिर न हो सके और राग आवे और मान करे, वह तो व्यवहार का उपचार है। सवाणी! कौन करता है बहुमान? बात पूरी हो गयी। ध्यान रखना, यह बात समझने जैसी है।

कोई कहे कि यह केवली को देखकर इसे राग आया तो राग की खान तो निमित्त हुआ, तब तो केवली जब तक जगत में रहे, तब तक इसे राग हुआ करे। यह राग मिथ्यादृष्टि को इस जाति की एकता की बुद्धि होती है। ज्ञानी को जो कुछ राग और बहुमान आता है, वह स्वभाव में स्थिर नहीं हो सकता इसलिए वृत्ति उठती है। उस वृत्ति का निर्बलता का कारण है, नहीं कि वह बहुमान पर का कर्ता है इसलिए कारण है। ऐसा जो कारण में अन्तर करता है उसे भी आत्मा के स्वभाव की खबर नहीं। ऐसा भगवान दिव्यध्वनि द्वारा उस वस्तु के स्वभाव का ऐसा वर्णन करते थे। दूसरा वर्णन करे, वह भगवान के घर की बात नहीं। देखो, यह बात तो बहुत ऊँची लगेगी। यहाँ प्रतिमा, यह मन्दिर और उसका बहुमान वास्तव में नहीं। उसका बहुमान हो तो यह चीज़ है, वहाँ-वहाँ बैठे, उसका बहुमान करने आना चाहिए। जिसे-जिसे अपने में ख्याल आकर कुछ राग होने का भाव होता है। समाप्त हो गया वह परन्तु बहुमान पर का कारण हुआ नहीं। उसे स्वयं के राग में जरा ठीक लगा, तब उसे अशुभ टलकर शुभ होता है और ज्ञानी को स्थिरता में देरी लगती है, इसलिए राग होता है; नहीं कि पर के कारण से होता है, वह बात सच्ची नहीं है।

....में एक आता है कि भगवान के प्रति गौतम को राग रहा। वह भगवान की अस्ति थी, इसलिए राग रहा। भगवान मोक्ष पधारे; इसलिए राग टल गया, यह बात बराबर नहीं है। यह बात त्रिकाल झूठी है। भगवान थे, तब तक राग गौतम को रहा और भगवान मोक्ष पधारे इसलिए राग छूट गया! बात ही अज्ञानियों ने कल्पित की है। यह

वस्तु का स्वरूप है नहीं। गौतम प्रभु को स्वयं की निर्बलता के कारण से राग रहा और सबलता के कारण से राग टला, यह एक नियम के अतिरिक्त दूसरा कोई नियम सच्चा नहीं है... नहीं है। लालजीभाई! कहो, समझ में आया इसमें? बहुतों में ऐसा कहा जाता है कि भगवान को राग था, भगवान के ऊपर गौतम गणधर को (राग था)। फिर भगवान जब मोक्ष पधारे, तब गणधर आये। 'हे भगवान! मुझे यह क्यों आगे रखा? यह मोक्ष में साथ में तो ले जाना था। यह मैं पीछे रह गया।' आता है न कुछ ऐसा? कैसे मुझे... नहीं रखा? यह वह कहीं बालक की बातें होंगी?

मुमुक्षु : यह वाणी का विलास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह विलास की बात सच्ची नहीं। ऐसा तीन काल में होता नहीं। कहीं भगवान के लिये राग रह गया गणधर को, यह बात तीन काल में सच्ची नहीं। यहाँ भगवान की वाणी में आया हुआ आचार्यदेव कहते हैं। ज्ञानी को राग पूर्ण दशा न हो, वह होता है। उस राग का मूल हेतु तो निर्बलता के अतिरिक्त कोई है नहीं और वह निर्बलता सबलता में जाने में देरी लगी है, इसलिए है। नहीं कि वे चीज़ें हैं, इसलिए है। इस बात में बड़ा तत्त्व का विरोध है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है नहीं। इसलिए यहाँ भगवान कहते हैं अज्ञानी को जरा मान आता है। उस मान को कार्य मानता है या वह मान पर के कारण से आया है, उसने मुझे उत्साहित किया, इसलिए मुझे मान आया, उसने मुझे बड़ा कहा, इसलिए मुझे मान आया, उसने मेरी बहुत प्रशंसा की, इसलिए मुझे मान आया—ऐसा जो मानता है, वह मान विकार, पर के कारण से होता है, ऐसा माननेवाला मान के स्वरूप को भी समझता नहीं। ज्ञानी को जरा मान होता है। वह जानत है कि मेरे स्वभाव में नहीं। जरा निर्बलता में मचक खा गया है तो मैं उसका कर्ता नहीं, परन्तु वास्तव में मैं उसका ज्ञाता हूँ। जाननेवाला-देखनेवाला के अतिरिक्त मेरा कोई कार्य है नहीं। यह ऐसा समझना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शन, यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना वह चारित्र—स्वरूप की रमणता, यह व्रत, तप और पूजा तथा भक्ति, वह यह भान बिना सब, वे सब रण में शोर मचाने जैसा है। पुण्य बाँधे, परन्तु जन्म-मरण को टाले नहीं। इसलिए भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं, आत्म स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। विकार करने में स्वतन्त्र न रहा न जब?

शिवलालभाई! भगवान के कारण राग होता है अर्थात् विकार करने में स्वतन्त्र नहीं रहा। खोटी बात है। यह आत्मा चिदानन्द ज्ञान का भान होने पर भी स्थिर नहीं हुआ, इसलिए जरा राग रहता है। इस बात को न समझे और पर के कारण से होता है, तो मन्दिर हो, तब तक केवलज्ञान नहीं लेना, वहाँ तक उसके सामने देखा करना और ऐसे स्थिरता में करना नहीं। वह तो अपने अन्दर जब स्थिर नहीं हो और इससे राग आये बिना रहता नहीं, यह बात बराबर है, परन्तु राग का हेतु परचीज़ है और पर के लिये राग करता है, यह बात भगवान की वाणी में आयी नहीं और ऐसा स्वरूप नहीं, इसलिए वाणी में कहाँ से आवे? वाणी में तो जो हो, वैसा आवे या न हो, वैसा आवे?

इसलिए भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा कहा कि प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र, गुण स्वतन्त्र, विकार भी स्वतन्त्र। जब विकार स्वतन्त्र और किसी के कारण से नहीं तो निर्विकारी आत्मा के आश्रय से विकार टले बिना नहीं रहता। और मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। भगवान की जो मुक्ति और केवलज्ञान चतुष्टयरूप से प्राप्त हुए, उसी प्रकार यह आत्मा भी उस प्रकार की बात यथार्थ समझे, उसे न पावे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। यह एक दिव्यध्वनि का फल तो जगत के जीव धर्म प्राप्त करें, वह है। दिव्यध्वनि भगवान की वाणी निकली, ऐसा नहीं, हों! परन्तु वाणी का फल तो जीव उन भगवान का आशय करे, श्रद्धा करे, पहिचाने और स्थिर हो, वह दिव्यध्वनि का फल है, दूसरा फल है नहीं। उसमें कहीं स्वर्ग-वर्ग बताकर, वहाँ कोई लालच देकर आना, वहाँ इन्द्राणी के पास, ऐसा बताना नहीं है। आना मेरे पास अर्थात् सिद्धदशा में आगे। इसके अतिरिक्त भगवान को कुछ कहना नहीं। यह दिव्यध्वनि में उपदेश स्वतन्त्र है, यह बात आयी है। नौ तत्त्व की, छह द्रव्य की। यह उपदेश सुनकर अनन्त जीव समकित को प्राप्त हुए, श्रावक हुए, मुनि हुए और केवलज्ञान को भी प्राप्त हुए हैं, अभी भी पाते हैं, भविष्य में भी पायेंगे, त्रिकाल सनातन शाश्वत् राजमार्ग चला आता है, वह मार्ग कोई कृत्रिम और अनित्य है नहीं, नित्य और शाश्वत् है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मोक्ष कल्याणक

(दिनांक 25-01-2024)

प्रवचन नं. ३, श्री समयसार, गाथा - ११

देखो, शिष्य ने प्रश्न किया है। प्रश्न किया है शिष्य ने कि भगवान! व्यवहारनय क्यों अंगीकार नहीं करना चाहिए। व्यवहारनय अर्थात् क्या? देखो, शिष्य का प्रश्न भी विवेकवाला और जिज्ञासु का प्रश्न है। कि आप पहले कहते थे कि जो व्यवहार है, उसे अंगीकार नहीं करना। व्यवहार क्या? आत्मा में जो दया, दान, भक्ति आदि परिणाम विकार होता है और आत्मा अखण्ड स्वरूप में गुणभेद करना, वह व्यवहार है। भेद और राग, वह सब व्यवहार है। व्यवहार को अंगीकार नहीं करना। क्योंकि व्यवहार से आत्मा को लाभ नहीं है। फिर आपने ऐसा कहा कि परमार्थ को कहनेवाला है व्यवहार। समझ में आया? व्यवहार को अंगीकार नहीं करना, ऐसा कहा था। फिर वापस कहा कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादन करता है। यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शक्ति का पिण्ड, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा-ऐसा भेद करके व्यवहार निश्चय को बतलाता है तो व्यवहार क्यों अंगीकार नहीं करना? तो व्यवहार को उपादेय क्यों नहीं मानना? तो व्यवहार को अंगीकार अर्थात् आदरणीय क्यों नहीं मानना? अथवा ऐसे व्यवहार को हितकर क्यों नहीं मानना? ऐसा शिष्य का प्रश्न था। समझ में आया?

देखो, बड़ी गाथा। पूरे जैनदर्शन की अथवा वस्तुदर्शन के मर्म की गाथा ११वीं है। शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया था कि आपने पहले व्यवहार को अंगीकार नहीं करना चाहिए, ऐसा कहा। फिर कहा कि परमार्थ को कहनेवाला है। यह भेद करके व्यवहार ही समझा सकता है। यह निश्चय तो समझा सकता नहीं। क्योंकि निश्चय में तो भेद ही नहीं है। वह तो एकरूप अभेद-अखण्ड आनन्दकन्द, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। तो

अभेद से तो अभेद कहने में आता नहीं। अभेद से अभेद कहने में आता नहीं। अभेद भेद से समझाया जाता है। तो भेद हुआ। भेद क्या? कोई निमित्त से आत्मा में लाभ-नुकसान, वह बात यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? किसी निमित्त अर्थात् परपदार्थ के संग से आत्मा में नुकसान-लाभ है, यह बात तो यहाँ है ही नहीं। अपनी पर्याय में कर्म के निमित्त के संग से अपनी पर्याय में जो अशुद्धता, मलिनता, पुण्य-पाप, दया, दान, भक्ति, काम क्रोध हुए हैं, वह अपनी स्वतन्त्र अशुद्धता, वह भी व्यवहार है। क्योंकि अशुद्धता वह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं है। तो अशुद्धता को जाननेवाला नय और अशुद्धता नय का विषय। सब छोड़नेयोग्य है, ऐसा आपने कहा था। शिष्य ने प्रश्न किया। और फिर कहा कि आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ देव ने एक समय में अनन्त शक्ति का भण्डार। सैंतालीस शक्ति का तो पीछे वर्णन किया है। समयसार में पीछे आयी न? जीवत्वशक्ति, चितशक्ति, दर्शिशक्ति, ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति इत्यादि। सैंतालीस शक्ति का वर्णन किया है। ऐसी-ऐसी आत्मा में अनन्त शक्तियाँ एक समय में... अनन्त... शक्ति का अर्थ क्या? त्रिकाल टिके, इस अपेक्षा से नहीं। यह स्वभाव अनन्त एक समय में अनन्त गुण हैं। एक समय में अनन्त गुण, ऐसा आत्मा है। तो एक आत्मा में तीन गुण से भेद करके समझना कि आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त, वह आत्मा। यह भेद करके समझना, वह व्यवहार है, वह राग है, वह पुण्य है, वह धर्म नहीं। धर्म तो अखण्ड ज्ञायकस्वरूप अभेद के आश्रय से धर्म है। तो यह भेद परमार्थ को कहनेवाले हैं, ऐसा तो कहते थे। और व्यवहार अंगीकार नहीं करना, ऐसा कहा। तो उसका प्रयोजन क्या? समझ में आया? यह उसका उत्तर देते हैं।

देखो, **टीका :— व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ...** है। शान्ति से समझना चाहिए। यह गाथा अलौकिक-अपूर्व है। भगवान! तेरे आत्मा का स्वरूप एक क्षण में अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप अभेद है। व्यवहारनय उस अखण्ड को भेद करके और राग की अशुद्धता की अस्तित्वता पर्याय में मौजूदगी है, उसे बताता है और वह अशुद्धता और भेद अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् शाश्वत् चीज़ नहीं है। समझ में आया? **व्यवहारनय...** अर्थात् वर्तमान ज्ञान। जो वर्तमान भेद और विकार को विषय करता है। वर्तमान अनन्त गुण का जो पिण्ड प्रभु आत्मा है, उसमें जो भेद करके दिखलाये और

अशुद्धता दिखलाये, उसे व्यवहारनय कहते हैं। समझ में आया? तो व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है। अभूतार्थ—अविद्यमान पदार्थ। वह मौजूदगी की चीज़ नहीं। व्यवहारनय मौजूदगी की चीज़ नहीं।

इसलिए **अविद्यमान, असत्य, अभूत अर्थ को प्रगट करता है...** व्यवहारनय अभूतार्थ है, व्यवहारनय असत्यार्थ है, व्यवहारनय झूठा है। इस कारण से वह अविद्यमान झूठे पदार्थ को, असत्य पदार्थ को, अभूत (अर्थात्) नहीं है, उसे प्रगट करता है। है? अर्थ है न उसमें? देखो, क्या कहा? जरा सूक्ष्म है। इस गाथा का विषय अभेद है। वह सब दृष्टि की मुख्यता करो तब धर्म की शुरुआत होती है। वरना धर्म कोई निमित्त से, दया से, भक्ति से, व्रत से वह धर्म-बर्म है ही नहीं। और निमित्त अनुकूल मिले तो आत्मा में धर्म होगा, भगवान की प्रतिमा है तो आत्मा को समकित होता है, शास्त्र में आता है। प्रतिमा के दर्शन से समकित होता है, जातिस्मरण से होता है। यह आता है या नहीं? देवऋद्धि दर्शन। वह सब निमित्त की बात है। उससे होता नहीं। उससे तो होता नहीं, परन्तु यहाँ तो अपना आत्मा एक समय में, एक क्षण में अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप वस्तु है। यह उसमें विकल्प उठाना कि यह आत्मा अखण्ड है, शुद्ध है, परिपूर्ण है—ऐसा विकल्प उठाना, यह उससे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। विकल्प अर्थात् क्या? राग उठाना, भेदवृत्ति करना, उससे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। उससे भी नहीं, परन्तु अनन्त गुण के पिण्ड में गुण का भेद करके विचार करना। अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा एकरूप सदृश ध्रुव नित्य भगवान सामान्यस्वभावी आत्मा। सामान्यस्वभावी समझते हो? वर्तमान पर्याय को गौण करके, प्रगट पर्याय को गौण करके शक्तिरूप ध्रुव है, उसे सामान्य कहते हैं। उस सामान्य स्वभाव का अवलम्बन लेने से सम्यग्दर्शन होता है। वरना कभी सम्यग्दर्शन होता नहीं। सेठियाजी! समझ में आया?

तो कहते हैं कि **व्यवहारनय सब ही...** यह निमित्त से होता है, यह बात तो हमारे यहाँ है ही नहीं, जो व्यवहारनय के शास्त्र में आता है। आता है न वह? तीन कारण से सम्यग्दर्शन आता है और उससे प्राप्त होता है। और फिर अभ्यन्तर कारण दर्शनमोह क्षयोपशम, क्षय और उपशम के कारण से सम्यग्दर्शन पाता है। वह आता है गोम्मटसार आदि में। अभ्यन्तर कारण, निमित्त कारण अभ्यन्तर। वह भी है नहीं। वह बात भी यहाँ

तो नहीं। निमित्त से सम्यग्दर्शन पावे, वह भी नहीं, दर्शनमोह का क्षयोपशम, क्षय, उपशम से... वह भी नहीं, क्योंकि निमित्त पर चीज़ है। अपने में गुणभेद करना, गुणी-गुण का भेद करना, उस भेद से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ...** है। जितना भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण शुद्ध है, उसमें एक में अनेकता का विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति उठाना, वह सब नहीं है। वह जगत में है ही नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! यहाँ तो अभूतार्थ कहते हैं, वह है ही नहीं। ब्रह्मचारीजी! है नहीं अर्थात्? वह अभेद में नहीं, इस अपेक्षा से, हों! पर्याय में नहीं, इस अपेक्षा से नहीं। अभेददृष्टि करो, अन्तर्दृष्टि करो तो एकरूप में भेद है नहीं। तो भेद एकरूप में नहीं तो भेद असत्यार्थ है, ऐसा कह दिया। पण्डितजी! समझ में आया? ध्यान रखो। यह ११वीं गाथा तो बहुत सूक्ष्म है। देखो, बराबर यहाँ महोत्सव भी आता है। समझ में आया? और बहिन का विचार ऐसा था कि अच्छी-अच्छी गाथायें महोत्सव में आये तो बहुत प्रभावना का कारण बने। तो यह सब यथार्थ में आयीं। दोनों बहनों का ऐसा भाव था कि ऐसी गाथा हो सरस। तो बराबर यह गाथा आयी है। पण्डितजी!

देखो, क्या कहते हैं? शान्ति से समझना। दुनिया के झगड़े-झगड़े एक ओर रखना और पूर्व की जो मान्यता की हो, वह भी एक ओर रखकर समझना। यह झगड़ा मिटाने की बात है। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में जो सम्यग्दर्शन का विषय अभेद आत्मा है, ऐसा आया था। ऐसा ही भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने वाणी द्वारा स्पष्ट किया। भगवान अमृतचन्द्राचार्य इसकी टीका करते हैं। भगवान आत्मा। हम तो आत्मा को भगवान ही कहते हैं न! सब भगवान ही हैं न! शक्तिरूप भगवान ही है। पहली गाथा में से शुरु किया है यहाँ तो। सवेरे सिद्धचक्र नहीं चला? पण्डितजी! तुम्हारे सिद्धचक्र विधान वहाँ चलता है, हमारे सिद्धचक्र यहाँ हो गया। एक घण्टे में सिद्धचक्र विधान हो गया। सिद्ध को बुलाया। कल कहा था न पण्डित ने, नहीं? सिद्ध को बुलाओ भाई! सुवर्णपुर में। भक्ति में। तो भक्तजन तो अनेक प्रकार से बोलते हैं। यह तो 'भगवन्त यहाँ पधारो', ऐसा बोलते हैं। यह तो समझते हैं कि वह विकल्प है तो ऐसी भाषा भी भाषा के कारण से आती है। सिद्ध कहीं ऊपर से उतरते नहीं। हम अपने

स्वरूप का भान-ध्यान करके हम सिद्ध लोक में जाएँगे, परन्तु वह आरोप से ऐसा कथन करते हैं, हे नाथ! हम भक्त हैं। प्रभु! सिद्ध प्रभु! पधारो-पधारो। हम यहाँ आमन्त्रण देते हैं। इसका अर्थ हमारी पर्याय में सिद्धपद की हमें प्रतीति हुई। हमारी शक्ति में से एकाग्र होकर हम सिद्ध हो जायेंगे। इसका नाम सिद्ध को आमन्त्रण देते हैं। इसका नाम आमन्त्रण निमित्त से आरोपित कथन है। कहो, समझ में आया?

कल कहते थे न! यह गायन में आया था। भजन में आता था। भाई बोलते थे न ऐ पधारो... सौभाग्यचन्दजी ने भी बनाया था न? स्वर्णपुर में सिद्ध को बुलाते हैं। सिद्ध को बुलाते हैं। भाई! सिद्ध को बुलाते हैं। वह पूरे अनन्त सिद्ध को बुलाते हैं। समझ में आया? हम तो बहुत बार दृष्टान्त होते हैं न! वह भी आया है। पुत्री का विवाह होता है न। पुत्री-पुत्र का विवाह हो तब पुत्र का पिता साधारण हो तो साधारण तो नानालालभाई जैसे, सौभागचन्दजी भाई जैसे कोई सेठिया हो, उन्हें साथ में ले जाये। साथ में सेठिया को ले जाये। वह पुत्र का विवाह करना हो न पुत्र का? और साधारण जन हो। साधारण क्या कहते हैं? गरीब साधारण हो और उसकी सिफारिश बहुत सेठिया के साथ चलती हो तो कहे कि साहेब! हमारी बारात में आपको आना पड़ेगा। हमारे पुत्र का विवाह है। तो सेठिया को वह सम्बन्ध हो तो जाना पड़े।

उसमें कोई ऐसा प्रसंग बने। वह पुत्री के पिता को कोई ऐसी बराबर विवाह का समय हुआ। विवाह का। आठ बजे विवाह होता है न? क्या कहते हैं तुम्हारे? विवाह का समय उस समय फिर पुत्री के पिता को ऐसा विचार हुआ कि हम साधारण व्यक्ति हैं और हमारे पास पैसा नहीं है और खर्च बहुत है। यह सौ व्यक्ति लेकर आये हैं, उसमें ही हमारे दो हजार खर्च हो जायें। हम पहुँच सकेंगे नहीं। तो बातचीत तो हुई नहीं कि हमको पैसा देंगे। परन्तु बराबर विवाह का समय हुआ, पाँच हजार दो तो लड़की का विवाह करूँगा। क्या करना? वह साधारण व्यक्ति हो। सौभाग्यचन्दजी! फिर वह सेठिया को बुलावे नानालालभाई जैसे, बेचरभाई जैसे, सौभाग्यचन्दजी जैसे साथ में हों साथ में। देखो, यह पुत्री के पिता ऐसा कहते हैं। अरे! क्या? साधारण व्यक्ति है। गले में हार हो गृहस्थ। कि जिसकी बारात में हम आये, उसकी कन्या वापस नहीं फिरेगी। उसकी कन्या वापस नहीं फिरेगी। वह बराबर विवाह करके ही जायेगा। समझ में

आया ? वह कन्या का पिता कुछ माँगे। माँग कहते हैं न ? माँगे तो गृहस्थ जन हो साथ में। पाँच हजार का हार दे देवे, ले जाओ। परन्तु हम जिसके साथ हैं, उसका पुत्र कुँवारा नहीं रहेगा। हमारी इज्जत है। हम साथ में आये हैं। किसकी इज्जत है ? संसारी में भी है। साधारण व्यक्ति की बनिया की बारात में जो राजपूत होते हैं न जमींदार होते हैं न जमींदार। तो कोई लूटने आया हो तो जमींदार कहे, कौन है लूटनेवाला ? हम बनिया नहीं, हम जमींदार हैं। पहले हमारे प्राण जायेंगे, फिर तुम्हारी बारात लुटेगी। नहीं लूटने देंगे। हम बनिया नहीं हैं। हम जमींदार साथ में लाये हो।

इसी प्रकार भगवान शिष्य की जैसी आत्मा को परमात्मा में मिलाने की जिज्ञासा हुई, वह सिद्धों को उतारता है, हे नाथ! हमारी मुक्ति का विवाह हमारे में। हम सिद्धों को उतारते हैं, हमारा विवाह नहीं टलेगा। सौभाग्यचन्दजी! समझ में आया ? हे नाथ! हे परमात्मा! अनन्त सिद्ध, अनन्त केवलज्ञानी परमात्मा, अल्पज्ञ और राग-द्वेष का आपने नाश किया है। हम जानते हैं कि तुम सिद्ध हो। तुम महान सन्त आत्मा, परमात्मा को हमारी पर्याय के आँगन में हम बुलाते हैं। हम जानते हैं कि आप पूर्ण महात्मा हो। महन्त अर्थात् पूर्ण आत्मा की पर्याय प्रगट हुई है। हम अल्पज्ञ हैं, परन्तु हमारे आत्मा की रुचि की दृष्टि में हमारा सम्बन्ध हुआ है। और हमारी केवलज्ञान लक्ष्मी लेने की तैयारी हमारा विवाह हुआ है तो हम सिद्ध को बुलाते हैं कि प्रभु! आप हमारी बारात में हो, हमारा केवलज्ञान नहीं फिरेगा। समझ में आया ? हमारा केवलज्ञान नहीं फिरेगा। हम जिस दृष्टि से निकले हैं, वह निकलने से पूर्ण हो जाऊँगा। हमको विघ्न नहीं पड़ेगा। गृहस्थ में भी पुत्र या पुत्री विवाहे बिना, कन्या बिना जाते नहीं। गृहस्थ साथ में हो, करोड़पति साथ में हो। जेठाभाई! जाये ? वह करोड़पति कहे कि मैं जिसकी बारात में आया हूँ। क्या ? पाँच हजार, दस हजार ले, परन्तु इसका पुत्र वापस नहीं फिरेगा। हमारा पुत्र है। हम किसकी बारात में आये हैं ?

भगवान सिद्ध को वह मान रखकर कहता है। वह अपने मान से कहता है। हे नाथ! हम सिद्ध समान स्वरूपी चिदानन्द आत्मा, हम व्यवहारनय का निषेध करके स्वरूप की प्रतीति की है। और हमने सिद्ध को अन्दर में बुलाया है। प्रभु! बीच में केवलज्ञान के बीच में विघ्न नहीं होगा। अब केवलज्ञान घोंटते-घोंटते लेना है। हमें

तुम्हारे साथ आना है। हमारे साथ हमारी बारात में तुमको विवाह में लाये हैं। हमारी केवलज्ञान पर्याय फिरेगी नहीं। पण्डितजी! समझ में आया? यह दृष्टान्त बहुत बार हम देते हैं। यह स्वयंवर नहीं होते? शास्त्र में आता है न स्वयंवर? स्वयंवर नहीं आता? यह भाई अपने जयसेनाचार्य में भी लिया है। जयसेनाचार्य में लिया है कि मुनि दीक्षा लेते हैं, वह स्वयंवर करते हैं। संयम—केवलज्ञान की लक्ष्मी को वरने स्वयंवर दीक्षा लेते हैं। स्वयंवर दीक्षा लेते हैं। दीक्षा-चारित्र। तो हे नाथ! चारित्र से पहले जो सम्यग्दर्शन है, उस सम्यग्दर्शन में व्यवहार का निषेध है, यह हम समझते हैं। और हमारा स्वरूप अन्दर ज्ञानानन्द है, उसका ही हमको आदर है। उसमें सिद्ध को बुलाकर हमने यह निश्चय किया है। तो सिद्ध की दशा जैसे आपकी अप्रतिहत—फिरती नहीं, हमारी भी केवलज्ञान लेने से पहले फिरेंगे नहीं। केवलज्ञान के बाद फिरती नहीं। अप्रतिहत भाव को पुकार करते हैं कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य। जैसे हम सम्यग्दर्शन से मुनि हुए। स्वर्ग में जायेंगे। पंचम काल में हैं, ऐसा जानते हैं, परन्तु फिर वहाँ से मुक्ति-केवलज्ञान लेने का कौल-करार करते हैं। हमारी केवलज्ञान की लक्ष्मी फिरेगी नहीं। समझ में आया? यह केवलज्ञान कहाँ से आता है, उसका भान है। देखो, कहते हैं, पुकार करते हैं।

व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ होने से... नाथ! सिद्ध को बुलाकर हम अब यह प्ररूपणा करते हैं। व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है। अहो! भगवान! तेरी वर्तमान पर्याय में जो सिद्ध पंच परमेष्ठी के आदर का विकल्प उठता है और गुण-गुणी का भेद भी आता है, भगवान! हम अभूतार्थ मानते हैं। अभूतार्थ अर्थात् वह कायम की चीज़ नहीं, वह मौजूदगी की चीज़ नहीं। तो व्यवहारनय अभूतार्थ होने से, अ अर्थात् नहीं तथापि पदार्थ मौजूदगी की चीज़ नहीं। पर्याय जितनी तो मौजूदगी है, हों! वह तो अभेद में मौजूदगी नहीं। अखण्ड द्रव्य की दृष्टि करने में वह अभूतार्थ है। वह इस कारण से 'नहीं' कहा। एकान्त दूसरा माने, ऐसा अभूतार्थ नहीं। यह स्वभाव की दृष्टि करके अभेद का आश्रय लेने को कहते हैं। नाथ! व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है।

इसलिए **अविद्यमान...** नहीं। अविद्यमान, देखो! आत्मा में अनन्त गुण तो हैं, परन्तु गुण-गुणी का भेद करना, वह अविद्यमान अर्थ को प्रगट करता है। अविद्यमान

समझे ? नहीं है, उसे प्रगट करता है। व्यवहारनय नहीं है, उसे प्रगट करता है, आत्मा में संसार है ही नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सिद्धस्वरूपी हूँ। प्रभु! मेरे स्वरूप में संसार नहीं। वह संसार स्वरूप में अविद्यमान है, अभूतार्थ है, असत्य है, व्यवहारनय उसे प्रगट करता है। समझ में आया ? संसार मुझमें नहीं। ओहो! यह व्यवहारनय संसार को प्रगट करता है कि तेरी पर्याय में संसार है। तो हम कहते हैं कि अभेददृष्टि में व्यवहार अभूतार्थ है, नहीं—संसार नहीं और संसार को विषय करनेवाला नय उसका विषय नहीं। व्यवहारनय अविद्यमान अर्थ को प्रगट करता है। प्रभु! मेरी शक्ति में संसार नहीं, परन्तु व्यवहारनय पर्याय में संसार है, ऐसा कहता है। वह अवस्तु है, अवस्तु है। मेरी वस्तु में संसार नहीं। समझ में आया ?

यह सम्यग्दर्शन का विषय क्या, वह चलता है। तो सम्यग्दर्शन का विषय व्यवहारनय है ही नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन का विषय तो अभेद ज्ञायक चिदानन्द एकस्वरूपी आत्मा है। तो पर की दया पालना, व्रत पालना, ऐसा करना, वह यथाकाल में ज्ञानी को भी शुभभाव यथाकाल कहते हैं, उसमें मर्म है। यथाकाल। जिस-जिस काल में जो शुभ होता है, वह होगा ही। समझ में आया ? और उस प्रकार के राग का लक्ष्य भी पर के ऊपर जायेगा। परन्तु अभूतार्थ है। व्यवहारनय का विषय और व्यवहारनय दोनों अ-नहीं, विद्यमान पदार्थ नहीं, मौजूदगी की चीज़ ही नहीं। इसलिए **अविद्यमान...** प्रभु! मेरे स्वरूप में संसार ही नहीं। व्यवहारनय संसार है पर्याय में, ऐसा कहता है। स्वरूप में नहीं। स्वरूप में नहीं। असत्य है। मेरे स्वरूप में संसार ही नहीं। लो! यह उदयभाव लिया न जीव का स्वतत्त्व ? तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में पाँच बोल लिये हैं न! उदय परिणामिक जीव स्वतत्त्व। जीव का सत्त्व यहाँ इनकार करते हैं।

भगवान उमास्वामी ने कहा कि आत्मा की पर्याय में उदयभाव आया न ? कितने बोल हैं उदयभाव के ? इक्कीस। यह तो उदयभाव के इक्कीस बोल हैं न। इक्कीस, यह उदय के इक्कीस बोल हैं, वे मेरे स्वरूप में हैं ही नहीं। क्योंकि इक्कीस बोल व्यवहारनय बताता है और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की पर्याय को भी व्यवहारनय कहते हैं। भाई! ओहो! यहाँ तो पाँच भाव जो हैं, उनमें एक पारिणामिकभाव को ही सम्यग्दर्शन विषय करता है। यह चार भाव हैं—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, यह आत्मा

त्रिकाल में नहीं। व्यवहारनय उसे कहता है कि है। यह उसकी पर्याय में है, मेरे त्रिकाल स्वरूप में तो नहीं। क्या समझ में आता है कुछ? चार भाव को उड़ा दिया। भाई! चार भाव नहीं। व्यवहारनय का विषय चार भाव है। निश्चय का विषय वह पारिणामिकभाव है। एकरूप ज्ञायक परमस्वभावभाव, वह पारिणामिक।

यहाँ कहते हैं कि **व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ होने से...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द चतुष्टय, वह व्यवहारनय का विषय है, सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। क्योंकि आत्मा अभेद त्रिकाली एकरूप अनादि-अनन्त में केवलज्ञान सादि अनन्त हुआ, भेद पड़ा तो भेद व्यवहारनय का विषय है। तो व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है। क्योंकि वह अविद्यमान मेरे स्वभाव में नहीं है, ऐसा भेद भंग। असत्य, मेरे स्वरूप में ऐसा भेद भंग (नहीं है)। केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है। राग भी नहीं। समझ में आया? गुण-गुणी का भेद भी नहीं। एक समय की पर्याय त्रिकाल में भेद पड़ता है, वह वर्तमान हम कहते हैं। हमारी अभेद दृष्टि करने के लिये। अभेद में भेद असत्य है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! देव-गुरु-शास्त्र तो खोटे? भाई! ऐसा हुआ या नहीं? क्या हुआ? हिम्मतभाई! मेरी अपेक्षा से देव-शास्त्र-गुरु झूठे हैं। यह भारी कठिन। भोगीभाई! असत्य कहो या खोटा कहो। मेरी अपेक्षा से, नाथ! मेरी पर्याय में जो व्यवहार बताते हैं, मैं कहता हूँ कि असत्य है। तो देव-गुरु क्या मेरी अपेक्षा से लोकालोक झूठ है। लोकालोक है ही नहीं। क्योंकि मेरी वस्तु अभेद में उस चीज़ को स्पर्शा नहीं। लोकालोक अनन्त पदार्थों को मेरी चीज़ में स्पर्श ही नहीं। वह तो नहीं। वह तो नहीं, परन्तु मुझमें अशुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है संसार। तो उपशम, क्षायिक की पर्याय, एक समय की पर्याय, वह त्रिकाल का विषय छोड़कर भेदविषय जो व्यवहारनय कराता है, वह व्यवहारनय अभूतार्थ अर्थ को प्रगट करता है। ओहो! समझ में आया? राजारामजी!

प्रभु! व्यवहारनय अभूतार्थ है। नहीं विद्यमान पदार्थ, वह नहीं। एकान्त नहीं, यह तो सम्यग्दर्शन के विषय की अपेक्षा से 'नहीं'—ऐसा कहते हैं। पर्याय में न हो, राग न हो, भेद न हो, न हो तो उसका निषेध क्या? न हो उसका निषेध क्या? होवे उसका निषेध होता है, परन्तु दृष्टि का विषय, सम्यग्दर्शन का विषय, शुद्धनय का विषय अखण्ड ज्ञायक द्रव्यस्वभाव है। क्योंकि द्रव्यस्वभाव में से सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट होती

है। तो द्रव्यस्वभाव की दृष्टि में वह भेद दिखता ही नहीं। भेद नहीं दिखता तो भेद है ही नहीं। भेद में भेद है, परन्तु अभेद में भेद नहीं है। इस अपेक्षा से कहते हैं, भगवान! व्यवहारनय तो ऐसा है कि अविद्यमान, असत्य अभूत अर्थ को, अभूत अर्थ को, नहीं— ऐसे अर्थ को प्रगट करके दिखाता है। लो! मेरे स्वरूप में चीज़, ऐसा। तू संसारी है, तू रागी है, तुझमें गुणभेद है। प्रभु! मैं तो अभेद हूँ। दृष्टि के विषय में, उसमें व्यवहारनय भेद करके दिखलाता है, झूठा है। समझ में आया? झूठे का अर्थ कहीं व्यवहारनय का विषय जगत में है ही नहीं और व्यवहार है नहीं, तब तो एकान्त हो जायेगा। ऐसा नहीं है। परन्तु वह अपनी दृष्टि का शुद्धनय का विषय करने, अन्तर्मुख दृष्टि करने, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने व्यवहार का लक्ष्य छुड़ाने के लिये, भेद के भास लक्ष्य में से छूटने के लिये कहते हैं कि व्यवहारनय अभूत—अर्थ को प्रगट करता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : स्पष्ट बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट बात। इसमें कुछ फेरफार नहीं। यह तो जो निकलता है, वह निकलता है रजिस्टर्ड होकर। समझ में आया? बात तो ऐसी है, परन्तु जरा शान्ति से इसे सुनना चाहिए। यह शास्त्र भी कहते हैं, वस्तु भी ऐसी है, परन्तु लोग अभी ऐसे झगड़े में पड़े हैं। पहले तो अभी निमित्त-नैमित्तिक के झगड़े में पड़े हैं बहुत। उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है। क्या निमित्त से होता है और ऐसा निमित्त आया तो ऐसा होगा और ऐसा निमित्त आया तो नहीं होगा, यह तो महामिथ्यात्व तीव्र दृष्टि का विषय है। उसकी तो बात ही नहीं यहाँ। तुझे सम्यग्दर्शन चारित्र मोक्षमार्ग यदि चाहिए हो तो हम कहते हैं कि व्यवहार... देखो, किसका अर्थ चलता है? '**ववहारोऽभूदत्थो**' पहला पद है न? '**ववहारोऽभूदत्थो**' यह एक पद का अर्थ चलता है। सवेरे चला न जैसे 'वंदित्तु सव्व सिद्धे' ऐसे एक पद का अर्थ चलता है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव यह कहते हैं। विकल्प उठा है, उसे जानते हैं। विकल्प उठा है कि अभूतार्थ है, अभूतार्थ है। .... मुनि है न! शास्त्र रचना में निमित्त होते हैं न? अभूतार्थ है, अभूतार्थ है। यह नहीं... यह नहीं... नहीं, यह तो कहनेमात्र है, हों! यह स्वभावसन्मुख दृष्टि के अभेद में यह हेयपना सहज आ जाता है।

पहले वस्तु को जाननी चाहिए, समझनी चाहिए, उसे ख्याल में लेना चाहिए कि

क्या कहते हैं ? सत्य वस्तु ? वस्तु की सत्य की मर्यादा क्या है ? यहाँ तो कहते हैं कि संसार व्यवहारनय बताता है, वह वस्तु की मर्यादा ही नहीं। ऐसा आया न ? वस्तु अर्थात् त्रिकाल। अभी तो ध्रुव लेना है न ध्रुव ? शुद्धनय का विषय, वह सम्यग्दर्शन का विषय है तो इस अपेक्षा से संसार वस्तु की मर्यादा में है नहीं। पहले ही धड़ाके। क्या कहते हैं पहले धड़ाके तुम्हारे हिन्दी में ? शुरुआत में, प्रारम्भ में, शुरुआत में। हम रुक जाते हैं हिन्दी भाषा में। पहले शुरुआत में हाँ-ना नहीं। दूसरी बात नहीं। पहले यह लाओ कि व्यवहार सब झूठा है। क्यों ? कि उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र कभी तीन काल में हुआ नहीं, होता नहीं, होगा नहीं। हुआ नहीं, होगा नहीं, होता नहीं तीन काल में। जो-जो सम्यग्दृष्टि जीव हुए, उन्होंने व्यवहार को अभूतार्थ मानकर 'नहीं'... असत्य को प्रगट किया है, उस भेद को, राग को, विकल्प को, अशुद्धता को, असत्य-अभूतार्थ-नहीं, इसलिए अविद्यमान असत्य पाठ में है न देखो, '**व्यवहारनयो हि सर्व एवा भूतार्थत्वात भूतमर्थ प्रद्योपयति**', अविद्यमान पदार्थ को, अमौजूदगी को वह '**प्रद्योत**' अर्थात् प्रकाशित करता है।

शुद्धनय... अब दूसरा सूत्र आया। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' दूसरा पद। समझ में आया ? क्या चलता है ? कोई धर्म की बात चलती है या नहीं ? क्या करना यह तो आता है न उसमें ? ऐसा करना, ऐसा करना, आया या नहीं कुछ ? यह सिद्धचक्र विधान करना, बड़े लाख रुपये का कैसा ? मानस्तम्भ ६३ फीट का। यह करना, वह व्यवहारनय है या नहीं ? भगवान! उसे व्यवहारनय नहीं कहते। वह तो जड़ की पर्याय का परावर्तन का चक्रकाल हो तो होता है। कोई बनानेवाला तीन काल में उसका कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? सुमेरचन्दजी! यह तो कोई पर की दया पालना, पर को उपदेश द्वारा धर्म समझाना और पर की कृपा से कल्याण हो जायेगा। भगवान! तू ऐसा पामर नहीं। ऐसा तू पामर नहीं। तेरी प्रभुता में पामरता नहीं और पामरता के आश्रय से प्रभुता प्रगट नहीं होती। तेरी प्रभुता में पामरता नहीं और पामरता पर्याय में है, पामरता के आश्रय से पामरता का नाश नहीं होता और पामरता के आश्रय से प्रभुता प्रगट नहीं होती। समझ में आया भोगीभाई! देव-गुरु तो कहीं चले गये, हों! मेरे देव-गुरु-शास्त्र।

मुमुक्षु : धीरे-धीरे पर्याय ही निर्णय करती है....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय निर्णय करती है पर्याय, परन्तु पर्याय द्रव्य को देखकर, पर्याय भेद को देखती नहीं। निर्णय तो पर्याय करती है, परन्तु पर्याय भेद को देखती नहीं। वह पर्याय अभेद को देखे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। निर्णय तो पर्याय में करना है न! कहीं द्रव्य में निर्णय करना है? द्रव्य तो सामान्य एकरूप ध्रुव है। सम्यग्दर्शन, वह भी पर्याय है। पर्याय निर्णय करना, वह पर्याय में है, परन्तु वह सम्यग्दर्शन शुद्धनय का विषय पर्याय नहीं। विषय अभेद एकरूप है। पण्डितजी! समझ में आता है? देखो, यह भगवान सिद्ध के मण्डप डाले हैं यह। यह सिद्ध भगवान... जिसे सिद्ध की अभिलाषा हो, उसे यह निर्णय करना चाहिए। यह निर्णय किये बिना चाहे जो हो, हो, उसे यथार्थ आवे। राग भी हो, शुभ भी होता है। ज्ञानी को ऐसा अशुभभाव भी चौथे, पाँचवें गुणस्थान में आर्तध्यान, रौद्रध्यान भी आता तो है। छठवें गुणस्थान में भी आर्तध्यान भी होता है। यथाकाल जो जो चारित्रगुण की पर्याय में ऐसे विपरीत काल का परिणमन स्वयं के कारण से होता है तो होता तो है। अभूतार्थ—नहीं, नहीं, नहीं... दृष्टि स्वीकार नहीं करती। समझ में आया? वह स्वीकारती नहीं।

सम्यग्दर्शन जो शुद्धनय है, वह अभेद को स्वीकार करता है, भेद को (दृष्टि) स्वीकारती नहीं। भेद को जानता है, अभेद को स्वीकार किया हुआ ज्ञान वर्तमान को जानता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं, यह दो होकर प्रमाणज्ञान होता है। परन्तु पहले निश्चय जब न हो, तब व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होता ही नहीं। निश्चय के ज्ञान बिना व्यवहार का ज्ञान नहीं और व्यवहार के ज्ञान की सन्धि बिना प्रमाणज्ञान नहीं। परन्तु पहले तो कहते हैं कि भगवान व्यवहारनय अभूतार्थ कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा व्यवहारनय का विषय और उसका लक्ष्य जहाँ जाता है भेद में, राग में, पुण्य में, क्रिया में। अपनी क्रिया, हों! जड़ की क्रिया नहीं। यहाँ जड़ की क्रिया में नय लिया ही नहीं। जड़ की क्रिया का नय लिया ही नहीं। अपने गुण **'तद्गुण संमं विज्ञानंनय'** पंचाध्यायीकार ने इसमें से सब निकाला है। यह बारह गाथा। **'तद्गुण संमं विज्ञानंनय'** अपने गुण-गुणी का भेद हो, पर्याय विकार हो, उसे जानना, उसका नाम नय व्यवहार है। कर्म से आत्मा में विकार होता है और आत्मा विकार करता है तो कर्म आते हैं, यह तो नय ही

नहीं, यह तो नयाभास है। ब्रह्मचारीजी! उसे तो नय ही नहीं कि कुम्हार घड़ा बनाता है, यह नय ही नहीं। नयाभास है। क्या कहते हैं?

पदार्थ अपनी परिणति से क्रमबद्ध कार्य करता है, उसमें कुम्हार को कहाँ डाला? क्या गुण का कोई संक्रमण हुआ पर में? इसी प्रकार अपनी पर्याय में अपने से विकार हुआ। क्या कर्म के विपाक का कोई अंश आया और विपाक आया तो विकार हुआ? तीन काल में नहीं। यह बात तो यहाँ है ही नहीं कि कर्म का विपाक आया तो अपने को विकार हुआ। यह तो नय ही नहीं। अपनी द्रव्य की पर्याय अपने कारण से परिणमती है। उसमें निमित्त है, ऐसा ज्ञान होता है, परन्तु स्वयं स्वतन्त्र चारित्रगुण अपना गुण है, वह अपनी विपरीत परिणति की पर्याय। गुण है, उसकी पर्याय बिना गुण होता है? तो अशुद्धता, वह चारित्रगुण की वर्तमान पर्याय है। वह पर्याय दूसरे से हो तो तेरी पर्याय कौनसी? चारित्रगुण की अपनी पर्याय है विकार, वह विकार कर्म से है, यह बात तो है ही नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में विकार है, वह विकार दृष्टि का विषय नहीं है। वह व्यवहारनय का विषय है। तो व्यवहार कहता है कि अभूतार्थ को प्रगट करता है। स्वरूप में नहीं। ऐसा कहते हैं कि अशुद्ध तुझमें है, तुझमें अशुद्धता है। तेरी पर्याय में विकार वह व्यवहारनय को प्रगट करता है, अभूत अर्थ को प्रगट करता है। इसलिए आदरणीय नहीं। इसलिए आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

भाई! यह हिन्दी भाषा में तो हमारे गुजराती लोगों को कुछ समझ में आता होगा या नहीं अब? थोड़ी-थोड़ी हिन्दी हो गयी। अब हिन्दीवाले गुजराती नहीं समझते। कितनी ही बहिनें-लड़कियाँ कहे, भाई! हम समझते नहीं। भाई! अब यह हिन्दी भाषा होने लगी, राजभाषा, इसलिए समझना पड़ेगी। यह परदेशी लोग आवे कोई तो उन्हें कुछ समझना तो पड़ेगा या नहीं? अपने यहाँ गुजराती बहुत चला है। क्यों महेन्द्रभाई! गुजराती में जो मर्म से चलता हो, उतना प्रगट नहीं आता। क्योंकि हिन्दी में अटक जाते हैं। वह तो बराबर हमको ख्याल में है। परन्तु गुजराती चलता हो उसमें जो गाथा का अर्थ स्पष्ट प्रगट मर्मसहित बहुत आता है, उतना हिन्दी में नहीं आता। समझ में आया? क्या? जसकरणजी! समझते हो? अलौकिक चीज़ है। उसमें से जश निकलता है। उसमें जश है। बाहर में जश नाम तुम्हारे पिताजी ने रखा है, वह नहीं। जश। यह शास्त्र

में ऐसा है, हों! श्वेताम्बर में ऐसा आया है कि जश किसे कहते हैं? जश। अपने स्वरूप की श्लाघा करना, उसका नाम जश है। अपने अनन्त ज्ञानानन्द की श्लाघा-श्लाघा, प्रशंसा-प्रशंसा, अनुमोदन, सम्मत करना, इसका नाम जश है। दूसरे को हम जश कहते नहीं। जश, कीर्ति, प्रकृति उसका परिणाम बाहर उसमें क्या है? अपना स्वरूप ज्ञानानन्द अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता का नाम ही जश है। उसका नाम सम्यक् हुआ न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा न? तो सम्यक् कोई प्रशंसा वाचक है। सम्यक् प्रशंसा वाचक। प्रशंसा वाचक कहो या जश वाचक कहो। '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।**' यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रशंसनीय, प्रशंसनीय, श्लाघनीक। भाई!

यह ६३ श्लाका पुरुष हुए न? ६३ श्लाका पुरुष नहीं हुए? श्लाका पुरुष नहीं कहते? किसे कहते हैं श्लाका पुरुष? यह २४ तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव। ६३ श्लाका पुरुष हैं। तो हमारे ६३ फीट का मानस्तम्भ हुआ है। देखो न, कुछ होगा या नहीं मर्म इसमें कुछ? सहज बनाया होगा। कौन बनाता था? ६२ फीट का था। और एक व्यक्ति आकर कहे ६३ का डालो। आया ६३ का। भाई! समझ में आया? पहले और भाई कहे, ६२ फीट बनाओ, नानालालभाई कहे। और एक वैद्य आया, कहे, भाई ६२ की अपेक्षा दो अंक ऐसे व्यवस्थित चाहिए। ६ ऐसे और ३ ऐसे। ६ और ३। यह कृपाशंकरभाई कहे। ऐसे ६२, ३६ उल्टे हैं न ६३। तो ६३ श्लाका हमारे सेठ ने कहा कि ६३ श्लाका पुरुष आ गये इसमें। यह श्लाका पुरुष हैं न श्लाका? छाप मोहर लगायी है कि मोक्षगामी ६३। ६३ फीट का है। है कहीं हिन्दुस्तान में है? देखो, कोई ५२ है या ८२ है और फलाना। यह ६३ का हुआ। सेठजी!

ऐसा आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप जो परिपूर्ण है, वह उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वही श्लाघनीय है, वह प्रशंसनीय है, वह जसनीय है, वह कीर्ति करनेवाला है। तो कहते हैं कि व्यवहारनय अकीर्ति करनेवाला है। व्यवहारनय अभूतार्थ है, प्रशंसनीय नहीं। कि प्रशंसनीय तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सम्यक् है न? पण्डितजी! सम्यक् है न? सम्यक् प्रशंसावाचक है न? दो अर्थ हैं इसमें—टीका में। प्रशंसावाचक भी कहा है और सम्यक् का अर्थ तत्त्व भी किया है टीका में। सम्यग्दर्शन कहो या

प्रशंसदर्शन कहो या तत्त्वदर्शन कहो। सम्यक् का अर्थ तत्त्व भी लिया है संस्कृत टीका में। तत्त्वदर्शन, भावदर्शन, वस्तु का स्वभाव भावदर्शन, भावज्ञान और भावचारित्र, यह व्यवहार नहीं कह सकता। व्यवहारनय का वह विषय है नहीं। व्यवहारनय तो वर्तमान में राग, पुण्य, भेद, दया, पंच महाव्रत को। सौभाग्यचन्दजी! यह पंच महाव्रत पालते हैं न? पंच महाव्रत तुम्हारे मुनि कहते थे कि पंच महाव्रत पालना वह... परन्तु क्या पंच महाव्रत अभी! पंच महाव्रत, वह आस्रव है। वह अध्यात्मदृष्टि का विषय नहीं। पंच महाव्रत हो और अट्ठाईस मूलगुण जो मुनि के हैं छठवें गुणस्थान (में)। सच्चे सन्त थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में भावलिंगी सन्त झूलते हैं। उन्हें अट्ठाईस मूलगुण उस भूमिका में सहज आ जाते हैं। अवस्त्र, एक बार भोजन, खड़े-खड़े भोजन। ऐसी जड़ की क्रिया तो जड़ के कारण से सहज होती है, परन्तु विकल्प उस भूमिका में सहज आ जाता है, परन्तु वह सब व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है। ज्ञानी समझते हैं, वही आता है, दूसरा आता नहीं, छठवें गुणस्थान में वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प कभी होता नहीं। आवे तो मुनिपना माने और वस्त्र-पात्रसहित, तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। उसे तो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों नहीं रहते।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! तेरी पर्याय की भूमिका के योग्य। चौथे गुणस्थान में जो रागादि, नि:शंक आदि आठ आचार आते हैं न समकिती के? विकल्प आठ, पाँचवें गुणस्थान में बारह व्रत आदि का विकल्प, छठवें गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प जो आता है, वह सब अभूतार्थ, वह व्यवहारनय, उसे प्रगट करता है, निश्चयनय निषेध करता है। निश्चयनय (कहता है कि) मुझमें है ही नहीं। ओहोहो! यह तो अभी उसे पालने से धर्म होता है। अट्ठाईस मूलगुण पालन करो, उसे ऐसे व्रत पालो और ऐसा करो। क्या करे वस्तु की स्थिति समझे बिना? कहते हैं कि व्यवहारनय अभूत अर्थ को प्रगट करता है। छठवें गुणस्थान में ऐसे अट्ठाईस मूलगुण, वह अभूत अर्थ को प्रगट करता है। भाई! ऐसा हुआ न? व्यवहारनय ने ऐसा कहा या नहीं अट्ठाईस मूलगुण; नहीं, निश्चय इनकार करता है। निश्चय (कहता है कि) मेरा विषय तो अभेद ही है। यह छठवें में भी विषय तो अभेद ही है शुद्धनय का विषय। यह भेद पड़ते हैं। जानते हैं, परन्तु वह व्यवहारनय का विषय, वह वस्तु में नहीं, उसे प्रगट करता है कि

मुनि को अट्ठाईस मूलगुण हैं। पाँच समिति है न आस्रव की? आस्रव की, हों! वह तत्त्वार्थसूत्र की नहीं। तत्त्वार्थसूत्र में जो समिति, गुप्ति वह तो संवर है। वह स्वभाव के भानसहित की। परन्तु अट्ठाईस मूलगुण में पाँच समिति आती है न, पंच महाव्रत, पाँच समिति, वह ऐषणासमिति आदि, वह आस्रव है, वह तो विकार आस्रव है। तो आस्रव, वह व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है। नहीं... नहीं... नहीं... वह मेरी दृष्टि का विषय नहीं और सम्यग्दर्शन और शुद्धनय का वह विषय नहीं।

शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से... देखो, शुद्धनय। शुद्धनय किसे कहते हैं? कि जो ज्ञान अपना त्रिकाली एक अखण्ड स्वरूप की दृष्टि करता है अभेद को, उस ज्ञान को शुद्धनय कहते हैं। शुद्धनय एक ही, एक ही भूतार्थ होने से, सत्यार्थ होने से, देखो, **व्यवहारनय सब ही...** उसमें बहुत शब्द रखे थे। शुद्धनय में तो बहुत हैं नहीं। शुद्धनय तो एक ही है। शुद्धनय तो एक ही है। देखो, एक ही प्रकार कहते हैं। फिर तो आगम की दृष्टि से विशेष... शुद्धनय... क्योंकि यहाँ तो आत्मा की पर्याय में विकार होता है, वह अशुद्ध निश्चयनय से होता है, वह तो अपनी स्वतन्त्रता बतलाने के लिये। बाकी अशुद्ध निश्चयनय, वही शुद्ध दृष्टि में व्यवहार है। समझ में आया? यहाँ तो अशुद्ध निश्चयनय फिर निश्चय का विषय ही नहीं, भाई! एक ही विषय। शुद्धनय पुकार करता है, कहता है, शुद्धज्ञान, अपना ज्ञेय। शुद्धनय जो ज्ञान का भाग, उसका ज्ञेय, उसका ध्येय, उसका विषय, उसका लक्ष्य **शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से...** यह शुद्धनय एक भूतार्थ को ही प्रगट करता है। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... उसमें दो भेद भी नहीं। कहो, दूसरे ग्रन्थों में तो आता है अशुद्धनय। शुद्धनय ऐसे बहुत भेद आते हैं। वह तो समझाने के लिये। अध्यात्मदृष्टि में पहले ऐसा निर्णय करे, फिर वे सब हैं। सब हैं कि अपनी पर्याय अशुद्धता है, अशुद्ध निश्चय है, समझ में आया? निश्चय के तो बहुत प्रकार हैं। रात्रि में कहा था। बहुत प्रकार हैं।

यहाँ एक ही प्रकार भेद सब व्यवहारनय में ले लिया है। वरना तो जो कर्म का निमित्त है, उसे व्यवहार कहो तो अपनी अशुद्धता को निश्चय कहो, अपनी अशुद्धता को, मलिनता को। और मलिनता को व्यवहार कहो तब निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, उसे निश्चय कहो और जब मोक्षमार्ग प्रगट पर्याय हुई, उसे जब व्यवहार

कहो, परन्तु उसके कारण से मोक्ष उत्पन्न नहीं होता, तो शुद्ध उपादान को निश्चय कहो। तो शुद्ध उपादान को शुद्धनय बताता है। समझ में आया? समझ में आता है कुछ?

शुद्धनय एक ही.... एक ही, **भूतार्थ होने से....** भूतार्थ अर्थात् अस्ति विद्यमान पदार्थ होने से। यहाँ तो शुद्धनय को भूतार्थ कहते हैं, हों! परन्तु शुद्धनय का विषय भूतार्थ है। वास्तव में व्यवहारनय तो ज्ञान की पर्याय है। शुद्धनय तो उस ज्ञान का उपयोग है। श्रुतज्ञान प्रमाण उपयोग है और नय भंगरूप भेदरूप उपयोगात्मक ज्ञान है। नय उपयोगात्मक ज्ञान है, श्रुतज्ञान प्रमाणज्ञान है। उसका भेदरूप उपयोग ज्ञान है। तो वह कहते हैं कि नय तो ज्ञान का व्यापार है। परन्तु यहाँ अध्यात्म है, वह शुद्धनय एकरूप विषय को बताता है, तो पदार्थ उसका विषय भूतार्थ है तो नय को भी भूतार्थ कहा है। है, शुद्धनय का विषय ही एक सत्य है। शुद्धनय का विषय सत्य कहो या शुद्धनय सत्य कहो। क्योंकि नय और नय के विषय में भेद पड़े तो अध्यात्मदृष्टि नहीं रहती। मुख्य दृष्टि नहीं रहती। अध्यात्म की मुख्य दृष्टि नहीं रहती। क्योंकि भेद तो व्यवहारनय का विषय हुआ, भाई! ज्ञान शुद्धनय और उसका विषय, ऐसे दो भेद हुए तो व्यवहारनय का विषय हुआ। समझ में आया?

यहाँ तो शुद्धनय जो ज्ञान का भाग है, वह अखण्ड अभेद को विषय करके अभेद करता है, उसे शुद्धनय कहा है। समझ में आया? सौभाग्यचन्दजी! भाई! जसकरणजी! समझ में आता है। हाँ, यह बात समझो। ऐसा निर्णय होना चाहिए, पूरी दुनिया बदल जाये, पण्डित लोग, त्यागी लोग बदल जाये तो भी यह बात नहीं बदलेगी। ऐसा निर्णय होना चाहिए। दुनिया ऐसा अर्थ करती है, ऐसा अर्थ करती है। अरे! करे उसके घर में। क्या वस्तुस्थिति कोई तोड़ डालता है? वस्तु की मर्यादा है, उससे कोई विपरीत कहे तो वस्तु दूसरी हो जाती है? यहाँ कहते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव, प्रभु! व्यवहारनय, निश्चयनय दोनों शासन में है। शासन में तो दो ही नय है। परन्तु शासन प्रगट हुआ किसे कहते हैं? कि व्यवहारनय असत्य अर्थ को (अर्थात्) स्वभाव में नहीं, उसे प्रगट करता है, इसलिए उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है और शुद्धनय एक ही भूतार्थ तथापि मौजूदगी-मौजूदगी विद्यमान, भूतार्थ होने से। विद्यमान टिकनेवाला तत्त्व सामान्य शुद्धस्वभाव सत्यभूत अर्थ को प्रगट करता है। देखो, शुद्धनय अन्तर्मुख का ज्ञान। तेरे

ज्ञान का जो उपयोग अन्तर्मुख झुके, अन्तर्मुख झुके कहते हैं न? वळे अर्थात् झुके। वळे समझे न? हमारे वळण कहते हैं वळण। वळण हुआ। ज्ञान में झुका, अन्तर में झुका, वह तो ज्ञान और ज्ञान का विषय, जो सामान्य भूतार्थ एकरूप स्वभाव, एकरूप सामान्य... सामान्य... सामान्य... सामान्य... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... नित्य... नित्य... नित्य... ऐसे अर्थ को शुद्धनय प्रगट करता है। ऐसे अन्तर में ऐसा सम्यग्दर्शन करो तो विद्यमान पदार्थ ज्ञान का विषय बन जाये। समझ में आया? भोगीभाई! कठिन बात, भाई!

निर्णय करना है पर्याय में, हों! गुण-द्रव्य में निर्णय नहीं होता। क्योंकि गुण-द्रव्य तो सामान्य है। कार्य तो पर्याय में होता है। कार्य पर्याय में होता है और पलटना पर्याय में है। द्रव्य-गुण में पलटना ही नहीं है, वह तो ध्रुवरूप है। पर्यायदृष्टि से पलटे, वह दूसरी बात है। द्रव्यदृष्टि से द्रव्य-गुण सामान्य सदृश... सदृश... सदृश... उसका विषय लिया। तो सदृश वह शुद्धनय का विषय... नय तो पर्याय है। परन्तु उस पर्याय का विषय अभूतार्थ है, त्रिकाल एकरूप, वह शुद्धनय का विषय है। समझ में आया? क्योंकि पीछे दो अर्थ लिये।

'**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' बस इसका अर्थ किया। अब इसका स्पष्टीकरण करके फिर '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' इसका स्पष्टीकरण दृष्टान्त देकर अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। पश्चात् इस तीसरे पद का अर्थ करेंगे। यह दो पद के अर्थ हुए। समझ में आया? इन दो पद में सब है। फिर दृष्टान्त देकर सिद्ध करते हैं अब।

कि **शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को प्रगट करता है।** सत्य भूत, अस्ति भूत, विद्यमान ध्रुव को शुद्धनय प्रगट करके लक्ष्य में लेता है। व्यवहारनय भेद को लक्ष्य में लेता है, अशुद्ध को लक्ष्य में लेता है, इस अपेक्षा से उसे अभूतार्थ कहा। गौण करके, हों! है तो सही। व्यवहार का विषय है परन्तु अभेद की दृष्टि कराने के लिये, भेद विकार को गौण करके, उसे व्यवहार कहा। व्यवहार का अर्थ ही स्वरूप में है नहीं। व्यवहार का अर्थ ही कि स्वरूप में है नहीं। किस प्रकार कि जैसे आत्मा में कर्म है ही नहीं। क्योंकि आत्मा स्वाश्रित है और पर कर्म है। तो अपनी अपेक्षा से तो कर्म है ही नहीं। अपनी अपेक्षा से है ही नहीं। तो जो चीज़ नहीं, उसे व्यवहार

कहते हैं। अपनी है, उसे निश्चय कहते हैं। तो यहाँ तो अध्यात्म की दृष्टि का विषय है। तो कहते हैं कि संसार है ही नहीं। तेरी पर्याय में विकार है ही नहीं। उठा। क्या लेने आया है? क्या समझने आया है? धर्म समझने आया हूँ। तो धर्म का फल क्या है? मुक्ति। तो मुक्ति कहाँ से होगी? और धर्म कहाँ से होगा? व्यवहारनय से होगा? व्यवहार पर्याय से होगा? कहाँ से होगा? तेरा व्यवहार नहीं। व्यवहार तो अल्पज्ञ पर्याय, राग-द्वेष है। खबर नहीं हमको? तेरी पर्याय तो चलती है और क्षयोपशम हो ग्यारह अंग और नौ पूर्व का, तो उसमें क्या हुआ? उसमें है कोई सम्यग्दर्शन, सिद्धपद उसमें है? एक समय की पर्याय में सिद्धपद है? सिद्धपद तो द्रव्यशक्ति में है। शक्तिरूप पड़ी है। अन्तर परमपारिणामिकभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव। तो कहते हैं कि शुद्धनय, वह नित्यभाव को प्रगट करता है। अन्तर्मुख का ज्ञान, अन्तर्मुख शक्ति को प्रसिद्ध करता है। व्यवहारनय भेद अशुद्ध को प्रसिद्ध करता है, इसलिए वह वस्तु में है नहीं। समझ में आया?

यह बात कोई ऐसा माने... यह बात अर्थात् कौनसी? यह बात। इस बात को कोई ऐसा माने कि एल.एल.बी.। और समझे न कि कोई एम.ए. की होगी। नहीं... नहीं... नहीं। यह धर्म की शुरुआत, धर्म का प्रारम्भ, वह धर्म का पहला सोपान ही यह है। सम्यग्दर्शन क्या? उसका विषय क्या? व्यवहार क्या? निमित्त क्या? उसका भी यथार्थ ज्ञान नहीं तो सम्यग्दर्शन कहाँ से लायेगा? समझ में आया? और सम्यग्दर्शन बिना व्रत, तप, प्रतिमा, त्याग, तीर्थ, भक्ति, पूजा, सब मोहभजन है। क्योंकि मोहरहित स्वरूप की दृष्टि तो नहीं, तो कहीं भजन तो करेगा वह। मोह अर्थात् रागरहित वस्तु भूतार्थ क्या है? विद्यमान पदार्थ क्या है? विद्यमान वस्तु क्या है? एक समय में अनन्त शक्ति का पिण्ड एकरूप, उसकी प्रतीति नहीं तो कहीं भजन तो करेगा। भजन अर्थात् भजनेवाला। प्रशंसा करनेवाला। अन्तर सामान्य स्वभाव की प्रशंसा नहीं करता तो राग की, निमित्त की प्रशंसा किये बिना रहता ही नहीं। समझ में आया? तो वह तो भजन मोह का है। दृष्टि यथार्थ पहली चीज़ क्या है? उसे लक्ष्य में लेना चाहिए। उसका बोध करना चाहिए और उसके पीछे बारम्बार स्वभाव सन्मुख इसे झुकना चाहिए।

परन्तु पहले जिस चीज़ का ख्याल नहीं, तो किस ओर इसकी रुचि का वीर्य

झुके? रुचि का वीर्य झुके? क्योंकि रुचि अनुयायी वीर्य। जैसी इसकी रुचि होती है, उस प्रकार से उसका पुरुषार्थ कार्यगत होता है। रुचि ही जहाँ विपरीत होती है, तो उसकी अन्तर का वीर्य भी उल्टा कार्यगत करता है। समझ में आया?

इस बात को दृष्टान्त से बतलाते हैं—लो, अब यह बात कही न दो पद की? कि व्यवहारनय अभूतार्थ है। अविद्यमान असत्य पदार्थ को प्रगट करता है और शुद्धनय भूतार्थ है, क्योंकि सत्य पदार्थ को प्रगट करता है। इसलिए शुद्धनय का विषय-आश्रय लेनेवाला सम्यग्दृष्टि है। यह कहना है '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' यह बतलाना है। परन्तु यह दो पद कहे, उसे दृष्टान्त से सिद्ध करके, फिर यह लेंगे। कि **यह बात दृष्टान्त से बतलाते हैं**—यह तो सिद्धान्त। दृष्टान्त कहते हैं, वह सिद्धान्त को कहने के लिये है। सिद्धान्त कहने के लिये दृष्टान्त है। **जैसे,** देखो दृष्टान्त आया दृष्टान्त। दृष्टान्त का एक अंश उसमें—सिद्धान्त में आता है। न्याय। कोई दृष्टान्त सर्वसिद्धान्त को लागू पड़ता नहीं।

जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से... अब पानी का दृष्टान्त देते हैं भगवान अमृतचन्द्राचार्य। व्यवहारनय और निश्चयनय को भिन्न-भिन्न बतलाने के लिये पानी और कीचड़ का मिश्रित दृष्टान्त देकर फिर पृथक् दृष्टान्त देकर दो नय में सिद्धान्त घटित करने के लिये। कि **जैसे प्रबल कीचड़....** देखो, शब्द कैसा लिया? प्रबल कीचड़। पानी में बहुत कीचड़ हो। कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि अरे रे! भाई! बहुत कीचड़वाला कैसे शुद्ध होता है? तो आचार्य ऐसा दृष्टान्त देते हैं कि **प्रबल कीचड़ के मिलने से...** पानी में प्रबल कीचड़ मिला। **जिसका सहज एक निर्मल भाव....** किसका? पानी का। पानी का सहज निर्मल। यहाँ निर्मल की अपेक्षा से स्वभाव है। अभी यहाँ शीतलता की अपेक्षा लेनी नहीं है। यहाँ तो निर्मल की अपेक्षा से अभी (बात है)। **सहज एक निर्मल भाव....** भाई! वरना पानी का ऐसा शीतल स्वभाव, वह अभी सिद्ध नहीं करना। शीतल स्वभाव यहाँ सिद्ध नहीं करना। यहाँ उसका निर्मल स्वभाव सिद्ध करना है। क्योंकि आत्मा के साथ निर्मल स्वभाव बतलाना है और मैल तथा निर्मल के बीच... मैल व्यवहारनय का विषय, निर्मल निश्चय का विषय, यह यहाँ कहना है। तो **प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव....** पानी का एकरूप

स्वच्छ निर्मलभाव होना चाहिए। स्वाभाविक है, उसका तो निर्मल भाव है न पानी का? सहज स्वाभाविक एकरूप **निर्मल भाव तिरोभूत हो गया है...** किस कारण से? उस कीचड़ के संग से। कीचड़ के संग से। पानी की तो अपनी योग्यता है, हों! पानी की तो अपनी योग्यता मलिन होने की है, कीचड़ का निमित्त। तो वह निर्मलता तिरोभूत हो गयी है। तिरोभूत हो गयी। उसमें कहा न कि निमित्त से नहीं, निमित्त की अपनी योग्यता से निमित्त में। यहाँ तो दृष्टान्त देना है। पहले ही कहा कि दृष्टान्त का एक अंश लेना।

यहाँ सिद्ध क्या करना है? कि पानी की पर्याय निर्मल होनी चाहिए। स्वभाव निर्मल तो अभेद में निर्मल होना चाहिए। परन्तु **कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव...** देखो, निर्मल भाव। शक्ति और पर्याय दोनों निर्मल। **तिरोभूत हो गया है, ऐसे जल का अनुभव करनेवाले...** ऐसे निर्मल जल का अनुभव करनेवाले... ऐसे होते हैं कितने ही आलसी। नहीं कहते? क्या कहते हैं? प्रमादी... प्रमादी... आळसु के गौर समझे? टट्टू, हमारे गौर कहते हैं? वे टट्टू अर्थात् गुरु। बहुत आलसी है, उसके गुरु, ऐसा यह प्रमाद का टट्टू। मैला पानी तो मैला पानी पी लेता है। उसमें दृष्टान्त दिया। मैला पानी हो तो मैला पानी पी लेता है।

जल का अनुभव करनेवाले.... यह कादवसहित होवे तो भी पी जाते हैं। **पुरुष जल और कीचड़ का विवेक नहीं करनेवाले....** जल और कीचड़ का विवेक नहीं करनेवाले। क्या दृष्टान्त दिया है? यह मूढ़ की दृष्टि ऐसी हो गयी है। अरर्र! यह पानी में इतना अधिक कीचड़? आटलो समझे न? इतना। इतना अधिक कीचड़ कैसे पृथक् पड़ेगा? देखो, यह पहले व्यवहार में मूढ़ है। पानी का कीचड़ निकल जायेगा और पानी निर्मल रहेगा, उसका व्यवहार में भान नहीं। इसलिए शब्द लिया न प्रबल कीचड़। तो देखते ही उसे मूढ़ता हुई। अरर्र! यह पानी और यह कीचड़ कब पृथक् पड़ेगा? कब भिन्न पड़ेगा? तो ऐसा पहले देखते ही भयभीत हुआ तो वे भिन्न पाड़ने की क्रिया करने का प्रयत्न और विकल्प भी नहीं हुआ। समझ में आया? देखो, दृष्टान्त से फिर सिद्धान्त लेंगे, हों!

यहाँ तो व्यवहारीजन में भी, व्यवहारीजन दो प्रकार के हैं। यह दृष्टान्त लेते हैं न भाई! व्यवहारीजन एक तो कीचड़ को देखकर भाई! पी लो न पानी, अब यह कब

निर्मल होगा, यह कब निर्मल होगा? के दि अर्थात् समझे? कब? कब निर्मल होगा? वह व्यवहारी चतुर व्यक्ति विचार करता है। अरे! पानी है न। पानी है न। पानी कीचड़ में एकमेक हो गया है परन्तु वह मूर्ख व्यवहारीजन पानी कीचड़। प्रबल कीचड़ लिया न? प्रबल कीचड़ लिया। कि कीचड़ को देखता है परन्तु पानी की निर्मलता को नहीं देखता कि निर्मल सत् अभी भिन्न पड़ जायेगा। **ऐसे जल का अनुभव करनेवाले पुरुष—जल और कीचड़ का विवेक नहीं करनेवाले...** देखो, कीचड़ और जल को भिन्न करते नहीं। विकल्प भी उठा नहीं, ज्ञान भी हुआ नहीं, विचार भी हुआ नहीं। वर्तमान जैसा संयोग देखता है, वैसा उसे मान लिया। दोनों के भेद को नहीं समझनेवाले बहुत होते हैं। यहाँ तो व्याख्या भी अमृतचन्द्राचार्य ने कही। पानी को भिन्न नहीं करनेवाले बहुभाग हैं, ओय...! वह मूढ़ लौकिक में भी बहुत मूढ़ है। कि ऐसे पानी और कीचड़ को देखकर भिन्न करते ही नहीं।

बहुत से तो, उसे (जल को) मलिन ही अनुभव करते हैं। डहौळु। डहौळु कहते हैं न अपने। गंदला पानी कहते हैं। डहौळु कहते हैं तुम्हारे हिन्दी में?... हमारे डहौळु पानी कहते हैं न? मलिन। मलिन ही अनुभव करते हैं। समझ में आया? यह दृष्टान्त व्यवहारनय को कहने के लिये लिया है। फिर यह निश्चय का दृष्टान्त कहने की बात आयेगी.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

महामस्तकाभिषेक

(दिनांक 26-01-2024)

भाद्र शुक्ल ९, रविवार, दिनांक - १७-९-१९७२, गाथा - ९८, प्रवचन नं. ९९

आज दसलक्षणी पर्व का पाँचवाँ दिन है। दो दिन तो आठम में चले गये। शौचधर्म। पहले आया था उत्तम क्षमा, दूसरा आया था मार्दव, निर्मानता, फिर आया था सरलता, चौथा आया था सत्य, उसमें शौच की जगह सत्य लिया, यह पाँचवाँ यहाँ शौचधर्म है। शौचधर्म का अर्थ है निर्लोभता, देखो!

(आर्या)

यत्परदारार्थिदिषु जन्तुषु निःस्पृहमहिंसकं चेतः।
दुश्छेद्यान्तर्मलहृत्तदेव शौचं परं नान्यत्॥९४॥

जो कोई प्राणी... उसमें नहीं है, यह तो ऊपर की है, परस्त्री और पराये धन में इच्छारहित है और किसी भी जीव को मारने की जिसकी भावना नहीं है और अत्यन्त दुर्भेद लोभ, जीवन का लोभ, आरोग्य रखने का लोभ, इन्द्रियाँ ताजी रखने का लोभ और उपभोग का लोभ ऐसा, लोभ क्रोधादि मन का हरण करनेवाला है। जो कोई लोभ और क्रोधादि का नाश करनेवाला है, ऐसा चित्त यह शौचधर्म है। किन्तु उससे भिन्न कोई शौचधर्म नहीं है। पवित्रता अन्दर की कहते हैं, वह शौचधर्म है। मिथ्यात्वमल से रहित कषायमल से रहित अपना चित्त पवित्र होना, उसका नाम शौचधर्म कहा जाता है। बाहर से स्नान करे आदि तो मछली पानी में बहुत रहती है, उससे कोई शौच रहता नहीं।

(शार्दूलविक्रीडित)

गंगासागरपुष्करादिषु सदा तीर्थेषु सर्वेष्वपि
स्नातस्यापि न जायते तनुभृतः प्रायो विशुद्धिः परा।
मियात्वादिमलीमसं यदि मनो बाह्योऽतिशुद्धोदकै-
र्धौतः किं बहुशोऽपि शुद्धयति सुरापूरप्रपूर्णो घटः॥९५॥

आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार अत्यन्त घृणित मद्य से भरा हुआ घड़ा, मदिरा से भरा हुआ घड़ा बहुत बार शुद्ध जल से धोया भी जाये तो भी वह शुद्ध नहीं हो सकता। उसी प्रकार जो मनुष्य गंगा, पुष्कर आदि तीर्थों में स्नान करनेवाला है, यहाँ शत्रुंजय है न शत्रुंजी क्या कहलाता है। शत्रुंजी में नहीं नहाया तो उसका भव का अन्त... आहाहा! ऐसे के ऐसे सब। नदी में नहाये मछलियाँ बहुत होती हैं नदी में, तो उससे पवित्र होता है तो वह पवित्र हो जाये, वह तो उसमें रहते हैं नरक भी जाते हैं... एक बार नहाये शत्रुंजय में.... धूल में नहीं, सुन रे। शेत्रुंजी यहाँ कहाँ? साक्षात् भगवान का दर्शन किया, वह भी शुभराग है, उससे भी आत्मा की शुद्धि होती नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, जो मनुष्य बाह्य गंगा, पुष्कर आदि तीर्थों में स्नान करनेवाला है, किन्तु उसका अन्त:करण नाना प्रकार—अनेक प्रकार मिथ्यात्वादि कषायों से मलिमत है। ऐसे मिथ्यात्व है... मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, सामायिक करना पड़े कोटि वर्ष। मिथ्यात्वादि मलिन... है न विपरीत मान्यता भगवान आत्मा के स्वभाव से उल्टी मान्यता, वह महा मैल और मलिनता है। उससे मलिमस है, कदापि उत्कृष्ट शुद्धि को वह प्राप्त नहीं कर सकता, (यह) अपेक्षा लिया। वह कहे थोड़ी तो शुद्धि प्राप्त कर सकते हैं या नहीं? कदापि उत्कृष्ट शुद्धि को, उत्कृष्ट अर्थात् निर्मल अपना पवित्र हृदय जो है राग मिथ्यात्व रागरहित ऐसे बाहर के स्नान से हो नहीं सकता। उसका अन्त:करण अनेक प्रकार से... इसलिए मनुष्य को सबसे प्रथम अपने अन्त:करण को शुद्ध करना चाहिए। ज्ञानानन्दस्वभाव में स्नान करना चाहिए। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु निर्मल चैतन्यजल से भरा हुआ कुम्भ अपना आत्मा, उसमें प्रवेश करके स्थिन होना, वही यथार्थ पवित्र होने का उपाय है। समझ में आया? बाहर में ऐसा शत्रुंजय जाये और सम्मेदशिखर जाये न, सम्मेदशिखर की बहुत महिमा। वहाँ तो कहे जाये वह जाये फिर अभव्य न जाये, जो जाये वह भव्य हो गया। ऐसे के ऐसे गप्प (लगाते) हैं। समझ में आया? ६.४४

अपनी विपरीत मान्यतारहित अपना चैतन्यस्वरूप, भगवान पवित्र आनन्द और ज्ञान से भरा हुआ, समुद्र प्रभु आत्मा है। उसमें स्नान करना—प्रवेश करना, वही स्नान और शुद्धि का कारण है। समझ में आया? बाकी एक शुद्ध न हो, तब तक सर्व

बाह्यक्रिया व्यर्थ है। शौचधर्म की व्याख्या हुई। पाँचवाँ है न! पाँच दिन बाकी रहे। कल तो सुगन्धदशमी है न, सुगन्धदशमी। अपने यहाँ आया है। ९८। ९८ गाथा (नियमसार)।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा।
सो हं इदि चिंतिज्जो तत्थेव य कुणदि थिरभावं ॥९८॥

जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंधविन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ ॥९८॥

बंधबिन अर्थात् बन्धरहित।

प्रत्याख्यान किसको कहते हैं, त्याग किसको कहते हैं, यह बात चलती है।

टीका—यहाँ (-इस गाथा में), बन्धरहित आत्मा.... समयसार में आया है न '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' १४-१५ दो गाथा में अपना आत्मा बन्धरहित है, बन्धसहित है, वह तो व्यवहार है। वस्तु की दृष्टि करने से वह आत्मा बन्धरहित है। कर्म से और राग से भी बँधा नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञानानन्द भगवान आत्मा बन्धरहित आत्मा, **भाना चाहिए।** उसकी अन्तर में भावना—एकाग्रता करना चाहिए। ऐसा **—इस प्रकार भव्य को शिक्षा दी है।** भव्य अर्थात् पात्र प्राणी—मोक्ष के योग्य है, उसको शिक्षा दी गयी है। ९.२७

शुभाशुभ मन-वचन-कायसम्बन्धी कर्मों से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है.... क्या कहते हैं? शुभाशुभ मन-वचन-काया, जो कम्पन, योग 'पयडि पदेश' आता है या नहीं, कहाँ आता है? द्रव्यसंग्रह। वह कहते हैं। मन, वचन और काया, वह योग उससे प्रकृति अर्थात् कर्म का स्वभाव, और कर्म का परमाणु का प्रदेश, उसका बन्ध होता है। और **चार कषायों से स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है....** कर्म में स्थिति / अवधि और अनुभाग, यह चार कषाय होते हैं, उन कषाय में मिथ्यात्व आ गया। उन चार बन्धोंरहित भगवान आत्मा व्यवहार से बन्धसहित है, वह निश्चय से बन्धरहित है। आहाहा! समझ में आया? .....हें... अनुभाग, वह नहीं, वह अलग। वह तो एक समय का रस होता है, कर्म पड़ा हो इस अपेक्षा से। वह यह नहीं। यहाँ अनुभाग विशेष पड़ते हैं, उसका कारण मिथ्यात्व और कषाय है। .... एक कर्मरूप परिणमन हुआ न, इस

अपेक्षा से अनुभाग, वह परमाणु कर्मरूप नहीं था, वह कर्म हुआ, इतना अनुभाग अंश है, इतना गिना। वह गिनती नहीं, उसकी यहाँ गिनती नहीं। ११.२८

यहाँ **इन चार बन्धों रहित....** अपना स्वभाव भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप, ऐसी चीज़ राग और प्रकृति स्व और कषाय से रहित, ऐसा अपना आत्मा है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप आत्मा, वह त्रिकाली वस्तु, उसमें योग और कषाय से रहित वह चीज़ है। सो उसको बन्ध है नहीं। आहाहा! कब? अभी। बन्ध होने पर भी बन्ध नहीं और अबन्ध है, ऐसी दृष्टि करना, उसका नाम आत्मा की एकाग्रता की भावना है। आहाहा! समझ में आया? उन चार बन्धों रहित, और **सदा निरुपाधिस्वरूप...** मैं तो त्रिकाली सदा उपाधि—राग और कर्म की उपाधि से रहित ऐसा आत्मा, वह मैं हूँ। समझ में आया? ऐसा आत्मा तो केवली हो, तब होता है, अभी ऐसा है? सुन तो सही। दृष्टि करने से अपनी चीज़ पर दृष्टि करने से वह चीज़ चार बन्ध से रहित ही है। आहाहा! दृष्टि... समझ में आया? १३.२४

निरुपाधिस्वरूप **जो आत्मा...** विकल्प अर्थात् राग और योग अर्थात् मन-वचन के कम्पन, वह बन्ध का कारण है। उस बन्ध के कारणरहित है तो उसमें बन्ध है नहीं। आहाहा! यह दृष्टि में स्वीकार आना, अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया? मैं राग और कषाय और कम्पनरहित सदा निरुपाधि भगवान परमानन्दस्वरूप, ऐसी दृष्टि करना, वही मैं आत्मा, ऐसा माने। वह मैं आत्मा, अबद्धस्वरूप वह आत्मा। आहाहा! समझ में आया? **सो मैं हूँ।** त्रिकाल निरुपाधि आनन्दघन प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा, पूर्ण ज्ञान स्वभावी, अबन्धस्वरूपी वह मैं हूँ। **ऐसी** भावना, सम्यग्ज्ञानियों को है न! १५.०१

सम्यग्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए। आहाहा! निरन्तर—समय का अन्तर पड़े बिना, मैं तो अबद्धस्वरूप हूँ, दृष्टि से जहाँ स्वभाव ऊपर जहाँ दृष्टि पसरी, समझ में आया? वह आत्मा अबद्धस्वरूप है। मैं हूँ, वह तो पर्याय जानती है। क्या कहा यह? जो आत्मा निरुपाधि, वह मैं हूँ, वह द्रव्य ध्रुव नहीं जानता, वह स्वसन्मुख हुई पर्याय (जानती है) मार्ग अलौकिक है भाई! वीतराग का धर्म, साधारण लोगों ने मान रखा है, ऐसी कोई चीज़ नहीं। यहाँ तो पर्याय स्वीकार करती है, दृष्टि जहाँ दृष्टि पर्याय

है न! एक समय की पर्याय है दृष्टि, वह दृष्टि त्रिकाल निरुपाधि स्वरूप को जहाँ स्वीकार करती है कि मैं तो यह हूँ, मैं हूँ ऐसा नहीं, मैं यह हूँ। स्वयं उसका निर्णय करती है। पर्याय निर्णय करती है। निर्णय तो पर्याय में होता है या ध्रुव में होता है? भारी सूक्ष्म, भाई! पर्याय, द्रव्य और गुण। ध्रुव का आश्रय लेती है, वह पर्याय। वह पर्याय ऐसा कहती है, यहाँ तो दूसरी बात है। कि निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा, सो मैं हूँ। त्रिकाल अबद्धस्वरूप निरुपाधि भगवान जिसमें संसार उदय की गन्ध नहीं, समझ में आया? १७.४४

अरे! जिसमें उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक भी नहीं। ऐसे त्रिकाली भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप, जो एक, वह मैं हूँ, ऐसा अपनी पर्याय—वर्तमानदशा में निरुपाधि भगवान आत्मा हूँ, ऐसा निर्णय करती है, ऐसा स्वीकार किया है। आहाहा! समझ में आया? गजब ऐसा धर्म, भाई! वीतराग का धर्म, उसको वीतरागभाव से होता है। वीतरागी पर्याय, ऐसा कहती—जानती है, आहाहा! राग से हटकर, अपने अबद्धस्वभाव पर दृष्टि पड़ने से वह दृष्टि और वर्तमान ज्ञान की पर्याय, ऐसा जानती है (कि) मैं तो निरुपाधि आत्मा, वह मैं हूँ। आहाहा! यह होता है पर्याय में। परन्तु वह पर्याय निरुपाधि त्रिकाल को निर्णय / लक्ष्य में लेती है। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वभावान्तर ऐसा हुआ, तब उसने माना न! ऐसा जो था अल्पज्ञ हूँ, राग हूँ, तब तक पर-मुख थी, वह पर्याय नहीं परन्तु दूसरी पर्याय, वह तो गयी। जो पर्याय वर्तमान पर्यायरूप हूँ, रागरूप हूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव की पर्याय थी। आहाहा! १९.५६

जो एक समय की पर्याय ऐसा जाने कि मैं पर्यायरूप हूँ, रागरूप हूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव था। आहाहा! वह मिथ्यादर्शन शल्य था। समझ में आया? वह नहीं, मैं पर्यायरूप नहीं। आहाहा! मैं रागरूप नहीं, जो पर्याय अन्तर्मुख हुई, वह पर्याय कहती है कि मैं तो निरुपाधि आत्मा हूँ। आहाहा! ऐसा धर्म! यह हिम्मतभाई! लोहे के व्यापार में अब यह भाव। आहाहा! क्या व्यापार था लोहे का उसके घर में कहाँ? उसके घर में तो मैं पर्याय हूँ, राग हूँ, यह व्यापार था। उसके घर में तो मैं एक समय की पर्याय और

राग, वह व्यापार था। वह मिथ्या व्यापार, वह मिथ्यादृष्टि का व्यापार है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि का व्यापार, वह पर्याय कहती है—मैं तो निरुपाधिस्वरूप भगवान, मेरा दृष्टि का विषय जो ध्रुव निरुपाधिस्वरूप, मेरा जो दृष्टि का विषय निरुपाधि भगवान, वह दृष्टि का विषय, वह मैं हूँ। भगवानजीभाई! आहाहा! भारी सूक्ष्म भाई! दृष्टि कुछ जानती है, मैं दृष्टिरूप नहीं, दृष्टि तो एक समय की पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! २२.२१

वह पर्याय स्वसन्मुख होती है, तो स्वीकार में तो निरुपाधि आत्मा मैं हूँ, ऐसा आया, मैं पर्याय हूँ, ऐसा उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन, और लोग बाहर से माने देव-गुरु-शास्त्र की अपनी श्रद्धा है, नौ तत्त्व की हम सच्ची श्रद्धा करते हैं, रखते हैं, वह सम्यग्दर्शन। देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ, भगवान का कहा हुआ धर्म हम मानते हैं, समकिती हैं। धूल भी नहीं है, सुन तो सही! धूल का अर्थ (यह कि) लोकोत्तर पुण्य भी उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा! चार बन्ध से रहित जो दृष्टि, जो ज्ञान की वर्तमान पर्याय चार बन्ध से रहित, ऐसा निरुपाधिस्वभाव आत्मा, वह मैं हूँ, वह मैं हूँ। मैं हूँ, वह मैं नहीं, आहाहा! देखो! एक वीतरागमार्ग की मौज। ऐसी चीज़ सर्वज्ञ वीतराग के सन्तों—दिगम्बर मुनियों के अतिरिक्त कहीं है नहीं। पर्याय और क्या, पर्याय यहाँ उत्पन्न होती सन्मुख होती है, और पर्याय सन्मुख होती है तो पर्याय कहती है, मैं इतना नहीं, मैं तो त्रिकाली निरुपाधि स्वरूप, वह मैं हूँ। समझ में आया? २४.३५

समझ में आये ऐसी बात है। समझ में न आये, ऐसी नहीं। वस्तु है, अनन्त... अनन्त शान्ति और स्वच्छता का पिण्ड प्रभु, सदृश ध्रुव, सत्ता महाप्रभु, उस ओर की पर्याय का झुकने से, वह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। उस पर्याय में तो द्रव्य दृष्टि में आया, अबद्धस्वरूप मैं हूँ, ऐसा आया। आहाहा! मैं यह पूर्ण पर्यायरूप हूँ, ऐसा भी उसमें नहीं आया। हीराभाई! आहाहा! यह इसकी मौज! राजा क्रीड़ा में चढ़ा आत्मा में जाते हुए, अपना घर में क्रीड़ा की है, वहाँ कहते हैं, क्रीड़ा कहते हैं, मैं आत्मा हूँ तो निरुपाधि आत्मा हूँ। मेरी क्रीड़ा की पर्याय, इतना भी मैं नहीं। आहाहा! नवनीतभाई! आहाहा! जिसमें मैं नहीं, वह मैं हूँ। समझ में आया? पर्याय कैसा जानती है सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की पर्याय ऐसा जानती है.... ऐ दुलेरायजी! कभी कान में भी पड़ा

नहीं होगा यह। यह सेवा करो और यह करो मर गया। गुरु की सेवा करता नहीं, राग की सेवा करता है। समझ में आया? २७.१०

चार बन्धरहित सदा निरुपाधि स्वरूप, त्रिकाली ध्रुवस्वरूप वह आत्मा, जो आत्मा, सो वह मैं हूँ। आहाहा! गजब बात है! सेठ! कभी सुना भी नहीं होगा। जिसमें मैं नहीं, वह मैं हूँ। समझ में आया? पर्याय जो है, वह ध्रुव में नहीं, वह पर्याय ऐसा जानती है, समझ में आया? त्रिकाली निरुपाधि स्वरूप भगवान, जिसमें मैं नहीं, वह मैं हूँ। आहाहा! गजब बात है! पर्याय द्रव्य-गुण की खबर जहाँ नहीं अभी तो। क्या पर्याय कहते हैं, क्या गुण कहते हैं, किसको द्रव्य कहते हैं। आहाहा! केवल एक बार साधु को पूछा, बहुत वर्ष हुए, (संवत्) १९८२ का वर्ष है। मैंने कहा, यह सामायिक है... स्थानकवासी साधु था। यह सामायिक त्रस है या स्थावर? उसने जवाब दिया, यह बात मेरे गुरु ने सिखायी नहीं। अरर! यह साधु नाम धरावे, सामायिक त्रस है (या) स्थावर, इसकी खबर नहीं। वह तो पूरे दिन सामायिक करे, साधु है न! मानी हुई, हों, तब। आहाहा! २९.२१

साधु को चौबीस घण्टे सामायिक होती है। यहाँ सदा कहा न, मैं ऐसा सदा हूँ तो पर्याय सदा उसका स्वीकारती है। निरन्तर धारावाही। आहाहा! अरेरे! वीतराग का मार्ग सुनने में आये नहीं और बाहर की सिरपच्ची में जिन्दगी चली जाये, वह तो जैसा कीड़े का मरण, ऐसे उसका मरण। साधु हो भले बाहर का, परन्तु अन्तर की इस दृष्टि के विषय की खबर नहीं और मेरी दृष्टि क्या है? वह दृष्टि किसको स्वीकार करती है। आहाहा! मैं तो त्रिकाली निरुपाधिस्वरूप ध्रुवस्वरूप भगवान मैं हूँ, ऐसा सम्यग्ज्ञान की पर्याय और सम्यग्दृष्टि की पर्याय, ऐसा स्वीकारती है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत सुन्दर विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है, भाई! आहाहा! ऐसी सम्यग्ज्ञानी को देखो, वह सदा निरुपाधि, यहाँ निरन्तर भावना करना। त्रिकाल निरुपाधि स्वरूप की दृष्टि हुई, वह दृष्टि निरन्तर करना। आहाहा! चालू। समझ में आया? ३१.१०

मशीन चालू हो गयी। निरुपाधि भगवान त्रिकाली ध्रुव, वह मैं, वह मैं—ऐसी

दृष्टि निरन्तर शुरु है। उसका नाम आत्मा की भावना की, ऐसा कहा जाता है। कठिन बात, भाई! ऐसे पर्यूषण के दिन में ऐसा। यह सब अफ्रीका में से आये हो न, उन्हें समझाना मुश्किल, ऐ वीरचन्दभाई! तुम्हारे पुत्र ने ऐसा वहाँ कभी सुना नहीं होगा किसी दिन। पैसा... पैसा धूल।

मुमुक्षु : यह तो जन्म-मरण टाले, ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्म-मरण है ही नहीं यहाँ तो। आहाहा! भगवान आत्मा निरुपाधिस्वरूप जन्म-मरण से रहित, बन्ध से रहित, त्रिकाली जन्म-मरण से रहित मैं हूँ, उसमें जन्म-मरण टालना, वह भी रहता नहीं। है नहीं, उसको टालना क्या? आहाहा! मैं भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु मैं, पूर्ण हूँ, पर्याय कहती है मैं पूर्ण हूँ। आहाहा! मुझमें जन्म-मरण नहीं, मुझमें अल्पज्ञ पर्याय नहीं। आहाहा! समझ में आया? ३३.०२

जन्म-मरण तो कहाँ रहा? परन्तु मैं जो पर्याय है, इतना भी मैं नहीं। आहाहा! देखो, यह वीतरागमार्ग की दृष्टि, वीतरागमार्ग की दृष्टि का वह विषय। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह धन्धा पूरे दिन, राग और द्वेष का धन्धा, चौरासी के अवतार का धन्धा, वस्तु में तो है नहीं। वह राग का विकल्प खड़ा करके, यह उसकी भावना बारम्बार किया करे निरन्तर, वह संसार है, संसार है। चौरासी का भवोदधि-भवोदधि भव का उदधि/समुद्र, आहाहा! उसमें डुबकी मारता है। भगवान आत्मा, अपनी चीज़ का जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ भव तो है नहीं, भव का भाव तो है नहीं, परन्तु जो अपनी पर्याय, जो उसको स्वीकार करती है, वह पर्याय भी मैं नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! अरे, वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, वह कोई गणधरों और इन्द्रों के बीच में कथा करते होंगे, कैसी कथा होगी? जहाँ अर्धलोक के स्वामी सौधर्म, दक्षिण का—उत्तर का स्वामी ईशानेन्द्र, जिसे ३२ लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव कितने ही, किसी में संख्यात। यहाँ २८ लाख विमान, असंख्य, असंख्य देव, उसके स्वामी—लाडा, वह भगवान के पास आकर ऐसे... ऐसे... आहाहा! वह कथा कैसी होगी, भाई! वह इन्द्र एकावतारी है। एक भव करके मुक्ति जानेवला है, मनुष्य का देह धारण करके। समझ में आया? ३५.४२

शकेन्द्र, ईशानेन्द्रादि अरे शकेन्द्र की रानी, वे सब एकावतारी, एक भव (में) मोक्ष जानेवाले, मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले, तीन-तीन ज्ञान के धनी, शकेन्द्र क्षायिक समकिती। समझ में आया? है अविरती सम्यग्दृष्टि, तो कहते हैं मैं अविरति तो नहीं, भाई! आहाहा! मैं अविरति नहीं, हों! आहाहा! मैं अविरति को जानने की पर्याय जो त्रिकाल को स्वीकार करती है, वह मैं इतना भी नहीं। समझ में आया? तीन लोक के नाथ केवलियों के शिक्षा का अधिकार चलता है। केवली की शिक्षा यह है। यह केवलज्ञान क्या तुम्हारे कहते हैं केवली, केळवणी केळवणी (शिक्षा) नहीं करते यह पठन को तुम्हारे यह शिक्षा धूल भी शिक्षा नहीं। ऐई! यह तो केवलज्ञान की शिक्षा है। आहाहा! रात्रि में प्रश्न आया था न बड़ा, उलझना नहीं। केवलज्ञान हो, एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा हो तो हमारे पुरुषार्थ करना कहाँ रहा? यह बड़ा प्रश्न आया था। ..... ऐसा, उनके भाई का प्रश्न था। यहाँ तो इसने नहीं लिखा, इसने प्रबुद्ध जैन में दिया था बड़ा लेख। दूसरे व्यक्ति को शंका पड़ी कि इसका स्पष्टीकरण भी क्या? एक समय का केवलज्ञान जो हो, वह तीन काल को जाने, वह जाने—ऐसा हो, तब हमारे करना क्या, करना का कहाँ रहा? बड़ा प्रश्न है वह पण्डितजी को दिया अभी पम्पलेट दिया न! अरे, यह प्रश्न तो हमारे ५६ वर्ष पहले चला था। (संवत्) १९७२ के वर्ष में, ५६ वर्ष पहले, समझ में आया? ३८.१६

बहुत महिमा आये... जिसने पूछा था, वह उलझन में था। यह मुमुक्षु जीव लगता है। कोई अनूपचन्द है, अनूपचन्द पोपटलाल, ... नहीं, नहीं यह नहीं, वह तो भिखारी का अनूपचन्द भीखाभाई, यह तो अनूपचन्द पोपटलाल... ऐसा। लो, भाई ने कहा था भीखाभाई का नाम पोपटलाल है। ठीक एक भीखाभाई थे वे तो अपने यह अंजनभाई के घर में आये हैं। बोटादवाले, वे तो यहाँ आते हैं। अमेरिका.... लेख है प्रबुद्ध जैन में, वह यह प्राणभाई का छोटा भाई गुलाब... पुस्तकें लिखता है बड़ी पुस्तकें... मुम्बई में। यहाँ आता है अपने।

मुमुक्षु : गुलाबदास ब्रोकर लेखक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह... यह उन्होंने लिखा होगा, दूसरों ने पढ़ा। इसने बेचारे को, आहाहा... केवलज्ञान इनकर किया, केवलज्ञानी सब नहीं जानते तो, यह बात

बैठती नहीं। केवलज्ञान सब जाने और तत्प्रमाण हो, तो अपने तो मशीन जैसे रहे, होनेवाला हो वह होगा, अपने कुछ कर सकते नहीं। यह हमारे क्या करना इसमें। ऐई! अनपूचन्द... अनूपचन्द। वह धानेरावाला न! धानेरावाला नहीं, वह बढ़वाण का जोरावर का, आहाहा!.... भाई! तुझे खबर नहीं, भाई! क्या चीज़ है? आहाहा! जिसे केवलज्ञान एक समय का ज्ञान तीन काल, तीन लोक को जाने, वह तीन काल और तीन लोक है, इसलिए जाने, ऐसा नहीं है। और जिसे विकल्प का सहारा नहीं। ऐसी एक समय की पर्याय वह जाने, वैसा हो, भगवान! परन्तु उस पर्याय की सत्ता ऐसी इतनी है, वह स्वीकारे कौन? उसे माने कौन? समझ में आया? ४०.५३

जिसकी मान्यता में ऐसा आया, एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को देखे, ऐसी सामर्थ्य, ऐसी पर्याय स्वीकार करनेवाल, जिसमें से केवलज्ञान निकला है, ऐसा केवलज्ञानस्वभावी भगवान उसका निर्णय करे तब केवलज्ञान की पर्याय का निर्णय होता है, पुरुषार्थ आ गया। ऐ नवनीतभाई! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। हमारे (संवत्) १९७२ में बहुत चली थी। हमारे गुरुभाई बारम्बार ऐसा कहते थे, क्या कहते...? शब्द क्या आगम कहा, उस समय दो वर्ष की दीक्षा। यह तो ५७ वर्ष पहले की बात है। ५७। ऐसी बात हो कहीं.... आगम की भाषा ऐसी। आगम को देखो न गजसुकुमार श्रीकृष्ण के भाई, हाथी के हौदे भगवान के दर्शन करने जाते हैं श्रीकृष्ण, नेमिनाथ भगवान के द्वारिका में दर्शन करने जाते हैं, गोद में बैठाया है। राजकुमार गजसुकुमार हाथी के तलुबे जैसा जिनका कोमल शरीर। उसमें एक सोनी की पुत्री गेंद से खेल रही थी। बहुत सुन्दर रूपवान, कृष्ण ने देखी, ओहो! यह कन्या तो गजसुकुमार के लिये रखो, जाओ अन्त:पुर में ले जाओ, वहाँ रानियों के पास, वहाँ अभी बीच में थे, भगवान के पास दर्शन करते हैं। गजसुकुमार दर्शन करते हैं और जहाँ सुना, कपाल फट गया अन्दर से, प्रभु! आप आज्ञा दो, मैं दीक्षित होने जा रहा हूँ। आहाहा! अभी कृष्ण गोद में बैठाते हैं और हाथी के हौदे लाते हैं। प्रभु! तुम्हें..... भाई ऐसा शब्द है। तब कहा था, कण्ठस्थ था। ऐसा बोले विद्वान समकित। ४३.०६

प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो दीक्षित होना चाहता हूँ। भगवान के मुख में से उनकी भाषा श्वेताम्बर की आहा सोहं.... मा पडिबंध... यह सुख हो, वैसा करो, प्रतिबन्ध न

करो। ऐसी भाषा है अंतगडनी। माता के निकट जाते हैं, देवकी का लड़ला यह पुत्र, कृष्ण तो गोकुल में जन्मे थे गोकुल में पले थे और कृष्ण यहाँ देवकी को इसे खिलावे, माता! मैं भगवान के पास आज सुनने गया, मुझे दीक्षित होने का भाव हो गया है। मैं नग्न दिगम्बर मुनि होऊँ, माता ने बहुत कहा, एक का दो नहीं हुआ। गये भगवान के पास, प्रभु! मेरी रुचि आत्मा के अतिरिक्त कहीं जमती नहीं। कहीं राग में मुझे छलकना नहीं। प्रभु! मुझे दीक्षित करो। दीक्षा जहाँ दी और जहाँ चारित्र हुआ, वहाँ कहते हैं, प्रभु! मुझे आज्ञा दो, दुनिया श्मशान में हाथी के ऊपर लेके जाती है। प्रभु! मैं चलकर श्मशान में जाऊँ, और मैं बारहवीं भिक्षु प्रतिमा—भिक्षु की प्रतिमा बारह होती है। अपने में भी है, हों! दिगम्बर में परन्तु बाहर प्रसिद्ध नहीं।। आपकी आज्ञा हो तो वहाँ बारहवीं भिक्षु की अन्तिम प्रतिमा अट्ठम करके चतुर्विध आहार (त्यागकर) मेरे ध्यान में रहूँ, भगवान कहते हैं, आहा! सोहं करो फतेह प्रभु। आहाहा! समझ में आया? ४५.१९

कहा, यह तब बात की थी (संवत्) १९७२ में कहा, ऐसी भगवान की वाणी में यह क्या आया होगा? जिसका प्याला फट गया, भगवान ने देखा तब होगा, ऐसा कहकर निभाया है उसे! आहाहा! आहाहा! उसे तो भगवान आत्मा त्रिलोकीनाथ आत्मा के सामने देखना है। सामुं कहते हैं न! वहाँ भी यह कहते हैं। किसे उसे भिक्षु प्रतिमा, उसमें वह सोमल आता है, और बाई के घर में भेजी थी, उसका बाप अग्नि भरत है, गजसुकुमार, गज के तलुवे जैसा हो हाथी का, ऐसा शरीर। राख की पाल बाँधता है और सुलगते अंगारे रखता है। ध्यान में केवलज्ञान, आहाहा! एक दिन में सुना, एक दिन में दीक्षा और एक दिन में केवल (ज्ञान) और वहीं का वहीं मोक्ष। ऐई भीखाभाई! यह वह कैसी वाणी होगी भगवान की। आहाहा! ऐसा न करो, कहा तुम यह क्या करोगे, भगवान ने देखा वैसा होगा, उसे पुरुषार्थ नहीं होता, यह क्या कहते हो तुम यह? जिसने भगवान को ज्ञान में बैठाया, उसका तो अनन्त पुरुषार्थ हुआ उसे तो। भगवान की स्वीकारता आयी, केवली ऐसे होते हैं। आहाहा! ४७.१६

वहाँ इतना कहा, द्रव्य के सन्मुख देखना, ऐसा नहीं था। परन्तु इतना अन्दर से आया, सर्वज्ञ परमात्मा जिसके ज्ञान में बैठे, भगवान ने भव देखे नहीं, उसके भव होते नहीं। भगवान ने देखे नहीं, ऐसा भाव होगा उसे होंगे नहीं। ऐ भगवानजीभाई! भगवान

को यदि भव हो तो भगवान जिसे ज्ञान में बैठे, उसे भव हों, एकाध भव हो, उसकी गिनती यहाँ होती नहीं। बड़ा विवाद हुआ। फाल्गुन शुक्ल १३, (संवत्) १९७२ के वर्ष, ७२, ऐई! ५६ वर्ष हुए, बहुत चर्चा हो गयी। बहुत ही। हम वह वाणी सुनने में ऐसा गुरु नहीं चाहिए, सम्प्रदाय नहीं चाहिए, वह वाणी नहीं चाहिए, ऐसा बोला था। यह अब आज आया। आहाहा! अरे भाई! केवलज्ञानी है और ऐसी स्वीकृति करना और फिर केवलज्ञानी ने देखा वैसा होगा, उसमें फेरफार करने का भाव हो, उसे होता ही नहीं। जिसे केवलज्ञान जगत में महाप्रभु एक समय का ज्ञान, बापू! वह बातें नहीं। समझ में आया?

यह हृदय का पुकार है, यह ज्ञान की एक समय की पर्याय, एक समय को यहाँ तीन काल, आहाहा! भाई! ऐसी ज्ञान की सत्ता जगत में है, ऐसा जिसे स्वीकार आवे, वह तो अनन्त संसार को टालकर अनुभव मोक्ष का जम गया होत है, समझ में आया? भव-बव होते नहीं, भगवान ने देखा इसलिए होगा, इसलिए तुम्हारे भव होंगे तुम्हारे विशेष। ऐ... यह तो ७२ की बात थी। समझ में आया? ऐई कालीदासभाई! सुना था या नहीं पाळीयाद की ७२ की बात है। .....वह विंछिया से पाळीयाद आये थे। अरे भगवान! तू क्या कहता है यह? तेरे ज्ञान की एक समय की पर्याय, यहाँ तो कहते हैं मैं पूर्ण आनन्दघन ध्रुव हूँ, ऐसा कैसा? आहाहा! सो जिसमें एक समय की पर्याय प्रगट हो गयी, समझ में आया? वह पर्याय ऐसा कहती है कि त्रिकाली द्रव्यस्वरूप ध्रुवस्वरूप मैं हूँ, मैं पर्याय नहीं, मैं हूँ नहीं, मैं तो यह हूँ। आहाहा! यह वह कहीं बात है! समझ में आया? ५१.०१

जो पर्याय ऐसा कहे—मैं तो त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप हूँ। अरे! जिसको त्रिकाली का ज्ञान प्रगट हुआ, एक पर्याय में कितनी सामर्थ्य है, वह सम्यग्दर्शन में वह प्रतीति आ गयी है। समझ में आया? और तत्प्रमाण होगा, ऐसी भी प्रतीति हो गयी है। वह तो ज्ञाता-दृष्टा हो गया, और स्वरूप के सन्मुख होकर चलेगा, वह केवलज्ञान लेगा। समझ में आया? उसमें शंका क्या! सन्देह क्या? समझ में आया? भगवान ने देखा ऐसा तो होगा, किया होगा, ऐसी बात कहाँ आयी? पावैया की बातें हिंजड़ा जैसी। उस समय तो खबर कहाँ थी प्रवचनसार की, पढ़ा कहाँ था? हाथ में भी नहीं आया था। यह ८२ गाथा

में जो भाव कहा, वह निकला तब, वह कहा, वह ८२ में भाव निकला, प्रवचनसार, जो भगवान ने ऐसा कहा, अरिहंतं दव्वगुण पज्जाये भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को जो जाने, वह पर्याय अर्थात् केवलज्ञान, वह जाने, उसे आत्मा का ज्ञान होता है और आत्मा का ज्ञान होता है, उसका मोह नाश होता है। समझ में आया? ५२.२२

लो, ऐसा भगवान का ज्ञान कहते हैं समझ में आया? जो जाणदि अरिहंतं दव्वगुण पज्जये और फिर दूसरी गाथा ८१। ऐसा ज्ञान हुआ, पश्चात् राग-द्वेष टालकर चारित्र हुआ, ८२ में भी, वह सर्वज्ञ हुआ, तो सर्वज्ञ ने ऐसा उपदेश दिया, ऐसा पाठ है। जैसा आपने किया, ऐसा उपदेश आया, क्योंकि विकल्प ऐसा था, समझ में आया? यहाँ कहाँ विकल्प ऐसा था कि मैं पूर्ण होऊँ, पूर्ण होऊँ... पूर्ण होऊँ तो परमाणु ऐसे बँध गये, वाणी की ध्वनि ऐसी निकली। समझ में आया? जो कोई अरिहंत का द्रव्य-गुण-पर्याय को जानेगा, उसका आत्मा कल्याण होकर समकित प्राप्त करके मोह का नाश करेगा, ऐसा भगवान की वाणी में ऐसा उपदेश आया, ऐसी वाणी देखकर प्रशस्त तुम्हारी वाणी ऐसी थी, हम उसे सुनने के योग्य नहीं। ऐसा उस सम्प्रदाय में रहनेवाले नहीं।....दो वर्ष की दीक्षा, २५ वर्ष की उम्र। यह तो समझ में आता है? आहाहा! ५३.५३

यह गड़बड़ अभी आयी वापस, कि ऐसा हो उसे ऐसा नहीं होता, हम उलझन में हैं, भाई! यह तो उलझन का मार्ग नहीं है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं, देखो न! निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा, वह मैं हूँ। वह केवलज्ञान की पर्याय का निर्णय करनेवाला मैं निरुपाधि आत्मा हूँ, ऐसा निर्णय करते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी तो द्रव्य सन्मुख की ऐसी बात कहाँ थी? परन्तु जिसके ज्ञान में केवली बैठे, उसे तीन काल में भव होते नहीं। समझ में आया? ओहो! जिसे केवलज्ञान का स्वीकार एक समय में तीन काल जाने, ऐसी ज्ञान की सामर्थ्य का स्वीकार, भव नहीं होते, दूलेरायजी! समझ में आता है? आहाहा! ५५.००

ऐसे सम्यग्ज्ञानी को देखो, आहाहा! पहले कहा है न, सदा निरुपाधि स्वरूप जो आत्मा, वह मैं हूँ। अब कहते हैं कि ऐसी सम्यग्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए, मैं हूँ पूर्ण, मैं हूँ पूर्ण—ऐसी एकाग्रता कायम रखनी चाहिए। तो वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी सम्यग्ज्ञानी को निरन्तर अर्थात् मैं त्रिकाली निरुपाधिस्वरूप,

वह मैं हूँ, ऐसी निरन्तर भावना करनी चाहिए। मैं अल्पज्ञ हूँ, राग हूँ—ऐसी भावना छोड़ दे। ऐ भीखाभाई! यह तो रण में चढ़ा रजपूत छिपे नहीं, आता है या नहीं वह? चंचल नारी का नैन छुपे नहीं, भाग्य छुपे नहीं भभूत लगाया, भभूत लगे, बाबा हो तो भाग्य छुपे? यह वह पुण्यवन्त प्राणी कोई है। समझ में आया? दाता छुपे नहीं घर माँगन आया। दाता छुपे? आहाहा! रामजीभाई जहाँ रहते थे, धन्धा करते थे, व्यापार क्या, यह वकालत, तब आवक थी तो इनके घर में कोई भी जाये तो लेकर जाये, दो रुपये धन फलाना ऐसा सुना है, अपने कहाँ देखने गये थे? फिर वकालात बन्द की। ....ऐई! कोई चबन्नी भी आवे.... देते थे रामजीभाई, ऐसा जहाँ दाता, माँगने आवे और दाता छिपा रहे नहीं। ५७.१५

एक व्यक्ति था, बीड़ी पीता था, एक, बीड़ी जलाई, थोड़ी हो थोड़ी, आधी बाकी हो तब आधी उसमें—बक्से में डाली, अब वे लेने आये उगाही। क्या कहलाता है तुम्हारे वह? चन्दा लेने चन्दा। चन्दा लेने आये हुए, वह बीड़ी पीकर आधी उसमें डाली। मेरे साथ यह... इससे अपने को क्या माँगना इससे। उसने कहा भाई! किसलिए आये हो? दाता हो... आओ.... चन्दा... चन्दा लेने को आये, वह दियासलाई सुलगाकर बाक्स समझे? दियासलाई सुलगे... उसमें डाली आधी बाकी रहे इसलिए। वह कहे अपने चन्दा करने को आये, यह तो इतना लोभी है। क्या देगा? कैसे है भाई! क्या लेने को आये? साहेब! आपकी कृपा हो तो थोड़ा.... कितनी अपेक्षा तुम्हारी? इतना पच्चीस हजार, ले जाओ, अरे दे दो, वह दियासलाई डाली उसमें, ऐसा याचक लगा... समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर एकाग्रता होने पर दाता छिपता नहीं, समझ में आया? ऐसा सम्यग्ज्ञानी निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्री आदिनाथ दिगंबर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ़

शुक्रवार, 19 जनवरी 2024 से शुक्रवार, 26 जनवरी 2024 तक

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुंबई